गजेन्द्र व्याख्यान माला

दूसरा भाग

प्रवचनकार

जैनाचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज साहब

सम्पादक

गजसिंह राठोड़
प्रेमराज बोगावत

प्रकाशक
सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
बापू बाजार, जयपुर-३

प्रकाशक

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

बापू बाजार, जयपुर-३०२००३

प्रथम संस्करण ११००

वीर नि० सं० २५०३

अल्प मूल्य ५) रु०

आवरण श्री पारस भसाली

मुद्रक जयपुर प्रिन्टर्स, जयपुर

प्रकाशकीय

साम्प्रतयुगीन महान् अध्यात्म योगी, आत्मद्रष्टा, युगद्रष्टा एव युगप्रवर्तक प्रात स्मरणीय आचार्यश्री हस्तीमलजी महाराज साहव के अध्यात्म ज्ञान से ओतप्रोत परम प्रेरणाप्रदायी प्रवचनो की 'गजेन्द्र व्याख्यान माला' का यह द्वितीय पुष्प श्रद्धालु धर्मप्रेमी पाठको की सेवा मे समर्पित करते हुए हमे परम प्रमोद, आह्लाद एव गौरव की अनुभूति हो रही है।

लगभग ६ मास पूर्व सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल की ओर से 'गजेन्द्र व्याख्यान माला' का प्रथम पुष्प प्रकाशित किया गया था, उसकी जैन-जैनेतर सभी सुविज्ञ पाठको ने मुक्तकण्ठ से प्रशसा की। उससे मण्डल को वडा प्रोत्साहन मिला। उस प्रोत्साहन का ही प्रतिफल है कि स्वल्प समय मे ही मण्डल उक्त व्याख्यान माला के प्रस्तुत द्वितीय पुष्प के साथ ही तृतीय पुष्प भी सुज्ञ पाठको के समक्ष सादर प्रस्तुत करने मे सफल हो रहा है।

विशुद्ध श्रमणाचार एव जिनशासन के सवल समर्थ प्रहरी आचार्यश्री के सर्वविदित वर्चस्व, तलस्पर्शी अध्यात्मज्ञान एव अपरिमेय आत्मवल के सम्बन्ध मे कुछ कहना अथवा लिखना वस्तुत सहस्ररश्मि सूर्य को दीपक से दिखाने के समान ही है। यदि गिने-चुने शव्दो मे कहा जाय तो आचार्यश्री का जीवन स्व-पर-कल्याण-साधना का प्रतीक है। निस्सदेह आपश्री स्व-पर-कल्याण-साधना की प्रतिमूर्ति हैं। अपने आप मे अचिन्त्य अनुपम आध्यात्मिक उपलव्धियो के साथ-साथ आपने चतुर्विध जैन सघ को भी 'जैनधर्म का मौलिक इतिहास, भाग १ एव भाग २' जैसी अमर कृतिया उपलव्ध करा जो अक्षय कीर्ति एव अमर ख्याति प्राप्त की है, वह सहस्राव्दियो तक स्व-पर-कल्याण-साधको के लिये अखण्ड ज्योति के रूप मे दिशानिर्देश करती रहेगी।

नीतिनिष्ठ एव धर्मनिष्ठ आदर्श समाज के निर्माण द्वारा जिन-शासन की नीव को सुदृढ बनाने की उत्कट पुनीत भावना से ओतप्रोत आचार्यश्री ने जो स्वाध्याय सघ का शखनाद पूरा है, वह आबालवृद्ध प्रत्येक जैन को सजग एव सक्रिय बनने की प्रबल प्रेरणा प्रदान कर रहा है। विषम से विषमतर सकटकालीन परिस्थितियो के झझावातो, प्रचण्ड तूफानो से भी जैन समाज कभी झकझोरित न हो सके, इस प्रकार के आदर्श सुदृढ समाज का निर्माण करने की आपश्री प्रत्येक जैन को प्रतिदिन प्रेरणा प्रदान करते रहते है। आपके व्याख्यानो, सभाषणो और लेखो मे सदा मुख्यत इसी हितकामना का सपुट रहता है।

प्रस्तुत पुस्तक मे आचार्यश्री द्वारा, सन् १९७३ के जयपुर वर्षावास के समय कृपापूर्वक फरमाये गये व्याख्यानो मे से प्रारम्भिक १३ दिनो के व्याख्यान प्रकाशित किये जा रहे है। इन प्रवचनो मे आचार्यश्री का विराट स्वरूप एक महान् भविष्यद्रष्टा के रूप मे स्पष्टत उभरा हुआ, निखरा हुआ प्रतीत होता है। आज जिस प्रकार का घटनाचक्र चल रहा है, उसका आज से तीन वर्ष पूर्व ही आचार्यश्री ने अपने व्याख्यानो मे पूर्णत स्पष्ट और विशद रूप मे सकेत दे दिया था। इससे यह आभास होता है कि बाल्यकाल से ही अध्यात्मसाधना मे सतत निरत इस महान् योगी ने आत्मदर्शन के साथ-साथ युगदर्शन-कारिणी, भविष्यदर्शन कराने वाली दिव्य आध्यात्मिक शक्ति भी उपार्जित कर ली है।

यह जैन समाज का बडा ही स्पृहणीय एव सराहनीय सौभाग्य है कि उसे इस प्रकार की अद्भुत विभूति की छत्रछाया, इस प्रकार के महान् युगस्रष्टा, युगद्रष्टा का मार्गदर्शन प्राप्त है। यदि जैन समाज इस युगस्रष्टा योगी के दिव्य अनुभूति से ओतप्रोत एक-एक आन्तरिक उद्गार को आत्मसात् कर कदम से कदम मिला, इस मार्गदर्शन के अनुरूप आगे बढते रहने का दृढ सकल्प कर ले तो निस्सदेह वह शीघ्र ही सर्वोच्च प्रतिष्ठा के पद पर अधिष्ठित हो स्व-पर-कल्याणकारी कार्यो के माध्यम से "सत्य, शिव, सुन्दरम्" का साक्षात्कार कर सकता है। प्रस्तुत पुस्तक को पढते समय प्रत्येक विज्ञ पाठक यही अनुभव करेगा, ऐसी हमारी सुनिश्चित धारणा है।

प्रस्तुत पुस्तक के सम्पादन मे श्री गजसिह राठौड और श्री प्रेमराजजी बोगावत ने जो श्लाघनीय श्रम किया है, उसके लिये मण्डल इन दोनो विद्वानो के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता है।

हम उदारमना उत्साही युवक श्री प्रेमचन्दजी हीरावत (सुपुत्र श्री पद्मचन्दजी हीरावत) के वडे ही आभारी है, जिन्होने अपनी स्वर्गीया मातेश्वरी श्रीमती चन्द्रावल देवी हीरावत की पुनीत स्मृति मे अर्थ-सहायता प्रदान कर इस पुस्तक का प्रकाशन करवाया है।

श्री प्रेम बाबू के पिता श्री पद्मचन्दजी हीरावत वडे ही सेवा-भावी, धर्म प्रेमी, अनन्य गुरु भक्त और शान्त प्रकृति के उदारमना सुश्रावक हैं। पौगण्ड पौध को प्रारम्भ से ही धार्मिक शिक्षण एव धार्मिक सस्कारो की शिक्षा देकर उन्हे नीतिनिष्ठ तथा धर्मनिष्ठ नागरिक बनाने के प्रबल पक्षपाती है। आप सदा से ही धार्मिक शिक्षण प्राप्त करने वाले बच्चो को समय-समय पर पुरस्कारादि प्रदान कर उन्हे नैतिक एव धार्मिक शिक्षण मे प्रगति करते रहने के लिये प्रोत्साहित करते रहते है।

श्री प्रेमचन्दजी हीरावत की माता श्रीमती चन्द्रावल देवी का जन्म फाल्गुन कृष्णा १, सवत् १९८६ मे हुआ। वे बडी ही सरल-हृदया, धर्मपरायणा तथा आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज सा० की परम भक्त श्राविका थी। अपने धर्मगुरु के प्रति प्रगाढ निष्ठा एव भक्ति के साथ-साथ आपने आचार्यश्री के उपदेशो को हृदयगम कर समस्त सन्तसतीवृन्द के प्रति सदा समान रूप से सच्ची श्रद्धा रखते हुए धर्मध्यान और यथाशक्ति तपश्चरण को अपने जीवन मे अपनाया। उन्होने सन् १९६६ मे अठाई की तपस्या भी की। अपने धर्मगुरु आचार्य-देव के प्रति ऐसी अविचल श्रद्धा थी कि वे किसी भी प्रकार के शोक-सताप अथवा कष्ट के प्रसग पर शान्तचित्त हो गुरु-नाम का स्मरण करती। यही कारण था कि उन्हे कभी किसी ने शोक-सताप करते नही देखा। वे आचार्यश्री के प्रेरणाप्रद प्रवचनो से बडी प्रभावित होती थी। उनकी उत्कट इच्छा थी कि आचार्यश्री के सन् १९७३ के जयपुर वर्षावास के व्याख्यानो की कम से कम एक पुस्तक तो शीघ्रातिशीघ्र छपवाई जाय। मण्डल कुछ अपरिहार्य कारणवशात्

उनकी इस उत्कट अभिलाषा को उनके जीवनकाल मे ही पूर्ण न कर सका, इसके लिये मण्डल को बडा खेद है।

श्रीमती चन्द्रावल देवी रुग्णावस्था के दिनो मे प्राय प्रतिदिन आचार्यश्री के सुशिष्य तपोधनी श्रीचन्दजी महाराज सा० से तथा परम विदुषी महासतीजी श्री कौशल्याजी म० से बडी ही श्रद्धापूर्वक मागलिक्य सुना करती थी। वे सच्चे अर्थ मे अनासक्त सद्गृहस्था और वडी ही जागरूक श्राविका थी। आपने अपने जीवन के अन्तिम दिन मे वेदना पर विजय प्राप्त कर श्रीमती रतनदेवी हीरावत (धर्मपत्नी श्री इन्द्रचन्दजी हीरावत) द्वारा गुरुदेव की साक्षी से सथारा ग्रहण किया और दिनाक ५-११-७४ को अपने पीछे भरा पूरा सुसम्पन्न परिवार छोड समाधिपूर्वक अपनी इहलीला समाप्त की।

प्रस्तुत पुस्तक की सुन्दर एव स्वच्छ छपाई मे जयपुर प्रिन्टर्स के सचालक श्री सोहनलालजी जैन एव प्रेस के कार्यकर्त्ताओ का सराहनीय सहयोग रहा अत मण्डल उन सब के प्रति आभार प्रकट करता है।

तत्वज्ञान और सत्पथप्रदर्शक उपदेशो से ओतप्रोत 'गजेन्द्र व्याख्यान माला' के इस द्वितीय पुष्पस्तवक की मन, मस्तिष्क एव अन्त करण को आध्यात्मिक अशोकवाटिका की ओर आकर्षित करने वाली मोहक सुगन्ध से सुविज्ञ पाठक आत्मविभोर हो अधिकाधिक लाभ उठाये, इसी शुभकामना के साथ

सोहननाथ मोदी,
अध्यक्ष

चन्द्रराज सिघवी,
मत्री

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल,
वापू वाजार
जयपुर ३०२००३

विषय - सूची

विषय		पृष्ठाङ्क

आदर्श श्राविका

स्व० श्रीमती चन्द्रावल देवी हीरावत
(धर्मपत्नी श्री पद्मचन्द हीरावत, जयपुर)

जिनकी पुण्यस्मृति मे उनके सुपुत्र श्री प्रेमचन्द, धनरूपमल, सुरेन्द्रकुमार और नरेन्द्रकुमार हीरावत ने अर्थ-सहायता प्रदान कर प्रस्तुत पुस्तक प्रकाशित करवाई है।

गजेन्द्र व्याख्यान माला

(भाग २)

आत्म-परिष्कार

प्रार्थना

अविनाशी अविकार, परम रसधाम हे !
समाधान सर्वज्ञ, सहज अभिराम हे !
शुद्ध-बुद्ध अविरुद्ध, अनादि अनन्त हे !
जगत शिरोमणि सिद्ध, सदा जयवन्त हे !

राजकुमार सुबाहु और महाराज अदीनशत्रु प्रजाजनो की तरह श्रमण भगवान् महावीर की सेवा करने, वाणी-श्रवण करने, उनके वीतराग-स्वरूप का दर्शन और वन्दन करने के लिये चले जा रहे है। शास्त्र का यह प्रारम्भिक प्रकरण आपके सम्मुख है।

आप जानते हैं कि वीज का छोटा रूप बडे विस्तार का कारण वनता है। कारण छोटा होता है परन्तु उससे निर्मित होने वाला कार्य विशाल होता है, भव्य होता है। आपने देखा होगा कि वटवृक्ष का बीज कितना छोटा सा होता है, किन्तु उसका विस्तार बहुत वडा हो जाता है – वीज के अग से कई कोटि गुणा अधिक। इसके निर्माण का कारण कौन है ? बीज। यदि वीज न हो तो मूल वृक्ष किससे पैदा हो ? उसकी पत्तियाँ, शाखाएँ, प्रशाखाएं, फूल, फल इत्यादि किससे उत्पन्न हो ? यदि बीज ठीक स्थिति मे है और उसे अनुकूल सयोग प्राप्त होता रहता है, तो समय पाकर वह इतना विस्तार करता है कि दर्शक उसके विस्तार को देखकर चकित हो जाते हैं।

आत्मा अनन्त चेतना-शक्ति का बीज

हमारे अन्त करण मे भी एक बीज है, एक शक्ति है। इस शक्ति की अभिव्यक्ति भी एक छोटे से रूप मे है, इसलिये मैं इसे बीज कहता हूँ। जिस प्रकार बीज को योग्य वातावरण मिलने पर, नन्हे से बीज से विशाल वट-वृक्ष, आम्र वृक्ष आदि खडे हो जाते है और हजारो लोगो को अपनी ओर आकर्षित कर लेते है, ठीक उसी तरह हमारी भी स्थिति है। अपने भीतर रहने वाला जो चेतना का बीज है, उसमे तो अनन्त शक्ति है। उससे भी हजारो लाखो फूल-पत्तो के समान अमित दिव्य शक्तियाँ प्रकट हो सकती है।

एक बीज मे करोडो, अरबो बीज पैदा करने की शक्ति है। मैं यह सख्या कम बता गया हूँ। चर्मचक्षु वाले लोग भी इस पर विश्वास कर सकते है कि इतने छोटे से बीज से विशाल वृक्ष पैदा हो जाते हैं, नन्हा सा देखकर हमे उसकी उपेक्षा नही करनी चाहिये।

किसान इस बीज की पूरी तरह से सभाल करता है। सरसो का बीज छोटा सा होता है, उसकी सभाल आप नही करेंगे, किन्तु किसान उसको अच्छी तरह से सभालता है, क्योकि वह जानता है कि एक-एक बीज सभाल कर रखेगा, तो जिस समय खेती करेगा, उस समय हजारो पौधे इनसे पैदा करेगा।

हमारे देह मे रहने वाला आत्मा नितान्त नन्हा सा है। बिल्कुल छोटा। आँख की टीकी तो फिर भी बडी है – आत्मा बीज से भी अनन्तगुणा छोटा है। सैकडो गुणा छोटा होते हुये भी आत्मा को गुणो की दृष्टि से अनन्तगुणा बडा कह दे तो भी अनुचित नही होगा। यद्यपि आत्मा अरूपी है और बीज मे रग रूपादि विद्यमान है तथापि इस आत्मा मे जितना सामर्थ्य है, जितनी शक्ति है, उस अनन्तशक्ति के परमाणु तुल्य भाग के कोट्यानुकोटि अश की तुलना भी वट का बीज नही कर सकता।

हमारा आत्मा, आत्म-चेतना और शक्ति का बीज है। अब आवश्यकता केवल इस बात की है कि सुयोग्य वातावरण मे उस बीज को अकुरित करे, उसे प्रस्फुटित करे। इससे फल की वृद्धि कैसे की जाय ? आत्मा सबके पास है, ऐसा कह दें तो आपको विचार मे पडने की बात नही है। हमारे भाई-बहनो मे, बच्चो मे, बूढो मे,

सब मे आत्मा अवस्थित है, लेकिन दु ख की बात यह है कि वह आत्मा रूपी बीज पुराने मकान के ढह जाने से जो मलवा होता है, उसके बीच मे या मलवे के नीचे दवा पडा है ।

आत्मा की कर्म-मल से विमुक्ति

मकान के मलबे के नीचे दबे हुए बीज को समय-समय पर यदि वर्षा का पानी भी मिलता रहे, तब भी वह दवा हुआ बीज अपना विकास नही कर पायेगा । क्या उस बीज मे विकास करने की योग्यता नही है ? योग्यता अवश्य है । तव फिर बात क्या है ? क्या आवश्यकता है उसे ? जब तक उस बीज पर से पत्थर व मलवा न हटा लिया जाय, तब तक वह अकुरित नही होगा । हमारे चेतन रूपी बीज पर भी गणनातीत गिरीन्द्रो से भी अधिक मलवे और कीचड का भार पडा हुआ है, जिसमे दबे हुए हमारे आत्म-देव मे चेतना की योग्यता होते हुए भी उसका आगे विकास नही हो पाता । मकान के मलवे के नीचे दबे हुए खेत का वह हिस्सा, जहाँ अच्छे से अच्छा बीज गिरा हुआ है, यदि उसे विकास का मौका देना है तो गृहपति क्या करेगा ? मलबे को साफ करेगा । हमे और आपको भी यदि अपनी आत्म-शक्ति को विकसित करना है, तो उस पर पडा हुआ जो मलबा है, उसे साफ करना होगा । मलवा कौनसा ? कर्म का । उस मलवे को हटाएगा कौन ? कोई अलग से हमाल आकर उसे हटाएगा क्या ? नही । इस मलवे को हटाने का कार्य भी हमे स्वय को ही करना होगा । हाँ, किसी बाहरी मित्र का सहयोग उसी तरह से ले सकते है, जिस तरह कोई कारीगर अथवा मकान-निर्माता किसी ठेकेदार या इन्जि-नीयर से उचित मार्ग-दर्शन प्राप्त करता है क्योकि मार्ग-दर्शक अनुपम परामर्श देने वाला होता है । उसी तरह आत्म-शक्ति पर पडे हुए कर्म रूपी मलवे को दूर करने के लिये प्रयत्न तो आपको, हमको स्वय करना है । सहारे के रूप मे, मार्ग-दर्शक के रूप मे शास्त्रो और सद्-गुरुओ का सहयोग लिया जाता है । सद्गुरु और शास्त्र, हमे, मलवा कैसे दूर किया जाय, इसका उपाय बता सकते हैं । इसका मार्ग-दर्शन कर सकते हैं, लेकिन वह कचरा तो हमे स्वय को ही हटाना पडेगा । यदि उनके मार्ग-दर्शन को पाकर हम स्वय उस कचरे को हटाने के लिये तैयार न हो, प्रयत्नशील न हो तो हमारा दबा हुआ चेतना का

वीज कभी अकुरित नही होगा। जब तक उसके ऊपर से भार नही हटेगा, तब तक वह विकसित नही हो सकेगा।

आत्म-विकास के बाधक, आरम्भ एव परिग्रह

राजकुमार सुबाहु भगवान् महावीर की चरण-सेवा मे पहुँचता है। सर्वप्रथम उसने वह आवरण हटाया, जिस आवरण के कारण उसे ज्ञान-लाभ नही मिल पाता था। वह आवरण किस प्रकार का होता है इस सम्बन्ध मे स्थानाग सूत्र मे कहा गया है–

> दो ठाणाइ अपरियाणित्ता आया णो केवलिपन्नत्त धम्म
> लभेज्जा सवणयाए, तजहा – आरम्भे चेव परिग्गहे चेव।

दो कारणो से उलझा हुआ जीव केवली के प्रवचन को भी नही सुन सकता। गौत्तम ने जिज्ञासा भरा प्रश्न किया – "हे भगवन्! कौनसे दो कारण हैं, जो उत्तम धर्मश्रवण मे वाधक हैं?" प्रभु ने कहा – "आरम्भ और परिग्रह – इन दोनो मे जो जीव उलझा है, वह इन्हे अच्छी तरह समझकर जव तक इन उलझनो की वेडी को काट वाहर नही निकल जाता, तव तक केवली प्ररूपित धर्म को नही सुन सकता।" वस्तुत यह अति प्रगाढ वन्धन है। परिग्रह आरम्भ को छोडकर नही रहता। वह जन्मा भी आरम्भ से है और इसका समर्थन भी आरम्भ ही करता है। आरम्भ से ही परिग्रह वढता है। परिग्रह अपने दोस्त को वढाने का भी वडा ध्यान रखता है। वह जितनी चिन्ता आरम्भ को वढाने की करता है, उसकी लक्षाश भी सवर-निर्जरा को वढाने की नही करता।

गहराई से सोचें, गम्भीरता से चिन्तन व मनन करे तो ज्ञात होगा कि आरम्भ और परिग्रह के प्रति मनुष्य का अति प्रवल आकर्षण रहा है। छोटा सा आरम्भ चाहे खाने सम्वन्धी हो, चाहे निर्माण सम्वन्धी हो, चाहे कुटुम्व, परिवार, खेती आदि किसी भी रूप मे हो, उसमे मनुष्य जल्दी ही क्यो जुट जाता है? अतिकृपण स्वभाव वाला मनुष्य भी सोचता है कि पौत्र-जन्म हुआ है, हजार-पाँच सौ रुपये तो उत्सव पर खर्च करना चाहिये। हजार-पाँच सौ खर्च करने की योजना वनाता है पर खर्चा दो हजार रुपयो तक आ पहुँचता है, तव भी वह सोचता है कि कुछ भी हो गाँव अथवा समाज मे नाम तो होगा

ही । इसी प्रकार यदि घर मे कमरा बन रहा है, दो हजार खर्च करने का अनुमान बनाया था लेकिन कारीगर कहता है कि बढिया कमरा बनाना है तो पाँच हजार रुपये खर्च होगे । ऐसी दशा मे जो अनुमान लगाया था, उससे अधिक खर्च हो जाने पर भी मन मे खेद नही होता । किन्तु यदि किसी धार्मिक कार्य के लिये सवर, निर्जरा के कार्य मे दो हजार रुपये खर्च करने का अनुमान था और पाच हजार खर्च हो गये तो मुँह बिचका कर कहते है कि हमने तो दो हजार रुपये ही खर्च करने को कहा था, इससे अधिक नही दे सकेगे । हाथ रुक जाता है । इसका क्या कारण हुआ ? आरम्भ और परिग्रह की मित्रता है, दोनो का आर्थिक गठजोड है । ये दोनो ऐसे भयकर रोग है, जो हमारी चेतना-शक्ति को विकास का मौका ही नही देते । उसके बजाय क्या करते है ? उल्टा काम करते है । जैसा कि मैंने पहले बताया, मनुष्य केवली भगवान् के धर्म-श्रवण का अधिकार प्राप्त करता है तो वह इस बात को सोचता है कि यदि वह आरभ एव परिग्रह से मुँह मोडकर आगे बढेगा तो सत्सग का लाभ ले सकेगा और यदि इस लाभ से वचित रहता है, तो उसके भी दो ही कारण है । आप देखेंगे कि परिग्रह का मतलब केवल पैसा बढाना और तिजोरी भरना ही नही है, बल्कि कुटुम्ब, परिवार, व्यापार, व्यवसाय आदि मे उलझे रहना भी परिग्रह है ।

बाह्य एवं आन्तरिक परिग्रह

आपने बाह्य परिग्रह के ९ भेद सुने होगे और १४ भेद आभ्यन्तर परिग्रह के भी आपको ज्ञात होगे । ९ प्रकार के बाह्य परिग्रह को सक्षेपत सचित्त और अचित्त इन दो मुख्य भेदो मे समाविष्ट किया जा सकता है । धन, धान्य, क्षेत्र, भूमि, भवन, वन, उपवन, सोना, चाँदी, जवाहरात, दास, दासी, पशु, पक्षी, घरेलू सामान आदि सभी परिग्रह के सचित्त और अचित्त इन दो भेदो मे आ जाते है । तात्पर्य यह है कि जैसे सोना, चाँदी, हीरा, जवाहरात, भूमि, मकान ये सब परिग्रह मे है, वैसे ही कुटुम्ब, परिवार और दास दासी भी परिग्रह मे सम्मिलित है । बाहरी परिग्रह तो ये दीखने वाली चीजे हो गई, और आन्तरिक परिग्रह मन मे रहने वाला स्नेह, मोह, ममता आदि हैं जो बाह्य परिग्रह के मूलाधार है । इनमे उलझा हुआ प्राणी सत्सग का

लाभ नही ले सकता। यदि मोह का बन्धन ढीला करने के लिये भक्ति का मार्ग अपना लिया जाय तो कौन दव जायेगा ? मोह दव जायेगा। यदि मोह की जड भक्ति की अपेक्षा अधिक सवल होगी तो निश्चय ही भक्ति दव जायेगी।

आपने महाराज भरत चक्रवर्ती के सवन्ध मे वहुत कुछ सुना होगा। एक समय जव वे अपने राज्य-सिहासन पर विराजमान थे तब उनके पास सूचना आती है कि उनकी आयुध-शाला मे चक्र-रत्न प्रकट हुआ है। चक्र-रत्न, चक्रवर्ती के जीवन मे आशा का सचार करने वाला साधन होता है। चक्रवर्ती के जीवन की सफलता के मूल साधन चक्र-रत्न के उत्पन्न होने की सुखद सूचना उन्हे सर्वप्रथम मिलती है। उसी समय एक दूसरी सूचना भी उन्हे मिलती है कि उपनगरीय उद्यान मे भगवान् आदिनाथ पधारे हैं और उन्हे केवलज्ञान प्राप्त हुआ है। यह भी वडे हर्ष की वात है। दोनो ही सुखद समाचार उन्हे मिलते है, एक के वाद एक। आप धर्म मे वडी श्रद्धा रखने वाले है। कदाचित् ऐसा प्रसग आ जाय, व्याख्यान के समय आपके पास सूचना आ जाय कि अपनी फर्म मे विदेशी व्यापारी अभी पहुँचा है और १० वजे वह पुन लौट जायेगा। उधर यह मौका, और इधर व्याख्यान का समय ६-१० वजे के वीच का है। वही समय उस व्यापारी को माल दिखाने का है तो मित्रो ! जरा वताओ, आप मे से कौन वधु यह कहने की हिम्मत रखता है कि यह समय हमारे प्रवचन-श्रवण का है, इसलिये यदि व्यापारी आया है तो उसे ठहरना होगा। व्याख्यान के वाद उससे वात करेंगे। क्या आप व्यापार मे इतनी ढील दे सकेंगे ? स्थिति वडी विचारणीय है। मन चाहता है कि व्यापार की ओर जाय और श्रद्धा कहती है कि प्रवचन सुनने को जाये। आप ही सोचिये कि दोनो मे से कौनसा सम्वन्ध आपको पहले खीचेगा ? क्या व्यापार की तरफ ? व्यापारी साँगानेर हवाई अड्डे पर उतरा है, खवर आ गयी, 'टेलीफोन' कर दिया और इधर का टेलीफोन पहले से हो है कि प्रवचन होने वाला है। मैं समझता हूँ कि आपका मन डावाँ-डोल होगा। कारण कि आपमे मे अधिकाश लोग ससार के धन-धान्य और कुटुम्व-परिवार मे इतने अधिक अनुरक्त है कि वीतराग की भक्ति का भाव उसके सम्मुख नगण्य सा है। परिवार और धन्य-धान्य के प्रति मोह मोल्लह आना है तो वीतराग के प्रति

भक्ति भाव, आना, दो आना या चार आना, अलग-अलग लोगो मे अलग-अलग मात्रा मे मिलेगा। लेकिन इतना स्पष्ट है कि यदि उधर १६ आना है तो इधर १२ आना या १४ आना ही हो सकता है।

कभी कभी लोगो के मुख से ऐसा प्रश्न निकलता है—"महाराज! ऐसे वडे-वडे पैसे वाले आदमी भी भक्ति-भाव की हिम्मत नही कर सकते तो हम गरीब, जो दाल-रोटी के लिये भागते है, कैसे हिम्मत करे?" मुझ से बहुत से लोग ऐसा प्रश्न करते है। लेकिन उन्हे विचारना चाहिये कि साधन-सम्पन्न होते हुए भी, मन मानते हुए भी जब तक आत्म-बल जागृत नही होता तब तक उस मोह पर विजय प्राप्त करना सरल नही है।

भरत चक्रवर्ती के सम्मुख दो प्रश्न आये। उन्होने सोचा कि पहले किधर जाना चाहिये। एक ही क्षण मे वे निर्णय करते है कि चक्र-रत्न भौतिक उपलब्धि है, वह उत्पन्न हुआ है, यह खुशी की बात है? पर ये पुद्गल, जो आज उत्पन्न हुए है, वे कल जाने वाले हैं। लेकिन भगवच्चरणो मे वन्दन और केवलज्ञान की महिमा के अनुपम आध्यात्मिक सुयोग क्या पुन पुन प्राप्त हो सकते हैं? उस समय एक कहावत भरत को याद आ गई—'एकहि साधे सब सधे, सब साधे सब जाय।' कवि ने ठीक कहा है कि एकहि साधे सब सधे अर्थात् एक को साधने से सब सध जाते है लेकिन एक साथ सबको साधेगे तो क्या होगा? सब साधे सब जाय।

एक बात मै बीच मे कह देता हूँ, कुछ लोग सोचते है—'अपना काम तो पहले करले, महाराज को भी राजी कर लेगे। जब १०-१५ मिनट शेप रहते हैं, तब वे लोग यहाँ आकर अगल-बगल मे बैठ जाते है ताकि महाराज की नजर मे भी आ जावे और पता भी नही लगे कि देरी से आये है। आज ऐसे लोग भी है, जो स्वार्थ और परमार्थ दोनो को एक साथ साधना चाहते हैं। वे यह नही सोच सकते कि यह धर्म-कार्य भी करना है और व्यापार भी करना है, लेकिन धर्म कार्य पहले और व्यापार का कार्य पीछे करना है। आरम्भ और परिग्रह को ठोकर मारने की हिम्मत चाहिये। जब तक आप मे यह हिम्मत नही है, तब तक आप ठोकर नही मार सकते।

भरत मे अद्वितीय आत्म-वल था। उन्होने सोचा – "चक्र रत्न के वल पर मै चक्रवर्ती नही वनने वाला हूँ। चक्रवर्ती वनने की योग्यता तो मेरी आत्मा मे है। यह चक्र-रत्न मेरे पुण्य-वल के पीछे आया है।" प्रभु-भक्ति मे विश्वास रखने वाला आदमी भौतिक चीजो को सहज ही मे ठोकर मार देता है।

प्रसगवश एक प्राचीन घटना याद आ गई। किसी भाग्यशाली नगर सेठ की वात है। उसकी श्री-सम्पन्न दशा मे, चढते पुण्योदय के समय मे उनके यहाँ एक योगी आता है। सेठ ने उनका सम्मान किया, आत्मीयता के साथ उनकी वडी आवभगत की। योगी वडा प्रसन्न हुआ। जाते समय वावा ने सेठ से कहा – "सेठजी मुझे बहुत खुशी है, लो मेरे पास यह पारस है, इसे तुम ले लो।" सेठ ने पूछा – "पारस से क्या होता है?" वावा ने कहा, "इस चिमटे पर पारस को रगडने से सोना हो जाता है।" यह सुनकर सेठ का मन मचलना चाहिये था या नही? आपके सामने यदि ऐसा वावा आ जाय तो? दो मिनट सामायिक मे वाकी है और यदि वावा कहे – "मै जा रहा हूँ" तो? नगर सेठ का इम्तिहान था। लेकिन वह आत्म-विश्वासी था। उसने वावा के हाथ से चिमटा ले अपने ललाट से छुवाया। चिमटा सोने का होगया। वावा लज्जित हो चला गया। आप लोगो मे इतना आत्म-विश्वास नही है। पहले के जमाने के लोग क्यो धर्म मे आस्था रखते थे? उनके मन मे विश्वास था, वे धार्मिक कार्य करते थे। आप भी धार्मिक कार्य करते हो। दोनो मे क्या फर्क है? आप कहोगे – "हम कोई खोमचे वाले थोडे ही है, हम भी सेठ है, जौहरी है। विदेशो मे हमारा धन्धा है। आत्म-विश्वास से धन्धा होता है।" पर पुराने जमाने के लोग आत्म-विश्वास के कारण दिन भर हाय-हाय नही करते थे। अपना समय धर्म के लिये भी देते थे। ४ बजे तक अपना धन्धा करते और फिर अवकाश ले लेते। आज जौहरियो की सख्या वहुत वढ गई है। व्यापार का क्षेत्र भी वढा है, ऐसा कहूँ तो गलत नही होगा। पहले इतना विस्तार नही था, जितना आज हो गया है। और लाभ भी भरपूर है। लेकिन आज इस धन्धे मे भी लोगो को सन्तोष नही रहा।

भगवान् महावीर का शासन कहता है कि इसान को इतना परेशान होने की आवश्यकता नही है। तो आप अपने आप को

परेशान क्यो कर रहे है ? क्या आज आपको अपने भाग्य पर विश्वास नही है ? एक छोटा-सा प्रश्न है। मै अपनी बात पर आता हूँ।

आचार्य शोभाचन्दजी महाराज ने अपने जीवन के बीस वर्ष जयपुर मे बिताये। चौदह वर्ष के लगभग उन्होने आचार्य विनयचन्दजी महाराज की सेवा मे रहकर ज्ञान की भरपूर आराधना की। जयपुर के लोगो को ज्ञान देकर उन्होने उपकार किया। उन महापुरुष की पावन पुण्य तिथि भी श्रावणी अमावस्या को है।

आज का भी यह एक महत्वपूर्ण दिन इस नगर के एक लाल को याद करता है। इस नगर का एक जौहरी-पुत्र भोग-मार्ग से योग-मार्ग की ओर दृढ सकल्प लेकर निकला। वर्षो पहले पाटनी सुजानमलजी, सेठ सुजानमलजी और किस्तूरचन्दजी, ये तीन रत्न इस नगर से निकले, सवत् १९५१ मे। उसके बाद बीस वर्ष का समय चला जाता है। इतने समय बाद फिर एक लोढा कुल के उदीयमान नौजवान सागरमलजी ने २५ वर्ष की तरुण अवस्था मे त्याग-मार्ग की ओर अपने आप को अग्रसर किया। सयम-साधना मे उनका ज्ञान पक्ष तो अधिक नही बढ पाया, लेकिन उन्होने गुरु-चरणो की सेवा, तप और ज्ञान की लगन से अपने जीवन को पीछे भी नही हटने दिया। आप लोगो मे से बहुतो ने उनके दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त किया होगा। पीछे की पीढी कदाचित् नही जानती हो।

आध्यात्म-पथ मे आत्मविश्वास

यह जान लेना साधक के लिये परम आवश्यक है कि आत्म-विश्वास से आदमी क्या-क्या कर सकता है ? केवल व्यापार मे ही आदमी आत्म-विश्वास के बिना पिछडा रह जाता हो, यह बात नही है ? आध्यात्मिक क्षेत्र मे भी विश्वास नही होता है, तो वह पिछड जाता है ? सागर मुनिजी एक दिन का उपवास भी करते थे तो पारणे के दिन उनके गले मे गाँठे पड जाती थी। उनके गुरुदेव का सवत् १९८३ मे स्वर्गवास होने के पश्चात् गुरु-भक्ति मे उन्होने सकल्प कर लिया – "आज से मै दवा सेवन नही करूँगा।" शरीर के लिये कहते है – 'शरीर व्याधि मदिरम्'। इस शरीर मे कितनी व्याधियाँ है ? जो लोग इच्छाओ को वश मे रखने वाले है, वे भी व्याधि के समय कभी व्यवहार के खातिर, परिवार के

सन्त शरण

प्रार्थना

वन्धुओ !

विपाक का प्रथम अध्ययन आपके सम्मुख चल रहा है। इस अध्याय का चरित्र नायक सुवाहु है। वह कोई छोटे-मोटे परिवार का नही अपितु राजघराने का राजकुमार है। वह कहाँ पहुँचा है? भगवान् महावीर के समवसरण मे। प्रतीत होता है कि उस युग के मानव, चाहे वे अमीर हो अथवा गरीव, सभी अपना जीवन, मात्र खाने-कमाने मे ही व्यर्थ नही गँवाते थे, वल्कि वे धर्म का मूल्य भी समझते थे। अपने जीवन को कैसे सार्थक किया जाय, इस वात की जिज्ञासा भी उनके मन मे रहती थी। यही कारण है कि सुवाहु कुमार प्राप्त भोग-सामग्री से उन्मुख होकर प्रभु सेवा मे पहुँचा। यदि कोई अन्य व्यक्ति वहाँ जाता तो सभव है आप सोचते कि भगवान् महावीर से कुछ पाने की आशा से जा रहा है। कोई व्यवसायी जिसे व्यवसाय मे अभी कुछ मिला नही है, वह सतो के पास इसलिये भी जा सकता है कि सत यदि ठडी नजर से उसकी ओर देखले तो उसे लाभ हो सकता है। कोई व्यक्ति विदेश जा रहा है, तो वह सतो के पास इस निमित्त भी आएगा कि महाराज का आशीर्वाद मिलने से उसकी यात्रा सफल हो सकती है। आप ऐसी कल्पना न करे कि सुवाहु भी ऐसा ही था। सुवाहु राजघराने मे उत्पन्न एक राजकुमार था, उसे किसी भी वस्तु का अभाव नही था। वह मात्र ज्ञान की पिपासा लेकर प्रभु की शरण मे पहुँचा था। यो भगवान् की भक्ति कई तरह के लोग करते है। एक तो वे लोग है, जो घवराये हुए होते है। कौटुम्विक कारणो से या सासारिक कारणो से जिन पर विपत्ति आयी है अथवा व्यापार या रोजगार के कारण उलझन मे फँसे

हुए है। वे शान्ति के साथ रहना चाहते हैं, अत वे लोग हमारे पास पहुँचते है। यदि वे और जगह पहुँचे तो नोट सरकाने पडेगे, तव सलाह मिलेगी। लेकिन यहाँ विना पैसा खर्च किये, थोडा सन्तो के चरणो मे शीश झुकाने से काम हो जायेगा, इसलिये सन्तो की सेवा मे भगवद्-भक्ति की ओर जाने वालो मे पहला नम्बर इनका वताया है। ऐसे लोग दु खार्त्त होकर, दु ख से पीडित होकर दु ख निवारण हेतु भगवान् की सेवा करते हैं। दूसरा नम्बर उन लोगो का है, जो जिज्ञासा हेतु आते है। अपने जीवन की उन्नति, अवनति के सम्वन्ध मे जानकारी करने की दृष्टि से अथवा दूसरे मत-मतान्तरो के और अपने धर्म के स्वरूप को जानने की जिज्ञासा के लिये सत्सग मे पहुँचते हैं।

आज के मानस का मोड किस ओर ?

तीसरी श्रेणी मे वे लोग आते है, जो अर्थार्थी हैं। ससार मे सवसे अधिक सख्या अर्थार्थियो की है – यह साधारण सी वात है। ये सव एक ही घाट का पानी पीये हुए होते हैं। न मालूम इन सव की माताओ ने इन्हे एक ही तरह का दूध पिलाया है क्या ? आपका १४-१५ वर्ष की आयु का वच्चा भी यह सोचने लगता है कि वह कौनसा धन्धा करे, कौनसा व्यवसाय या नौकरी करे, जिससे उसे अर्थ-लाभ हो। यह फिक्र उसकी चितन-धारा मे कव उदित हो जाती है ? आपके वच्चो मे यह भावना सभवत प्रारम्भ से ही जमी हुई मालूम होती है। लेकिन यह भावना उनके मन मे नही जगती कि उनका कल्याण कैसे हो। कैसे ऊचे घर मे जन्म हुआ है, कैसे साधन मिले है, कैसी सामग्री मिली है ? इन सव साधनो और सामग्रियो का उपयोग धर्म-साधना मे क्यो नही करूँ ? क्यो न मैं धर्म-शास्त्रो का स्वाध्याय कर ज्ञान का उपार्जन करूँ ? ऐसी भावना वाले कितने नौजवान मिलेंगे ? कितने नौजवानो को यह विचार होता है कि हमने वी. ए या एम ए की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है और शिक्षा पूर्ण हो गयी है। अव फिर भी अगर अध्ययन करना है तो धर्म-शास्त्रो का अध्ययन करे, सतो की सेवा मे रहे ? ऐसा सोचने वाले कितने लोग होगे ? नगण्य। लेकिन धन कमाने के लिये कौनसा उपयुक्त स्थान है ? जयपुर, वम्बई, या अमेरिका आदि, ऐसा सोचने वाले कितने लोग होगे ? धर्म

की लहर मन मे आये, ऐसे बहुत कम लोग होगे। भले ही दादाजी घर मे प्रयत्न करते रहे कि कल चतुर्दशी है सघ, के साथ बैठना है, व्याख्यान सुनना है, पर आपके मन मे यह बात नही आती। जिन घरो मे सत हुए है, सेठ सुजानमल जी जेसे त्यागी, तपस्वी हुए है, अथवा जिस घर मे धोरी श्रावक हुए है, उनकी सतानो के मन मे भी यह बात क्यो नही आती कि हमारे पिताजी, पितामह धर्म मे लगन रखते थे, सतो की सेवा मे रहते थे, शास्त्र पढते थे, उनका ऊँचा चरित्र था, हम भी क्यो नही उनके पद-चिन्हो पर चले ? उन लोगो के उदीयमान बच्चे आज शिक्षा-क्षेत्र मे अच्छे से अच्छे नम्बर पाकर उत्तीर्ण हो रहे है। जो व्यवसाय मे लग गये है, उनका मन भी व्यवसाय मे तो खूब लग रहा है, उस क्षेत्र मे वे अत्यधिक प्रगति कर रहे है, लेकिन वे ज्ञान, दर्शन और चारित्र की अभिवृद्धि नही कर रहे है – इसका क्या कारण है ? आप विचार करे।

भौतिक सुखो के प्रति उदासीनता

सुबाहु राजकुमार था, उसके मन मे धर्म-पिपासा थी, ज्ञान-पिपासा थी, आपकी तरह अर्थ पिपासा नही। अर्थ-पिपासा के लिये आप और आपके बालक कहाँ-कहाँ जाते हैं ? आपके बच्चे चार-छ महीनो के लिये अमेरिका चले गये, आपसे दूर रहे, तो आप बर्दाश्त कर लेते है। आपको याद नही आयेंगे। लेकिन आपका एक बच्चा छ महीनो के लिये हमारे साथ रह जाय तो याद करोगे कि नही ? मान लीजिये आपका एक बच्चा हागकाग मे रह रहा है, एक अमेरिका मे रह रहा है, या इग्लैण्ड मे रह रहा है, और १२-१२ महीनो से वे लगातार बाहर रह रहे है, तो भी आपको नागवार नही मालूम होगा। यदि आप कहोगे कि नागवार लगता है, तो भी मैं मजूर नही करूँगा। आप यही कहोगे कि इतने दिनो से वहाँ रह रहा है, अच्छा काम-काज कर रहा है। अगर दूसरे भाई का बच्चा १२ महीने तक हमारे साथ रह जाय तो कितने भाई कहने को तैयार होगे ? बम्बई या विलायत जाकर कमाई का हिसाब बैठाता हो तो आपको अच्छा लगेगा, लेकिन सतो के साथ छ महीना रहकर ज्ञान की वृद्धि करना चाहे तो उसे आप अच्छा नही कहोगे। हाँ, तो बात सिर्फ इतनी ही है कि आज बच्चो के मन मे अर्थ-पिपासा जगाने की आवश्यकता है या ज्ञान-पिपासा अथवा धर्म-पिपासा जगाने की ?

वन्धुओ ! आपको सम्यक्-दर्शन और जैन धर्म का परिचय कम है। सुवाहु की अपेक्षा आपका ज्ञान भी सीमित है। सुवाहु मे ज्ञान-पिपासा थी इसलिये वह अपने वैभव को और भोगविलास के जीवन को छोडकर कहाँ पहुचता है ? भगवान् महावीर की सेवा मे। लेकिन आज के वच्चो एव नवयुवको मे वैभव और भोगविलास के प्रति आकर्षण अधिक होता है या सत्सग के प्रति ? आप अपने परिवार के लिये जो कुछ प्रयत्न करते हैं, वह आपका व्यावहारिक कर्त्तव्य है। आज आप अपने धार्मिक कर्त्तव्य को भुला वैठे है। जिस तरह आप खाने-पीने और कमाने के लिये अलग-अलग व्यावहारिक प्रयास करते है, उस प्रकार धर्म के सम्वन्ध मे प्रयास नही करते। घर मे किसी की तवीयत ठीक नही रहती है, तो उसका इलाज कराने का तरीका आप सोचते है। यदि वही वालक महीने भर से धार्मिक और नैतिक क्रियाये ठीक तरह से नही कर रहा है, तो क्या आप उसके लिये चिन्ता करेगे ? नही। ससार मे स्वास्थ्य बिगडना ज्यादा खतरनाक है या मानसिक धरातल का विगडना ? एक तरफ शरीर बिगड रहा है, तवियत खराव हो रही है और दूसरी तरफ मन विगड रहा है, धर्म-ध्यान मे रुचि नही रहती है, तो आप किसे ठीक करने की चिंता करोगे ? तवियत खराव है तो वैद्य या डॉक्टर के पास दौड-धूप करोगे। यदि वालक धर्म मे रुचि नही ले रहा है, दोस्तो के साथ इधर-उधर आवारा घूम रहा है, व्यसनो मे उलझ रहा है, तो आप किस ओर ज्यादा ध्यान दोगे ? उसको जल्दी से काम धन्धे मे लगाकर दोस्तो से उसका ध्यान हटाने का प्रयत्न करोगे या सत्सग मे, दो-चार दिन से क्यो नही आ रहा है, इसकी ओर ज्यादा ध्यान दोगे ? जरा ईमानदारी से वोलिये। मैं यह कोई वैयक्तिक दृष्टि से नही पूछ रहा हूँ। वल्कि यह सामूहिक प्रश्न है। ध्यान देने की वात है कि आपने महापुरुषो का चरित्र सुना, पढा, और धर्म के वारे मे जाना, लेकिन इसके साथ ही साथ आप चेतना का मर्म समझने की भी कोशिश करे।

विषय कषायो का त्याग · ज्ञान-पिपासा का उदय

मै वता रहा था, राजकुमार सुवाहु प्रभु के चरणो की शरण मे गया, क्योकि उसके मन मे ज्ञान-पिपासा थी। उसने देखा कि दुनियाँ के वडे से वडे लोग, चाहे धनी हो अथवा अधिकारी-वर्ग

या शासक-वर्ग के, सभी विषय-वासना के पीछे दौड रहे है। लेकिन इसके विपरीत प्रभु महावीर इन्द्रिय-भोग को छोड आये हे, हजारो श्रमण अपने विपय-कषायो को छोडकर इनके पीछे चल रहे है। देखे उनको इसमे क्या आनन्द आ रहा है ? उनकी जीवनचर्या क्या है ? इस जिज्ञासा को लेकर सुवाहु पहुँचा भगवान् की चरण सेवा मे।

सत समागम . अज्ञान तिमिर का तिरोधान

पहले पहल शास्त्र सुनने पर क्या प्रतिक्रिया जीवन पर होनी चाहिये। सुनने के पश्चात् पहला असर क्या होता है, तथा सुनने के पश्चात् पहले-पहल आत्मा मे क्या जागृति होती है ? भगवती सूत्र मे सत्सग से होने वाले लाभ के रूप मे कतिपय वोलो का उल्लेख करते हुए कहा गया है –

सवणे नाणे विन्नाणे, पच्चक्खाणे य सजमे।
अणन्हय-तवे चेव, वोदाणे अकिरिया सिद्धी ॥

अर्थात् :– सत्सग से श्रवण, ज्ञान, विज्ञान, प्रत्याख्यान, सयम, अनास्रव, तप, कर्म का अवध, अक्रिया और सिद्धि का लाभ प्राप्त होता है।

सुबाहु पहले पहल कह रहा है –

निग्गंथ पावयण सद्दहामि पत्तियामि,
रोएमि, फासेमि, पालेमि, अणुपालेमि।

'भगवन्! मैंने अभी आपका वीतराग प्रवचन सुना, और सुनकर उस पर मुझे श्रद्धा हुई।' सुना और श्रद्धा उत्पन्न नही हुई तो समझना चाहिये कि फल नही मिला। सुनने की प्रथम प्रतिक्रिया क्या है ? श्रद्धा। सुनी हुई वात पर, तत्व विचार पर मन मे श्रद्धा का होना ही सुनने का पहला फल है। सुवाहु कहता है– "मै आज तक यही सुनता एव मानता आ रहा था – 'धन शरण' – धन ही सारभूत शरण्य है। 'धन मगल' – ससार मे धन ही मगल है, वैभव और लक्ष्मी ही मगल है, उत्तम है।" भौतिकवादी लोगो की निगाह मे धन मगल है, उत्तम है। लेकिन सुवाहु कहता है– "महाराज, मुझे अव श्रद्धा हुई है। आज तक मै भौतिकवादी निगाह से देखता था, पर अव मैने देखा है कि एक गुरु क्या करता

है, जो लेता-देता कुछ भी नही है। चुल्लू भर पानी भी नही पिलाता। ऐसे निर्ग्रन्थ गुरु के पास भक्त पहुँच जाय तो न तो वह उससे कुछ लेता है और न उसे कुछ देता ही है। वह तो एक काम करता है—ज्ञान के अन्धकार को हटाकर शरणागत के ज्ञान-चक्षु खोलता है। **'ज्ञानाजन-शलाकया'** के माध्यम से प्रकाश करता है और अज्ञान का जो चक्र घूमता है, उसको दूर करता है।" इसका अर्थ यह है कि सुवाहु कुमार भगवान् की वाणी सुनकर अत्यन्त गद्गद् हुआ। वह परम श्रद्धा से नत होकर वोला—'भगवन् ! आपकी वाणी पर मुग्ध हूँ।" वह पहले-पहल मिला है। आपको इसका पता तव चले जब आपके मन मे धर्म पर श्रद्धा हो, साधना मे श्रद्धा हो। वास्तविक रूप से जब तक जागृति नही होती, तब तक ही कहने की आवश्यकता रहती है।

धर्म के बिना धन आग लगा देगा

मोटरकार लेकर जाने वाले भाई को यह कहने की क्या आवश्यकता है कि वावू साहव ! कार मे पेट्रोल की टकी भरी है लेकिन पानी नही भरा है ? जरा ध्यान देना। आप बिल्कुल निश्चिन्त है कि पेट्रोल की टकी भरी हुई है। लेकिन साथ मे यदि पानी नही हुआ तो कार का इन्जिन गर्म हो जायेगा और उसके गर्म होते ही आग लगने मे कोई देर नही लगेगी। जो पेट्रोल गाडी को गति देता है, वही उसे जलाने वाला होगा। याद रखे धन रूपी पेट्रोल के साथ धर्म रूपी पानी यदि नही होगा तो धन भी आग लगा देगा। कोई मेरी वात से चकित होकर यह न समझ जाय कि क्या कह रहे है महाराज, क्या अर्थ लगा रहे है ? मै यह कह रहा हूँ, धन आग लगा देगा कलेजे मे। धन रूपी पेट्रोल किसको जलायेगा ? कलेजे को और कलेजा फटते ही हृदय मे आग लग जायेगी। कहने का तात्पर्य यह है कि धन रूपी पेट्रोल के साथ धर्म रूपी गगाजल अगर न ही होगा तो गाडी आगे नही चलेगी। इसी तरह यदि धन के साथ धर्म भी है और नेत्र खुले है, तो मजिल निश्चय ही पार हो सकेगी। याद रखो पेट्रोल क्या काम करता है ? इन्जिन को गति किससे मिलती है ? पेट्रोल से। यदि पेट्रोल नही है तो इन्जिन को गति नही मिलेगी। आपकी रौनक, चमक-

दमक, शान-शौकत, वैभव, बढिया वस्त्र, आभूषण, खान-पान, मकान, कोठी – ये सारे के सारे किस पर है ? ये सारे के सारे पैसे पर निर्भर है। आपके व्यापार को गति पैसा देता है, इसलिये मैने पैसे को पेट्रोल कह दिया।

जीवन मे धर्म की अनिवार्य आवश्यकता

गाडी मे पेट्रोल कितना आवश्यक है–इस बात को आपकी आत्मा मानती है। इसी प्रकार जीवन मे धर्म की आवश्यकता को भी आपकी आत्मा मान ले। इसी प्रसग मे सबसे पहले जिस दिन आपकी आत्मा, गाडी मे पेट्रोल के साथ पानी की तरह अपने जीवन मे धन के साथ धर्म की जरूरत महसूस करेगी, उस दिन सत-मण्डली को छोटे-मोटे श्रावको के लिये रास्ता बताने की, कहने की आवश्यकता नही पडेगी। जब तक यह कहने की आवश्यकता पड रही है, तब तक हम समझ रहे है कि श्रद्धा आप पर थोपी हुई है, लादी हुई है, वस्तुत धर्म पर श्रद्धा आपके अन्तर मे जागृत नही हुई है।

मै जिस व्यक्ति की बात कह रहा था, जिस शृ खला मे बात कह रहा था, वहाँ उसने क्या देखा ? उसने देखा कि उसके पास धन एव वैभव की कमी नही है, लेकिन उसके पास ज्ञान का निर्मल तथा शीतल जल नही है और भगवान् महावीर के पास ज्ञान का जल अथाह है, इसलिए वह महावीर के चरणो मे पहुँचा। पहली बात उसने कही – "हे श्रमण भगवान् ! मैने आपके वचन का श्रवण किया है।" दूसरी बात उसने कही – "पतियामि ण भते निग्गथ पावयण।"

अमृतपान के अनन्तर कौन चाहेगा – खारा जल पीना ?

भगवान् महावीर के प्रति सुबाहु का वश–परम्परा से कोई सम्बन्ध नही था। केवल एक जिज्ञासा थी उसके मन मे कि उसके पास धन रूपी पेट्रोल तो है लेकिन ज्ञान रूपी निर्मल एव पावन जल नही है। और प्रभु महावीर ज्ञान के समुद्र है। ज्ञान दो तरह के होते है – एक सम्यक् दूसरा मिथ्या। समुद्र भी दो तरह के होते हैं – एक लवण समुद्र और दूसरा क्षीर समुद्र। यदि लवण समुद्र मे जाकर कोई अपनी प्यास बुझाना चाहे तो बुझेगी नही ? इसी तरह मिथ्यात्वी के पास जाने से ज्ञान की प्यास बुझेगी नही ? जिस तरह लवण समुद्र के

पास जाने से प्यास नही बुझती, उसी तरह मिथ्यात्वी के पास जाने से ज्ञान की प्यास नही बुझेगी । सुबाहु पहुँचा महावीर की सेवा मे, जिनके पास ज्ञान का क्षीर समुद्र है । आपने भक्तामर स्तोत्र पढा ही होगा । उसमे आचार्य मानतुग ने कहा है – "भगवान् की ओर एक वार दृष्टि पहुँच गयी, तो दूसरी तरफ नजर नही जायेगी ।" वह कहते है – "भगवन् ! जिसने क्षीर समुद्र का अमृत जल पी लिया है, क्या वह कभी खारा जल पीना चाहेगा ?" जिसने वीतराग को देव समझ लिया है और वीतराग की वाणी का अमृत पी लिया है, वह भला अन्य मिथ्या वातो के खारे जल को पीने की क्यो इच्छा करेगा ? इसलिये सुवाहु कह रहा है – "हे भगवन् ! मै आपके प्रवचनो पर प्रतीति कर रहा हूँ । आप जो मार्ग वता रहे है, उसे ग्रहण करूँगा, तभी मेरी आत्मा को शान्ति मिलेगी ।"

तीसरे चरण मे श्रद्धा और प्रतीति के पश्चात् रुचि की वात कही गयी है । आखिरकार किसी भी मार्ग मे कदम रखने के लिये रुचि होनी चाहिये । श्रद्धा है और प्रतीति भी है पर रुचि नही है तो भोजन नही होगा । इसलिये तीसरे नम्बर पर कहता है – "भगवन् ! 'रोएमि निग्गथ पावयण ।" सुबाहु कहता है – "हे प्रभो ! मै वीतराग को पहचानता हूँ और आप द्वारा बताये गये मार्ग पर रुचि रखता हूँ ।" रुचि का तात्पर्य है कि वह भी उस मार्ग को हृदय से चाहता है ।

धर्म और ज्ञान के प्रति रुचि जगाएँ

ससार मे रुचि किसको बोलते है ? कभी आप मे से किसी भाई को बुखार के अनुभव का अवसर आया या नही ? बुखार मे भोजन सामने होते हुए भी मन मुकर जाता है, हाथ हट जाता है, ऐसा भी अवसर आता है । क्या भोजन पर आपकी श्रद्धा नही है ? माँ, वाप और पत्नी कहती है कि थोडा खा लो, नही खाओगे तो कमजोरी आएगी और उठना-बैठना मुश्किल हो जायेगा । इस बात पर भी आपको भरोसा है, फिर भी आप कह रहे हैं कि खाने मे रुचि नही है । लेकिन जब दूसरे दिन बुखार टूटता है और रुचि जग जाती है, तव आप स्वय पूछने लग जाते है कि भोजन वन गया या नही ? यदि नही बना है तो और कोई चीज खाने को माँगोगे । रुचि जगने के वाद गरम भोजन तैयार नही है तो ठण्डा भी खाने को तैयार हो

जाओगे। यह क्या वात हुई ? यह रुचि की वात है। इसलिये यह कहा है कि जिस जीव का तन स्वस्थ नही है, उसको भोजन की रुचि नही होती। ठीक उसी प्रकार जिसका मन स्वस्थ नही है, उसको धर्म पर रुचि नही रहती। जैसे बुखार टूटते ही भोजन मे रुचि होने लगती है, वैसे ही मन से विकार हटने पर ज्ञान मे रुचि हो जाती है, साधना मे रुचि हो जाती है, धर्म मे रुचि हो जाती है। दोनो मे रुचि कई वार मन्द हो जाती है, कई वार जग जाती है। आपकी जिन्दगी मे कई वार ऐसे अवसर आ चुके है। भोजन का समय टल गया और बुखार उतर गया तो उस समय खाने के लिये और कुछ नही है तो भूँगडे लेकर भी चबाये हैं, ऐसे दिन भी अनेको को याद होगे। इसी तरह ज्ञान और धर्म मे रुचि हो जाती है, तव आदमी ससार के विविध आकर्षणो को ठोकर मार कर धर्म और भगवान् की वाणी को सुनने व समझने के लिये आतुर हो उठता है। सुबाहु कहता है – "भगवन् ! मेरी श्रद्धा, प्रतीति और रुचि जगी है।" प्रसग की वात है कि एक राजकुमार होकर वह अव्रती से देशव्रती वनता है। गृहस्थ धर्म का पहला कदम क्या है ? जैन कुल मे आपने जन्म पाया, अरिहन्त को देव समझा, निर्ग्रंथ को गुरु जाना एव अहिंसा को धर्म माना और जीवन का मूल्य समझा। आरभ और परिग्रह जहाँ तक आवश्यक है, उतने मे ही शान्ति और कल्याण है – इसको सुना, सोचा, लेकिन इस वावत कदम नही वढाया। तो श्रवण मात्र से श्रावक कव तक वने रहोगे ? क्या जिन्दगी को पार करना है, श्रेणिक की तरह ?

अपरिग्रह : एक आवश्यक कदम

श्रेणिक को कुछ पुरातन सस्कारो एव अपने कषायो के आवरण के कारण, व्रत-नियमो मे आगे कदम वढाने का मौका नही मिला। उसके मन मे व्रत व चारित्र धारण नही करने का खेद हुआ या नही ? हुआ। आपके मन मे भी खेद है क्या ? किस वात का खेद ? १२ व्रत नही लिये, इस वात का खेद। यदि खेद है तो एक चीज की ओर ध्यान दे। भगवान् महावीर के भक्त समझे, विचार करें कि महावीर-निर्वाण-शताब्दी आ रही है, उसके लिये लोग विचार कर रहे है और योजनाये वना रहे है। समाज के वडे-वडे लोग सरकार से पत्र-व्यवहार कर रहे है, क्योकि व्यवस्था सरकार के अधीन है।

लेकिन अपने जीवन मे भगवान् महावीर के उपदेश को परिणत करने की बात स्वाधीन है या पराधीन ? कभी दो-चार लोगो को मास खाना बन्द कराना है तो स्वाधीन है या पराधीन ? पराधीन। लेकिन अपना परिग्रह घटाना स्वाधीन है या पराधीन ? स्वाधीन। ५० वर्ष की आयु वाला आदमी सोचे कि वह भगवान् महावीर के चरणो मे सेवा की प्रतिज्ञा लेकर रहेगा, कहिये यह स्वाधीन है या पराधीन ? जिन लोगो का परिग्रह पूर्ण नही हुआ है, वे यह सोचे,– "मै ५ लाख, १० लाख, या २० लाख रुपये की सम्पत्ति अथवा परिवार के एक-एक सदस्य के पीछे दो-दो लाख का परिमाण कर लूँ"– तो ऐसा करने मे वे स्वाधीन है या पराधीन ? विश्व को महावीर ने क्या सिखाया – अहिंसा, विरक्ति और अपरिग्रह। आज हमारा राष्ट्र भी अपरिग्रह की बात करता है। यदि इसकी जरूरत नही होती तो जो बचाने की योजना आई है, वह नही आती। कहते है कि देश को पैसे की आवश्यकता है, इसलिये बचत योजना चलाओ, पैसा देश के हित मे लगेगा। उनकी यह बचत योजना अस्थायी है। लेकिन भगवान् महावीर की योजना त्रिकाल के लिये जन-कल्याण को लेकर है। आपने परिमाण नही किया और सरकार आपके माल पर हाथ फेर कर ले गयी तो आप क्या करोगे ? आपके पास १० मकान है, उनमे से ८ सरकार ने जब्त कर लिये तो सन्तोष करोगे या नही ? सरकार छीन लेगी, उस पर सन्तोष करेगे तो पहले ही सन्तोष कर लो और यह कह दो कि मेरे पास ज्यादा है इसलिये समाज को अर्पण करता हूँ। इस रूप मे तैयारी कर लो तो ऐसा करने मे स्वाधीन हो या पराधीन ? पूँजी को परोपकार के रास्ते पर नही लगाओगे तो सरकार टेक्स के नाम पर ले लेगी। आपका कोई अन्तरग साथी टेक्स विभाग वालो से मिल गया, उसने सकेत दे दिया तो २५-५० हजार के बजाय १ लाख रुपया भी टेक्स के रूप मे देना पड सकता है। लाख दो लाख रुपये का टैक्स देने वाले भाई भी देश मे है अथवा नही ? सरकार को लाख दो लाख का टैक्स दे देगे तो क्या सरकार आपका उपकार मानेगी और आपको दानवीर की उपाधि दे देगी ? नही। सोचिये, कही अधिकारियो को इधर-उधर करके राजी करने मे लग गये तो वे समझेगे दबा हुआ है। आपको टैक्स मे दो लाख रुपये देने पडेगे, तो आप खुशी-खुशी समाज

को क्यो नही दे देते ? समाज को ज्ञान, दर्शन, चारित्र के क्षेत्र मे जहाँ जगह की कमी है, साधनो की कमी है, धन की कमी है, उस क्षेत्र के लिये आपको त्याग करना चाहिये। जिनके पास मकान जरूरत से अधिक है, वे उसकी ममता छोडे। बेचने मे खतरा है इसलिये ममता छोड कर दान दे दे। दान देने पर कण्ट्रोल नही है। आपके पास थाला है, प्लाट है, अगर आप उसको बेचना चाहे तो बेच सकते नही, बनाना चाहे तो बना सकते नही, क्योकि बनाने के लिये भी इजाजत चाहिये। इसलिये यदि कोई दान देना चाहे तो उसका क्या लगे ? कितनी सुन्दर योजना है ? नाम का नाम रहे और काम का काम हो जाय। सरकार के डडे से भी बच जावे और उलटा सरकार कहेगी कि सार्वजनिक क्षेत्र मे ये कितना काम रहे है। २० लाख रुपये लगाकर अस्पताल बना दिया, नाम भी बनाए रखा और सरकारी क्षेत्र मे सम्मान भी प्राप्त किया। क्योकि जो काम सरकार नही कर सकी, वह सेठजी ने कर दिया। 'जनसेवी है' यह कह कर उनकी बुद्धिमत्ता को सभी सराहेगे।

निर्वाण-शताब्दी और आपका योगदान

भगवान् महावीर ने अहिंसा, अपरिग्रह आदि उच्चतम सिद्धान्तो की जो राह दिखाई है, उसे मानकर जो चलता है, और चलेगा, उसको कही किसी से कोई खतरा नही है। इतना अच्छा समय और इतनी अच्छी स्थिति आपके सामने होते हुए भी आज यदि भगवान् महावीर के २५००वे निर्वाण वर्ष मे भी आप कुछ नही करोगे तो फिर कब करोगे ? मारवाडी मे एक कहावत है – 'गणगौरियाँ घोडा नही दौडे तो कद दौडे।' गणगौर के दिन भी तबेले के घोडे नही दौडते हैं तो फिर वे निकम्मे हैं। इसी तरह महावीर निर्वाण शताब्दी पर श्रावक-समाज के तन मे, मन मे, और हृदय मे उमग की लहर नही आई तो फिर कब आयेगी ? भगवान् के चरणो मे नमन करके १२ व्रत धारण करे और यदि ऐसी स्थिति मे नही हैं तो ८ व्रत, ९ व्रत या और कुछ करे। कही ऐसा न हो कि भगवान् के चरणो मे आपके श्रद्धा के सुमन और पखुडियाँ चढे ही नही। क्या यह लहर आपके मन मे आयेगी ? ये तीनो चीजे यदि आ गयी, श्रद्धा, प्रतीति और ज्ञान की रुचि हो गई, फिर भी यदि व्यवहार मे नही लाये, तो क्या आत्मा का

उत्थान और कल्याण सभव होगा ? क्या अनन्तकाल से भटकती हुई आपकी आत्मा की भूख मिटेगी ? नही, कदापि नही ।

साधनापथ मे चार बातो के अनुकूल होने की आवश्यकता होती है – द्रव्य, क्षेत्र, भाव एव काल की । यदि द्रव्य अनुकूल नही है और तीनो की स्थिति ठीक है, तो साधना सभव नही । सत्सग मिला है, साधना करने का मौका है, मन भी चाहता है, लेकिन द्रव्य नही है तो ऐसी कहावत होगी 'मन चाले पर टट्टू नही चाले' । टट्टू नही चलने का अर्थ है – मन चाहता है पर शरीर आदि सामग्री अनुकूल नही है । द्रव्य अनुकूल हो, साधना का साधन मिला हो, तथा तन से सेवा करना चाहे, वाणी से करना चाहे, तब वह सेवा-स्वाध्याय कर सकता है ।

दूसरा नम्बर आता है क्षेत्र का । बाहरी क्षेत्र शान्त हो, धार्मिक वातावरण हो, सद्गुरु के चरणो मे रहने वाला हो और साथ मे भावना हो तो साधना का काम सुगमता से हो सकता है । सैकडो गॉव, हजारो कह दूँ, तो अतिशयोक्ति नही, सत्सगति के अभाव मे तरस रहे है । कुछ गाव तो ऐसे है कि वहाँ समाज मे सम्प्रति प्रचलित व्यवस्था के अधीन ८ दिनो तक स्वाध्यायी-श्रावको का योग मिलता है, तो वे समझते है कि हमारे यहाँ सतो का चातुर्मास हो गया । श्रावको का सहयोग यानि सयोग पाकर उन गाँवो मे अठाई, पचरगी तक हो जाती है, पौपध हो जाते है, हजारो सामायिक हो जाती है । उन लोगो को थोडे समय मे अधिक से अधिक लाभ उठाने का उत्साह होता है । लेकिन जिनको चार-चार महीनो तक साधु-सतो का योग मिलता है, उन बन्धुओ को तो समय का पूरा-पूरा उपयोग करना चाहिये ।

समय को बाँधें १२ व्रती बनें

भगवान् महावीर ने अपरिग्रह, अहिसा आदि का उपदेश दिया है । हमे देखना है कि आपमे से कितने १२ व्रती बन कर भगवान् महावीर के चरणो मे पुष्पाजलि अर्पित करते है । विषय-कषाय मे जिन्होने जीवन बिताया है, उनको अब तैयार होना चाहिये कि अमुक व्रत वे करेगे ? आज तक अभ्यास नही किया है, तो वे अब अभ्यास करे, तैयारी करे, चातुर्मास की समाप्ति पर गिनती करेगे । आपने १२

व्रत धारण किये हैं तो दूसरो की नजर आप पर जाएगी। आपने जीवन सफल किया है, पाप हल्का किया है – आप यदि ऐसा सोचेंगे तो १२ व्रत की साधना मुश्किल नही है।

सयम के विना जीवन मे सुख नही है। सुवाहु को भौतिक सुख प्राप्ति मे रुचि नही थी। उसने भगवान् के चरणो मे बैठकर १२ व्रत धारण कर लिये। उसको किसने कहा था ? आपको आश्चर्य होगा कि सुवाहु विना कहे कर गया, लेकिन आप कहने पर भी नही करते। 'बिना कहे करे वह देवता, कहा करे वह मनुष्य।' जिसके लिये लकडी उठानी पडे और फिर करे, वह मनुष्य नही कहलाता। सरकार लकडी उठा रही है। सरकार डडा उठावे, उससे पहले ही आप परिग्रह का परिमाण कर लो। आप अपने समय को भी बाँधे। जैसे इतने समय तक परिवार की सेवा करूँगा, इतने समय तक चारित्र सभालूँगा और इतने समय तक धन्धा करूँगा। अपने समय को यदि आप पाँच भागो मे वाँटकर चलोगे तो आपको किसी तरह की शिकायत करने का अवसर नही मिलेगा। जीवन मे पहला नम्बर देव भक्ति का, दूसरा नम्बर सत सेवा का, तीसरा नम्बर परिवार के सदस्यो को सभालने का, चौथा नम्बर अपने स्वास्थ्य को सभालने का और पाँचवाँ नम्बर काम-धन्धे का। इस तरह से जीवन को चलाओगे तो गाडी अटकेगी नही, भटकेगी नही और समाज मे नीचा देखने की जरूरत नही पडेगी। प्रवृत्ति वस्तुत गार्हस्थ्य जीवन का एक प्रकार से अनिवार्य अग है परन्तु प्रवृत्ति और निवृत्ति ये दोनो पहिये साथ-साथ चलते रहने चाहिये। अशुभ से निवृत्ति और शुभ मे प्रवृत्ति। सामूहिक योजना वनाकर आप सकल्प करे कि एक-एक दिन हम अपने अशुभ काम को रोक कर धर्म की सेवा मे लगेंगे। तो इससे समाज मे बडा भारी काम होगा। जिस तरह सुवाहु ने अपना जीवन ऊँचा उठाया, उसी तरह आप भी ज्ञान, दर्शन, चारित्र को वढाओगे तो आपका जीवन शान्तिमय वनेगा।

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति

महान् सन्त
आचार्य श्री शोभाचन्दजी महाराज

प्रार्थना

वन्धुओ !

आचार्य सोमप्रभ ने एक श्लोक मे वताया है कि मानव को जीवन मे किस वस्तु की आराधना करनी चाहिये, किसकी साधना करनी चाहिये, और मानव जीवन के लिये उद्धार का कौनसा प्रमुख अवलम्बन है। उन्होने कहा है कि जो मानव अपना हित चाहता है, उसे ऐसे सद्गुरु की सेवा करनी चाहिए, जो स्वय तिरे और दूसरो को तारने मे सक्षम हो, समर्थ हो। इस श्लोक के अन्तिम चरण मे आचार्य ने यह बतलाया है कि सामान्य मानव को अपना जीवन-निर्माण करना है, तो उसके लिये गुरु से वढकर कोई दूसरा अवलम्वन नही है। हम अभिवादन करते समय पहले देव को वन्दन करते है। हमारे वन्दन मे पहला स्थान देव को दिया है, 'नमो अरिहताण' 'नमो सिद्धाण'। पच परमेष्ठी मत्र मे ५ मे से ३ पद गुरु के और २ पद देव के है। देव की पूज्य स्थिति का स्मरण रखते हुए, पहला अभिवादन देव को करते हुए भी कहा गया है कि मानव को गुरु का अवलम्बन प्राप्त करना आवश्यक है, क्योकि देव का अवलम्बन परोक्ष रहता है और गुरु का अवलम्वन प्रत्यक्ष। कदाचित् ही कोई भाग्यशाली ऐसे नररत्न ससार मे होगे, जिन्हे देव के रूप मे, और गुरु के रूप मे अर्थात् दोनो ही रूप मे एक ही आराध्य मिला हो। देव रूप भी और गुरु रूप भी एक ही मे मिले, यह चतुर्थ आरक मे ही सभव है। ऐसे चतुर्थ आरे मे होने वाले महापुरुषो की तरह और कौन व्यक्ति हो सकता है, जिसमे देव के गुण भी मिले और गुरु के गुण भी। तीर्थंकर भगवान् महावीर मे दोनो रूप विद्यमान थे, वे देव भी थे और गुरु भी थे। लेकिन हमारे

देव अलग है और गुरु अलग। हमारे लिये देव प्रत्यक्ष नही है, परन्तु गुरु प्रत्यक्ष है। इसलिये यदि कोई मानव अपना हित चाहता है, तो उस मानव को सद्गुरु की आराधना करनी चाहिए। गुरु की स्थिति मे एक विशेषण लगाया गया है। गुरु के अनेक स्तर हैं, अनेक दर्जे है, जिनको गुरु कहा जाता है, लेकिन वे सभी तारने मे, मुक्त करने मे सक्षम नही होते। आचार्य केशी ने बतलाया है कि आचार्य तीन प्रकार के होते है — कलाचार्य, शिल्पाचार्य और धर्माचार्य। यदि कोई व्यक्ति कृतज्ञ स्वभाव का है और उपकार को मानने वाला है, तो उसको जिसने दो अक्षर सिखाए है, उसके प्रति भी आदर-भाव रखेगा। जिसने थोडासा खाने कमाने लायक व्यवसाय प्रारम्भ मे सिखाया है, उसको भी ईमानदार कृतज्ञ व्यक्ति बडे सम्मान से देखता है। आपने अपने शिष्य को कुछ खाने-कमाने लायक ज्ञान दिया और यदि वह ईमानदार है निष्ठावान् है, तो वह आपके उपकार को जीवन भर नही भुलाएगा। हा, हो सकता है कि कभी शिष्य गुरु से भी आगे बढ जाय, ऐसे भी अनेक उदाहरण है। मानले कि गुरु कला सिखाने वाला जौहरी लखपति रह गया और उसका शिष्य क्या बन गया? करोडपति। अब उसका क्या कर्त्तव्य है। करोड-पति तो बन गया, मरोड रखने लायक बन गया, तो क्या गुरु की ओर नजर उठाकर नही देखेगा? मानवता का तकाजा है कि जिसने उसको जीवन-निर्वाह करने लायक ज्ञान दिया, दो अक्षर जिसने सिखाए है, उसे वह सम्मान से, श्रद्धा से देखे। यह तो हो गया कलाचार्यजी का रूप। इसी प्रकार जो शिल्पाचार्य है और उन्होने अपने शिष्यो को शिल्प की शिक्षा दी है, उनके प्रति भी शिष्यो को आदर भाव रखना चाहिए। दशवैकालिक सूत्र के ९ वे अध्याय मे कहा गया है —

> **जेण बध वहं घोर, परियाव च दारूण।**
> **सिक्खमाणा नियच्छति, जुत्ता ते ललिइदिया।**
> **तेवि त गुरु पूयन्ति, तस्स सिप्पस्स कारणा।**
> **सक्कारति नमसति, तुट्ठा निद्देस-वत्तिणो।**

गुरु-शिष्य सम्बन्ध

इन दो गाथाओ मे बहुत कुछ कहा गया है। शिक्षा पाने

वाले को कभी ताडना भी पडती है, कभी तर्जना होती है और कभी कभी उन पर डडे का प्रहार भी होता है। वर्तमान युग के शिष्य मे इतनी क्षमता नही पायी जाती, लेकिन एक समय था, जब हमारा बचपन था, उस समय पढने वालो को इन स्थितियो का सामना करना पडता था। इतना होते हुए भी पढाने वाले गुरु के प्रति आदर का भाव बना रहता था। आज उन चीजो से छुट्टी मिल गयी। आज उनके मन मे गुरुओ के प्रति उतना आदर नही रहा। लेकिन महाजन समाज गुण की कद्र करने वाला है। आप अपने गुरुओ की कद्र करते हे, घर के बच्चो को यदि कहे कि आपने-हमने गुरु की घुडकिये सही हैं। तो क्या वे भी इसके लिये तैयार है? आज युग बदला हुआ हे। गुरु की तबियत ठीक नही है और कह दिया, आज तबियत ठीक नही है, कल आना, तो? आज तो कोई धर्म-गुरु के पास भी सीखने के भाव से जाये, उस दिन गुरूजी को समय न हो और कह दे कि कल आना तो वह कह देगा "म्हारो मन तो सीखरण रो हो, पर महाराज ने टाइम नही है तो अपने भी काम धन्धे है, जाने दो।" पहले अमीर घर के लडके भी गुरुओ के पास काम सीखते होगे। फिर भी ताडना करने वाले गुरु को आज की तरह का दिन देखने को नही मिलता होगा। आज तो मर्जी के खिलाफ काम होते ही काले झण्डे लेकर छात्र खडे हो जाते है, कुर्सिया तोड देते है। यह दुर्दिन पहले देखने को नही मिला होगा। आज कलाचार्य और शिल्पाचार्य छात्रो की मर्जी के विपरीत कार्य करे तो कुर्सी तोडने का मौका आ जाता है। इससे वे गुरु घायल न हो तो सौभाग्य समझिये। आज सब भूल गये है कि गुरु-शिष्य का क्या सम्बन्ध होता है। पहले कभी मन के अनुकूल नही होता तो शिष्य गुरु से किनारा कर लेते थे, अलग हो जाते थे। पहले शिष्टाचार था, मान मर्यादा थी। लोग जानते थे कि यदि शिष्टाचार नही रहेगा तो वे मानवता से गिर जायेगे, अनर्थ हो जायेगा। शिक्षा देने वाले के प्रति आदर भाव रखते, उसका सत्कार और सम्मान करते थे। वे यह सोचते थे कि प्रसन्न होकर गुरु कुछ सिखावे। कलाचार्य और शिल्पाचार्य का इतना आदर और मान था, तो धर्माचार्य का तो कहना ही क्या। हम जो बात कर रहे हैं, वह धर्म-गुरु की कर रहे है। आज मनुष्य मोह, माया, ममता और

परिग्रह आदि मे जकडा रहता है, उसको बचाने वाला कौन है ? माँ, बाप, भाई, बन्धु, साथी, क्या उसे बचा सकते हैं ? एक जमाने मे तो सगे-सम्बन्धी भी अपने परिवार के सदस्यो को कुमार्ग से बचाना अपना कर्त्तव्य मानते थे। लेकिन आज माता-पिता आदि के प्रति जो सम्मान का सम्बन्ध परस्पर था, उसे भी भुलाया जा रहा है। यही कारण है कि पुरानी परम्परा आज लडखडाती जा रही है। पुराने आदर्शों को लोग भूल रहे है और धार्मिकता से दूर हटते जा रहे है। ऐसी स्थिति मे आत्मा की सम्भाल करने वाला कौन है ? वह है – धर्मगुरु।

सद्‌गुरु की महिमा

सद्‌गुरु वही है, जो स्वय निर्दोष मार्ग पर चले और दूसरो को चलावे। शास्त्रकार ने कहा है –

अवद्यमुक्तः पथि य प्रवर्तते, प्रवर्तयत्यन्यजन च निस्पृह.।
स सेवितव्यः स्वहितैषिणा गुरुः, स्वय तरस्तारयितुं क्षम.परम्।

सद्‌गुरु होने की प्रथम शर्त यह है कि वह स्वय निर्दोष मार्ग पर चले और अन्य प्राणियो को भी उस निर्दोप मार्ग पर चलावे। सद्‌गुरु की इसीलिये महिमा है। आज मानव को पथ-भ्रष्ट करने वाले कई साधन उपलब्ध है। यदि आप एक दिन के लिये भी किसी वस्तु का त्याग कर दे तो आपके पारिवारिक जीवन मे साथ रहने वाले लोग आपको डिगाने का प्रयत्न करेगे। यदि दो चार युवक सप्ताह या दस दिन के लिये ब्रह्मचर्य का पालन करने का विचार करे तो उनको विचलित करने के अधिक निमित्त मिलेगे। ससार के रिश्ते-नातेदार और मित्र-जन आगे बढने के निमित्त नही होगे। वरन् चढे हुए लोगो को नीचे गिराने के निमित्त होगे। इसमे उनका विशेष दोष नही है। वे स्वय राग से घिरे हुए है तो वे अपने साथी को अलग से ऊँचा कैसे चढने देगे ? यदि वह अलग से ऊँचा चढ जाता है, तो उनकी निकटता मिट जाती है। अपनापन भी मिट नही जाये, यही उनका दृष्टिकोण रहता है। वे यह भी सोचेगे कि यदि कोई धर्म – साधना मे लग गया, तो उसके दूसरो से सम्बन्ध ढीले होते जायेंगे और वह उनसे दूर होता जायेगा। इसके विपरीत यदि आप अधर्म का काम करते हैं और उससे उनके स्वार्थ का पोषण

होता है, तो वे आपका साथ देते रहेगे। क्या किसी के घर मे ऐसी धर्मपत्नी है, जो अपने पति से पूछे कि आपने दस हजार रुपये इस महीने मे मिलाये हैं, वे कैसे मिलाये या कहाँ से आये ? आप कृपा करके वता दे। दस हजार रुपयो का आपको मुनाफा हुआ है तो कही आपने अन्याय से, पाप के गलत मार्ग से तो नही लिया ? ऐसा पूछने वाली देवी है क्या ? एक ही महीने मे दस हजार रुपये का मुनाफा भाई साहब ने व्यापार मे किया है, यह वात देवी जी ने सुनी और कोई महगा आभूषण उन्हे दे दिया तो वे प्रसन्न हो गयी और उस कमाई मे उनका भी सहयोग हो गया। अधिकाश लोग तो यही समझते है कि कमाना, खाना और परिवार के लोगो की आवश्यकता को पूरी करना ही हमारा कर्त्तव्य है। इन परिस्थितियो मे मनुष्य के जीवन को उत्थान की ओर ले जाने के लिये यदि कोई अवलम्बन है, तो वह धर्म-गुरु है, जो स्वय मुक्ति-मार्ग का पथिक है और जो दूसरो को भी उस पथ पर ले जा रहा है। जव खुद तिरेगा तभी तो वह दूसरो के लिये अवलम्वन होगा।

आदर्श मार्गदर्शक

मैं जिस महापुरुष की यशोगाथा आज आपके ध्यान मे ला रहा हूँ वह पुण्य-पुरुष, सद्गुरु कहलाने के लिये पूर्ण सक्षम थे।

आचार्य श्री शोभाचन्द जी महाराज, जिनका नाम ही वताता है कि वे शोभा के चन्द्र थे। मात्र नाम ही नही अपितु उनका जीवन भी शोभामय था। इस भारत भूमि मे शरीर धारण करके उन्होने केवल लौकिक यात्रा मे ही जीवन समाप्त नही किया अपितु स्वभावत ही उन्होने धर्म से उन्मुख प्राणियो को आत्म-धर्म समझा कर अपने जीवन को अजर-अमर वना लिया। यही कारण है कि आज आप और हम उनको याद कर रहे है। यद्यपि हमारा उनके साथ गुरु–शिष्य का सम्वन्ध रहा है और यह पवित्र सम्वन्ध भी स्मृति का एक कारण हो सकता है, लेकिन वह उतना मुख्य नही है, जितनी मुख्य उनके चारित्र एव गुणो की महत्ता है।

गुरु-शिष्य का सम्वन्ध एक स्नेह का सम्वन्ध होता है, प्रेम का सम्वन्ध होता है और वह भी शिष्य के मुख को मुखरित कर देता है। उस सम्वन्ध के कारण ही शिष्य वाचाल हो जाता है, अपने

गुरु के सम्वन्ध मे दो शव्द कहने के लिये। मै इसलिये आचार्य शोभाचन्द जी महाराज की आपको याद नही दिला रहा हूँ कि वे मेरे गुरु थे। लेकिन मै इसलिये याद दिला रहा हूँ कि सचमुच मे वे सद्गुरु के आदर्श स्वरूप थे। हमारी सन्त-मण्डली मे काफी वढे-चढे सन्त आज भी हो सकते है, लेकिन इस सन्त-मण्डली मे हजारो मे भी नही मिलने योग्य एक मार्ग-दर्शक, एक कीर्ति-स्तभ की तरह उन्होने अपने जीवन को आदर्श वनाया।

उनका जीवन, दीक्षा आदि का परिचय तो अभी आपने पण्डित मुनि श्री चौथमल जी द्वारा सुन लिया है। उन वातो को मै पुन आपके सामने दोहराना आवश्यक नही समझता लेकिन उनके जीवन की गुण-गरिमा, जीवन की सुषमा, आपके सामने कह कर अपनी जिह्वा को पवित्र करूँ, आपके मन को उस ओर आकर्षित करूँ तथा आपको कुछ और प्रेरणा दूँ, यही मेरा विशिष्ट उद्देश्य है।

आचार्य श्री का जन्म आज से करीव एक शताव्दी पूर्व सम्वत् १६१४ मे हुआ था। सौ से भी अधिक वर्ष वीत गये। जन्म तिथि को देखे तो सवत् १६१४ मे वे जन्मे थे और उन्होने सम्वत् १६२७ मे दीक्षा ली थी। दीक्षा लिये भी उन्हे एक शताव्दी वीत गयी। साधक के जीवन मे सयम का वहुत अधिक महत्व है। परिवार की समृद्धि से इसका सम्वन्ध नही है लेकिन साधना से इसका गहरा सम्वन्ध है। आचार्य श्री ने पूज्य कजोडीमल जी महाराज सा के सान्निध्य मे दीक्षा स्वीकार की थी। ६ वर्ष वाद ही कजोडीमल जी महाराज सा का स्वर्गवास हो गया। इनके सस्कार ऊँचे थे तथा साधना और अपने सकल्प के कारण उन्होने अपने ज्येष्ठ गुरु-भाई विनयचन्द जी महाराज को गुरु रूप मे स्वीकार किया और उनकी खूव सेवा शुश्रूपा की। यो दोनो का सम्वन्ध गुरु-भाई का था।

सेवा की प्रतिमूर्ति

भारतीय सस्कृति मे एक नागरिक अपने परिवार मे केवल पिता को ही पिता नही मानता, वल्कि वडे भाई को भी पिता के समान आदर देता है। ससार मे कई लोग वडे भाई को पिता समझ कर चलने वाले भी होगे। ऐसे लोग यदि हमारे धर्म-मण्डल मे आ जाय तो वे अपने दीक्षा-गुरु के अतिरिक्त अपने अन्य वरिष्ठ साधुओ का भी

समादर करेंगे। लेकिन जो घर मे लडाई करता है, माँ, वाप और वन्धुओ से गुत्थमगुत्थी करता रहा है, ऐसा प्राणी हमारे साधु-मण्डल मे आ जाय तो आपके गृहस्थ एव पारिवारिक जीवन की तरह यहाँ त्यागी-वर्ग मे भी विकृति आ जायेगी। अत गृहस्थ जीवन मे माता-पिता को अपनी सन्तान को विनयशील वनाने पर विशेष ध्यान देना चाहिये। शोभाचन्द जी महाराज ने अपने वाल्यकाल के सुसस्कारो के कारण अपने गुरु-भाई विनयचन्द जी महाराज को गुरु तुल्य माना और तन-मन से उनकी निरन्तर सेवा की।

शिष्य का गुरु के लिये समर्पित हो जाना वहुत वडी वात है, छोटी नही। हजारो लाखो प्राणियो मे से कोई बिरले ही ऐसे निकलते हैं। कहने को तो ऐसे कई व्यक्ति मिलते है, जो यह कह देते हैं कि "मैं आपके ही भरोसे हूँ, महाराज! मैं तो न देवी मानूँ, न देवता, बापजी, आपने ही मानूँ हूँ।" उनसे जरा कह दीजिये कि अमुक साधना-मार्ग पर चलते हुए यह त्याग करना है। ऐसे प्रश्न कर उनकी परीक्षा की जाय तो ज्ञात हो जायेगा कि मौखिक समर्पण करने वाले भक्तजन वास्तव मे किस सीमा तक समर्पण करते है। महाराज शोभाचन्द जी ने सचमुच मे अपने मन, वचन और कर्म से बता दिया कि शिष्य कैसा होता है। उनके जीवन मे समर्पण की भावना कितनी उच्चकोटि की थी, यह उन्होने शब्दो से नही, वाणी से नही, लेकिन क्रियात्मक रूप मे वता दिया। गुरु-शिष्य का सम्वन्ध कैसा होता है –

अगर ससार मे तारक, गुरूवर हो तो ऐसा हो,
विनयचन्द पूज्य की सेवा, चकित है देखकर देवा।
गुरू भाई की सेवा का, करैया हो तो ऐसा हो,
अगर ससार मे तारक, गुरूवर हो तो ऐसा हो।
विनय और भक्ति से शक्ति, मिलाई ज्ञान की तुमने,
बने आचार्य जनता के, सुभागी हो तो ऐसा हो।
अगर ससार मे तारक, गुरूवर हो तो ऐसा हो।।

मन, वचन, एव कर्म मे एकरूपता

पूज्य श्री शोभाचन्द जी महाराज सचमुच मे अपने जीवन से,

व्यवहार से, मन से, और कर्म से महात्मा थे। महात्माओ के लक्षण बताते हुये किसी कवि ने कहा है -

'मनस्येक वचस्येक कर्मण्येक महात्मनाम्' जिनके मन मे कुछ और बात है तथा वाणी और व्यवहार मे कुछ और है, उनको क्या समझे? महात्मा या दुरात्मा? विश्व की एकता का नारा लगाने वाले व्यक्ति कभी मिलेंगे तो कहेगे - जातीयता मे कुछ नही पडा है, प्रान्तीयता मे कुछ नही है, अब राष्ट्रीयता भी कुछ नही है। अब तो अन्तर्राष्ट्रीयता की कल्पना करके उसका खाका खीचेगे। उनकी बात सुनकर जनता विस्मित रह जाती है। लेकिन उनके घर पर जाकर आप दृश्य देखिये - भाई, भतीजो और बच्चो से ऐसे लडते हैं कि देख कर दग रह जायेगे। यह दीवार तुमने इधर क्यो बना ली? खेत की रेखा टेढी-मेढी क्यो खीच ली? इसके लिये आपस मे जूते-पैजार तक हो जाता है, मारपीट हो जाती है और न्यायालयो के द्वार खटखटाये जाते हैं। आदर्शवाद का यह कितना क्रूर मजाक है? जरा सोचना चाहिये।

आदर्शवाद और यथार्थवाद दो मुख्यवाद हैं। आदर्शवाद सुनने मे, देखने मे अच्छा लगता है। जिस समय आदर्शवादी लोग बात करते है, उस समय कहते है - "हम तो सब की मानते है, सब की सुनते है, हमारे लिये सब मत-मतान्तर बराबर है। हमे न तो किसी से द्वेष है और न किसी से प्यार।" ऐसी बाते करते हैं, तब वे बाते कितनी सुन्दर लगती है? लेकिन उनका असली जीवन टटोले तो पता चलेगा कि अपने ही कुटुम्ब के लोगो तथा समाज व सधर्मियो के साथ उनका व्यवहार कैसा है? जो व्यक्ति अपने समीप के लोगो से ही समान व्यवहार नही कर सकता, वही व्यक्ति देश, देशान्तर और जातियो के भेद मिटाने की कामना करे, तो इसमे कोई प्रवचना तो नही है? ऐसे लोगो के मन मे क्या है और उनके कर्म किस प्रकार के है, यह विचारणीय है।

पुराने जमाने मे राजनीति चन्द आदमियो के बीच मे रहती थी, लेकिन आज कल की राजनीति घर-घर मे व्यक्ति-व्यक्ति मे घुल-मिल गई है। धर्म, समाज और जातियो मे भी आ गई है। जाति मे चुनाव होगे तो पदो पर चढाने-गिराने मे राजनीति का हाथ रहता

है। पुराने मत्री जी को छोडकर वाहर के आदमी को मत्री वनाने के लिये लोगो से हाथ मिलाया जाता हे। समाज और सस्थाओ मे भी आज राजनीति आ गई है। सस्थाओ के चुनाव मे भी खुलकर सामना होता है। आज कितने ही दल समाज मे और अन्य सस्थाओ मे वन गये है। पहले राजनीति १००–५० आदमियो के वीच हुआ करती थी – जिसमे राजा, मत्री, अफसर, सेनापति आदि सीमित दायरे के लोग ही सम्मिलित होते थे। पर आज वही व्यापक वन गयी है। आज घर-घर मे राजनीति घुस गई है। आज वेटा वाप की सेवा करेगा तो उसके भीतर मे यह लगा रहेगा कि वावूजी अन्दर की तिजोरी की चाबी जल्दी से जल्दी मुझे सौप दे, फिर तो देख लूँगा। पिता-पुत्र और गुरु-शिष्य आदि के वीच इस तरह की पैतरेवाजी चल रही है कि जल्दी से जल्दी किस तरह से चीज हथिया लूँ। एक भाई, एक उदाहरण कभी-कभी दिया करते है कि किसी किसान की एक भैस गुम हो गयी। दुधारु भैस थी। उसके गुम हो जाने से किसान परेशान हुआ। देवी-देवताओ की अलग-अलग मानता वोलता गया। देवीजी के गया तो वोल आया कि भैस मिलने पर इतने की सीरणी चढाऊँगा। गणेशजी के गया तो वहाँ भी वोल आया। भैरू जी के भी वोल आया। एक मित्र उससे वोला कि जिस भैस के लिये तू इतनी वोलवा वोल रहा है, वह भैस कितनी कीमत की है? उसने उत्तर दिया – "चार वीसी की"। तव उस मित्र ने कहा भैस तो चार बीसी की है और तू २०० – ३०० की वोलवा वोल आया है। तव उसने कहा – "पहले भैस का सीग तो हाथ आ जाने दो फिर तो देवी-देवताओ को एक खेरा भी नही चढाऊँगा।" ऐसी ही नीति आज घर-घर मे वन रही है। अपना काम होने दो फिर तो जैसा चाहेगे, वैसा ही करेंगे।

छोटे परिवार मे पिता, पुत्र, भाई, वहिन और अन्य लोगो के वीच मे जो स्नेह, प्रेम और शान्ति थी, वह आज देखने को वहुत कम स्थानो मे मिलती है। आज तो जिनके लडके और भाई-भतीजे होगे वे सोचने लगेगे कि हम अपनी कमाई अलग जमा क्यो न करे। वाप जव बेटे से पूछता है कि आज तुमने कितना कमाया, तो कहेगा – "कहाँ कमाया साहव ५ – २५ रुपये कमाये होगे।" तव वाप सोचता है लडका कमाता तो अच्छा है लेकिन हमको नही देता तो क्या वाप

के मन मे अन्तर नही आयेगा ? मन मे कुछ है, वचन मे कुछ है और कर्म मे कुछ और ही है, उसको दुरात्मा समझना चाहिये । उसमे कैसे लक्षण है ? बुरे आदमी के ।

हमारा प्रसग कुछ और था । मैं वता रहा था सद्गुरु का महत्त्व । मन, वाणी और कर्म से वे एक समान होते है । कहा भी है – 'मनस्येक वचस्येक कर्मण्येक महात्मनाम्' गुरुदेव का आदर्श रूप ऐसा ही था जैसा कि कवि ने कहा है –

क्रोध व लोभ के त्यागी, विषय रस के न जो रागी,
सुरत नित धर्म मे लागी, मुनीश्वर हो तो ऐसे हो ।
न धरते जगत से नाता, सदा शुभ ध्यान मन भाता,
वचन अघ मैल के हरता, सुज्ञानी हो तो ऐसे हो ।
मुनीश्वर हो तो ऐसे हो ।

भक्ति से शक्ति

इस आदर्श को लेकर चलने वाले थे आचार्य देव । साधारण मनुष्य मे भी अहभाव होता है लेकिन उनमे किंचितमात्र भी अहभाव नही था । विनयचन्दजी महाराज की उन्होने तन मन से सेवा की । कुछ प्राप्त करने की इच्छा से उन्होने सेवा नही की । उन्होने सेवा अपना कर्तव्य पालने के लिये की । भक्ति से शक्ति मिलती है । शक्ति मे भक्ति मिले अथवा न मिले, लेकिन भक्ति से शक्ति अवश्य मिलती है, ऐसे हजारो उदाहरण है ।

सम्राट् अकवर के समय मे एक वहिन ने ६ मासी तप किया था । जिस समय उनका वरघोडा निकाला गया, उस समय अकवर यह सुनकर चकित रह गया कि कोई ६ महीने का तप भी कर सकता है ? उसने सोचा कि यह कैसे सभव हो सकता है ? अत उसने हुक्म दिया, "वरघोडे को ठहराओ, इसकी जाँच करेंगे ।" उसने पूछा – "यह ६ महीने भूखे रहने का तप कैसे हो सकता है, जवकि हम दिन मे दो वार न खायें तो तवियत ढीली हो जाती है ?" उस तपस्विनी वहिन ने कहा – "मैं इस वारे मे कुछ नही कह सकती । सद्गुरु की कृपा से मेरे मे शक्ति आ गई, ऊर्जा आ गई, और इसी कारणवश यह दुष्कर तप पूरा हुआ ।"

भक्ति-लौकिक कामना के लिये नहीं

आचार्य शोभाचन्दजी म सा वस्तुत एक सच्चे महासन्त के जीवन की सुषमा एव गुण-गरिमा से ओत-प्रोत थे। वे बताया करते थे – "किसी लौकिक वस्तु की प्राप्ति के लिये भक्ति करने की आवश्यकता नही। मनुष्य को लक्ष्य रखना चाहिये कि वह भक्ति करे लेकिन लौकिक कामना को लेकर न करे। तप करे लेकिन लौकिक फल की प्राप्ति के लिये नही। इन्द्र, नरेन्द्र, सुरेन्द्र, महेन्द्र, पद की प्राप्ति की कामना से भक्ति न करे, क्योकि यह कामना तप का मोल घटाने वाली है।"

जब किसी रईस, राजाधिराज की अपनी कोठी नीलाम होती है, तो उसको कितना पैसा मिलता है, लागत तो मिल जायेगी ? लागत भी नही मिलती। कोठी लाखो रुपये की है लेकिन जरूरत पडने पर यह सोचकर बेचेगा कि पैसा कर लेना चाहिये, तो मूल कीमत भी उसे नही मिलेगी। भौतिक जगत् मे यह बात जैसी सत्य है, ठीक उसी प्रकार आप अपने तप, जप, भक्ति को यदि किसी दाव या कीमत पर रख देगे तो उसका मोल भी घट जायेगा। शोभाचन्द्रजी महाराज समझते थे "मै भक्ति आत्मशुद्ध्यर्थ करता हूँ। भक्ति का तात्कालिक प्रभाव यह है कि उसमे सबसे पहले मानव मन का अह गलता है।" साधना मे सबसे खतरनाक वस्तु अहकार है। विद्या पढते-पढते यदि अहकार आ गया कि मैं पण्डित हूँ, औरो से अधिक विद्वान् हूँ या तपस्या करते-करते अहकार आ गया कि इतनी मण्डली मे मेरे मुकाबले मे तपस्या करने वाला कौन है ? मैं ही एक हूँ और सब कम तपस्वी है। इस प्रकार यदि विद्वान् को विद्या का, साधना करने वाले को साधना का और दानी को दान का अहकार हो गया तो यह सभव नही है कि उसकी उन्नति होगी या वह आगे बढ सकेगा। नि सन्देह यह सम्भव नही है।

कई बार अवसर आता है कि एक भाई जो दान देने मे समर्थ है, ५० हजार रुपयो तक का दान देने को तैयार है। उसका आग्रह होता है कि चाहे लाख रुपया तक दान ले लो लेकिन उस पर नाम उसका होना चाहिये। लेने वालो ने कहा कि ऐसा तो नही हो सकेगा। "यदि ऐसा नही होगा तो फिर मेरे ५ हजार रुपये टीप मे लिख लो।"

५० हजार रुपये देने वाले को जब पता चला कि नाम नही होगा तो फिर उसने ५ हजार देना ही स्वीकार किया ।

यदि परीक्षा करनी है तो यह घोषणा कर दे कि 'लाल भवन' मे हॉल बनवाने वाले का हॉल पर नाम लिखा जायेगा। फिर देखिये कि ५० हजार देने वाले कई भाई आगे आ जायेगे । तो इस प्रकार नाम के सामने दान की पवित्रता दब जाती है । अहकार को दबाने के भी साधन हैं । धर्म-गुरु कहते है कि विद्या का अहकार मत करो, तपस्या करके अहकार मत करो और दान देकर अहकार मत करो, अन्यथा परिणाम विपरीत होगे । एक ही चीज ऐसी है जो अहकार को गला देती है, वह है भक्ति अथवा विनय ।

विनय की विभूति

आचार्य शोभाचन्दजी ने विनय का मार्ग पकडा । अपने जीवन से उन्होने आपको, हमको, सबको सिखाया कि मानव को यदि आगे बढना है तो सबसे पहले बडो की इच्छा पर अपने जीवन को चलाना सीखे । जब बच्चे, बच्चियाँ, पत्नी या परिवार के अन्य सदस्य अपनी इच्छानुसार कार्य नही होने पर अपना मूड बदल लेते हैं, तब उनके बीच मे सघर्ष पैदा होता है । पर जिसने पहले से ही दृढ सकल्प लेकर जीवन चलाया है कि उसे अपनी इच्छा के अधीन नही चलना है, उसको कोई तकलीफ नही होती । कवि ने कहा है कि "जहाँ चाह है वहाँ राह है ।"

आचार्य शोभाचन्दजी म सा ने गुरु-चरणो मे अपने आपको समर्पित कर तन से, मन से और वाणी से अपना सारा जीवन उनकी इच्छानुसार लगा दिया । इस नगर को अन्य क्षेत्रो की अपेक्षा गुरु-चरणो मे रहने का अधिक अवसर मिला है। जोधपुर, नागौर, पीपाड, भोपालगढ, किशनगढ, अजमेर इत्यादि स्थानो को इतना अवसर नही मिला, जितना जयपुर को मिला है। आचार्य श्री ने जयपुर की भूमि मे अपना चरण रोप दिया । इसके लिये एक बडा कारण भी था । आचार्य विनयचन्दजी महाराज ने अपना अधिकाश समय यहाँ पर बिताया। सवत् '५९ से '७२ की मार्गशीर्ष कृष्णा द्वादशी तक, जबकि उनका स्वर्गवास हुआ, आचार्य श्री जयपुर मे विराजे । १४ वर्ष तक आचार्य श्री शोभाचन्दजी महाराज लगातार

गुरु महाराज की सेवा मे रहे। सन्त-समुदाय ने समस्त राजस्थान मे, मरु-भूमि मे विचरण किया था। जब आचार्य महाराज यहाँ स्थिरवासी होकर विराज गये, तो उन क्षेत्रो को सभालने का कार्य स्वामी श्री चन्दनमलजी महाराज व खीवराज जी महाराज आदि ने किया। इसलिये यहाँ थोडी सख्या मे सन्त रहते थे। गुरु महाराज ही आचार्य विनयचन्द्रजी की सेवा शुश्रूषा करते हुए छोटे से मोटा सभी काम करते थे। यदि खखारिया देने की जरूरत पडती तो वे देते थे। कपडा साफ करना पडता तो भी वे ही करते थे। गुरु महाराज का सारा काम करते थे। यह नही कि छोटा काम करने मे उन्हे कोई सकोच हो।

किसी को बडा काम मिल गया तो वह समझता है कि छोटा काम कैसे किया जाय। आसपास की जमीन पर कचरा पडा है, और उसे यदि ओघे से पूँजता है तो लोग समझेगे छोटा-मोटा महाराज है। यहाँ पर जाजम पर बैठने से पूर्व यदि आपसे कहा जाय कि झाडू लगाने वाला नही आया है, इस हाल को साफ करना है, तो आपमे से कितने भाई इसके लिये तैयार होगे ? जरा हाथ तो खडे करे ? कैसी बात हो गयी ? एक यह उदाहरण और एक वह उदाहरण। विनय और सेवा के उदाहरण बुजुर्गों के जीवन से मिलते हैं। आचार्य शोभाचन्दजी ने अपने गुरु की जो सेवा की, उसे देखकर लोग चकित होते थे। जयपुर उस समय राजस्थान की राजधानी नही होते हुए भी आकर्षक स्थान रहा है, इसलिये यहाँ दूसरे प्रान्त के लोग भी देखने आते थे, समाजेतर लोग भी आते थे।

आचार्य विनयचन्द्रजी म सा की नेत्रज्योति चली गई थी इसलिये आचार्य शोभाचन्दजी उनके पास बैठकर शास्त्र सुनाया करते थे। उनका सारा कार्य वे करते थे। दूसरे लोग देखकर चकित रह जाते थे कि यह कैसा शिष्य है। गुरु-भाई होने की बात किसी के ध्यान मे नही आती थी। त्याग और सेवा का अपूर्व उदाहरण आपको उनके जीवन से मिलेगा। हम सब आज सामान्य त्याग का पालन करते हुए आपको दृष्टिगत होगे। हिंसा छोड अहिंसा का पालन करना, अपरिग्रह का पालन करना आदि इतना कठिन नही है, जितना कि क्रोध, मोह, माया, ममता की ओर आकर्षित होने की

जो एक प्रकार की वृत्ति है, आकर्षण है, उससे बचे रहना। अन्तरग साधना से ही ऐसा सभव हो सकता है।

आचार्य श्री ने इन दोषो को अलग रखकर अपने जीवन को सार्थक बनाया था। इसके साथ ही उन्होने अन्य साधुओ के जीवन को निर्मल और अमर बनाने की ओर भी कदम बढाया था। उन्ही की कृपा का फल है कि हमारे जैसे मन्दमति मानव को इधर-उधर भटकने एव ठोकर खाने से बचने का अवसर मिला है, और हम जीवन को साधना की तरफ लगा पाये हैं।

सद्गुरु का काम मार्ग दिखाकर आगे बढाना है, चलाना है। हम भी अपने आचरण मे मन मे यह कामना तो करते है कि ऐसे सद्गुरु की चरण-सेवा का एक सामान्य सा अवसर इस जीवन को मिल जाय। आज आचार्य देव हमारे समक्ष भौतिक रूप मे विद्यमान नही है, लेकिन उनके गुणगरिमापूर्ण जीवन की गाथा आपके हमारे समक्ष है। हमको किसकी पूजा करनी है? गुणमय आत्मा की या देह की? हम भौतिक पिण्ड के पुजारी नही है। हम यह अनुभव करते है कि आज भी आचार्य श्री हमारे सन्मुख है, गुणमय जीवन मे आज भी वे हमारे सामने है। आप, हम, उनके जीवन से क्या लें और उनके प्रति क्या श्रद्धाजलि अर्पित करें? कलाचार्य और शिल्पाचार्य के भक्त भी अपने-अपने आचार्यों के प्रति श्रद्धाजलि अर्पित करते हैं। धर्माचार्य को प्रिय क्या है? धर्म। कलाचार्य और शिल्पाचार्य को प्रिय है धन। जो भक्त जितनी ज्यादा भेंट-पूजा अपने गुरु के चरणों में चढायेगा उसको कलाचार्य और शिल्पाचार्य समझेगा कि यही शिष्य मेरा अधिक सम्मान करता है। लेकिन धर्माचार्य की नजर मे उसी शिष्य का सम्मान है, जिसने अपने जीवन को ऊँचा उठाने के लिये साधना की है।

युवा पीढ़ी का उत्तरदायित्व

अब हमारे सामने ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप इन चारों की महिमा रखता है। चातुर्मास के चार महीनो मे से एक पक्ष निकल जाने के पश्चात् ७ पक्ष रह जाते हैं। इन दिनो के लिये आपने क्या विचार किया है? इसका पता लगाना होना चाहिए। [illegible] इन चार पक्षों में किसी चार की साधना करनी है, जिसका [illegible] के मार्ग

पर चलना है, यह हर भक्त को आचार्य श्री के चरणो मे श्रद्धाजलि देते समय अपने जीवन मे निश्चय करना चाहिए, सकल्प लेना चाहिए, प्रण लेना चाहिए कि मैं इन सात पखवाडो मे इतना लक्ष्य प्राप्त करूँगा। यदि अधिक समय नही है तो एक-एक तरुण भाई-बहिन खयाल करे कि वे आधा घटा स्वाध्याय के लिये अवश्य निकालेगे। आपका यहाँ आना होता है, हम से दो बाते करनी होती है लेकिन सीखना नही होता। कही आपका अमूल्य समय यो ही न चला जाय और चातुर्मास के बाद कहना पडे कि महाराज! हमको समय नही मिला, इच्छा तो थी समझने की लेकिन समझ नही सके। जहा तक समझने की बात है, युवको के मन ही मन शकाएँ होती है, एतराज होते है, लेकिन वे केवल समय की उलझन मे सकोच मिटाने की इच्छा से सन्तजनो के पास आकर जिज्ञासा का समाधान नही करेगे तो बाद मे कहेगे कि इच्छा तो थी महाराज! पर समय नही मिला। हमको समाज का काम करना था, अथवा बाहर से जो लोग आये थे, उनकी व्यवस्था करने मे समय चला गया, इसलिये धर्म की आराधना नही कर सके। यदि इस तरह से ज्ञान के क्षेत्र मे आपने सकल्प नही किया और खुले रह गये तो कुछ नही कर पायेगे। समय के अनुसार समाज-निर्माण का काम करने मे ज्यादा सक्षम तरुण, किशोर लोग है और इस कार्य का अधिक उत्तरदायित्व भी इन पर ही है। वृद्धो को कहू इसके बजाय आज अधिक दायित्व नौजवानो का है, क्योकि वृद्धो की सख्या नौजवानो की अपेक्षा चौथाई भी नही है। आजकल के युग की माँग है कि बहुमत से कार्य करे और बहुमत किसका है? नौजवानो का। दूसरी बात यह है कि जब तक समान विचारवालो का सगठन नही बनता, तब तक काम नही होता। और यह भी आवश्यक है कि काम करने के लिये चुनिंदा, सक्षम और कर्त्तव्यशील व्यक्ति होने चाहिए, जो यह सोचते हो कि हमे हमारे जीवन मे कुछ काम करके अच्छा उदाहरण छोड जाना है, जिसके मन मे यह हो कि कुछ काम करके ही जाना है। कल जाना है या परसो जाना है पर जाना तो जरूर है, अगर यह बात मनुष्य सामने रखे तो वह अवश्य कुछ कर सकता है। कवि ने कहा है—

'नर जन्म पाकर मानवो, कुछ काम करना सीख लो।
अपना नहीं तो पूर्वजो का, नाम रखना सीख लो।।'

यदि इतना मन मे रहे कि हमारे पूर्वज किस शान, मान के थे। उन्होने जो मान-मर्यादा निभायी, यदि हम उसे आगे नही वढा सकते तो कम से कम उसे उस रूप मे तो वनाए रखे। इतनी वात भी अगर मन मे रह जाएगी तो आदमी काम करने मे जुट जायेगा। हम लोग यह सोचे कि अपने धर्म-गरु शोभाचन्दजी से यदि आगे नही निकल सके तो उन्होने जिस ज्ञान, दर्शन, चारित्र और साधना के पथ को अपनाया तो उस मार्ग को तो अपनायेंगे ही। तो उस दशा मे भी हम कुपात्र नही कहलायेंगे।

आपका सुपुत्र कुसगत से पूर्वजो की गुणगाथा, नाम व चारित्र घटाने का काम करे तो कैसा लगेगा? धर्म के अग्रज हम लोग धर्म को आगे वढाने के वजाय उससे उन्मुख हो तो आप कहेगे कि वे पीछे हट रहे हैं। इसी तरह आप अपने जीवन की ओर देखे। आपने अभी सुना 'नर जन्म पाकर मानवो कुछ काम करना सीख लो।' यदि आपने अपने पिता और पितामह से भी सवाया नाम कमाया तो कहना की क्या है, लेकिन अगर सवाया नही निकल सके तो उनके पीछे-पीछे कदम से कदम मिलाकर चलते रहे तो भी कोई हानि नही है।

ज्ञान के क्षेत्र मे जयपुर वाले आगे रहे हैं। शास्त्र-अध्ययन मे रस लेने वाले श्रावको को देखकर माधव मुनि को कहना पडा कि **"जयपुर का श्रीसंघ रसिक है, श्री जिनवाणी का।"** आपको जयपुर की गौरव-गाथा को वनाये रखना है। आज विज्ञान के युग मे ससार मे विद्या वढी है। उसके साथ ही साथ धर्म का ज्ञान और क्षेत्र भी वढना चाहिये। पढने वाले लडके-लडकियो की सख्या वढ गई, लेकिन इसके साथ ही धर्म-ज्ञान नही वढेगा तो क्या होगा? इसलिये आपको ज्ञान-साधना की पूर्ण व्यवस्था करनी है। हर युवक इस वात का सकल्प करे—"स्वाध्याय अवश्य करूंगा। चाहे घर मे समय मिले, न मिले पर जव तक स्वाध्याय नही करूंगा तव तक अन्न, जल नही लूंगा।" यदि स्वाध्याय को समाज-धर्म वनाले तो काम सरलता से हो सकता है।

स्वाध्याय को समाज-धर्म वनावें?

धर्म दो प्रकार का है। एक व्यक्ति-धर्म और दूसरा समाज-धर्म।

खडेलवाल जैनो का समाज-धर्म यह है कि वे रात मे नही खाते। ओसवालो के समाज मे क्या बात है, मुझे पता नही, यद्यपि जन्म उसी समाज मे हुआ है। सिखो का समाज-धर्म है केश नही कटाना। प्रत्येक सिख बच्चा चाहे वह पढ लिखकर एम ए हो जाता है, मिनिस्टर बन जाता है, चाहे राज्यपाल बन जाता है तो भी वह जीवन भर सिख-समाज का समाज-धर्म कडा, कघी, कच्छा, केस, कृपाण आदि नही छोडता। मैं समझता हूँ आप भी कुछ समाज-धर्म बना कर चले। स्वाध्याय जब समाज-धर्म बन जाएगा तब उसका पालन करना अनिवार्य होगा।

प्रत्येक जैन कुल मे अमुक नियम अनिवार्य होने चाहिये। एक बार दिन मे व्याख्यान नही सुन सके तो भी धर्म-स्थान पर आकर मौन भाव से १० मिनट के लिये ही सही, धर्मग्रन्थ का स्वाध्याय करना चाहिये। ऐसा समाज-धर्म आपने बनाया है या नही ? समाज-धर्म नही बनाने के कारण आपके सामाजिक बन्धन नही है। आपका सामान्य दिन का धर्म और विशेष दिन का धर्म दूसरा है। चतुर्दशी का धर्म दूसरा है और तेरस का दूसरा है। श्रावण का धर्म दूसरा है और भाद्रपद का दूसरा। यदि आपको ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तपस्या को चमकाना है तो दृढ सकल्प कर सगठन के साथ आगे आवे। आपको मिलकर काम करने के लिये दृढ निश्चय के साथ आवश्य ही कुछ करना होगा, जैसे कि आप व्यापार मे करते हैं। एक दिन का काम है – १ देव-भक्ति, २ गुरु-सेवा, ३ परिवार एव समाज-सेवा, ४ आरोग्य सरक्षण, ५ व्यवसाय अर्थात् पैसा कमाना। मेरे मत मे ये पाच खाने जीवन के बना ले और दिनचर्या के उसी प्रकार पाँच भाग करे। कितना भी आवश्यक कार्य क्यो न हो, नियमित दिनचर्या अवश्य निभावे। व्यवसाय के समय यदि कोई मित्र आ जावे तो क्या आप व्यापार का समय उसके साथ जाया करेंगे ? यदि मित्र कहता है कि उसे आमेर देखना है, पहली बार जयपुर आया है तो क्या व्यापार के समय उसके साथ जायेंगे ? आप दो घण्टे भी उसके साथ नही वितायेंगे। जिस प्रकार व्यवसाय को आप आवश्यक समझते है, उसी प्रकार नियत समय पर स्वाध्याय और समाज-सेवा भी करे। डायरी मे व्यवसाय को पाँचवा स्थान मिला है पर आज उलटा हो गया। पहला स्थान व्यवसाय को, दूसरा स्वास्थ्य को, तीसरा

परिवार को, और उसके बाद गुरुसेवा और देवभक्ति को आप स्थान दे रहे है। आज तो ऐसा हो गया है कि खाना भी समय पर नही खायेगे। मा, बाप, बडो की परवाह नही करेगे। देव-गुरु की, सेवा के लिये किसी को कहा जाय तो वह कहेगा मेरा समय हो गया है, कारीगर बैठे होगे, बाजार जाना है, दलाली को जाना है। यहाँ यह उलटा इसलिये चल रहा है कि अपने व्यवसाय को आपने पहला स्थान दे दिया। जबकि पहला स्थान देवसेवा, दूसरा गुरुसेवा, तीसरा समाज-सेवा और चौथा आरोग्य सेवा को दिया गया था। आरोग्य नही रहा और पैसा मिल गया तो वह किस काम का ? धन मिल गया लेकिन पूरा इलाज न होने के कारण परिवार मे कोई मर गया तो पैसा किस काम आया ? गुरुजनो की सेवा नही कर सका, शास्त्रो का अध्ययन नही कर सका तो चौबीसो घण्टो कमाया गया पैसा क्या काम आया ? इसलिये मनुष्य को चाहिये कि पाचो बातो को ध्यान मे रखते हुए अपने जीवन का उद्धार करे।

यदि हम आचार्य शोभाचन्द जी के जीवन से शिक्षा ले तो हमारा कार्य व जीवन लोक-कल्याणकारी हो सकता है, हमारी आत्मा का कल्याण हो सकता है। उन्होने अपने त्याग-तप के साथ-साथ गुरु-भक्ति व सेवा से लोक और परलोक बनाया। उसी प्रकार यदि आप भी सद्गुरु की सेवा एव स्वाध्याय मे अपना समय लगाते हुए कार्य करेगे तो आपकी आत्मा का, आपके जीवन का कल्याण होगा, इसमे कोई सन्देह नही है।

ॐ शान्ति शान्तिः शान्ति

मोक्ष-मार्ग

प्रार्थना

वन्धुओ !

सासारिक प्राणी स्वनिर्मित पराधीनता के वशीभूत होने के कारण कष्ट सहन करते हैं। उस कष्ट सहन से प्राणियो के कर्मो का निर्जरण तो होता है पर वह अतीव स्वल्प मात्रा मे होता है और वस्तुत प्राणियो को कष्ट अत्यधिक झेलना पडता है। इसके विपरीत समभाव सहित इच्छापूर्वक ज्ञान, ध्यान, जप, तप, नियम, मनोनिग्रह आदि के माध्यम से थोडा सा भी यदि कष्ट सह लिया जाय तो वह अधिक निर्जरण का कारण वनता है। यदि स्वल्प समय मे स्वल्प प्रयास द्वारा शीघ्र ही प्राणी को कर्म-बन्धन से मुक्त होना है, तो उसका सीधा सादा मार्ग निर्जरा ही है - ज्ञान, ध्यान तप एव स्वाध्याय ही है।

शास्त्रो मे निर्जरा के कारणो का गम्भीरता से विशद विवेचन करने के साथ-साथ उसके मूल पर विचार किया गया है।

अनन्त अनन्त काल से स्वय द्वारा निर्मित कर्मबन्धनो मे बधा आत्मा चाहते हुए भी बन्धन से मुक्त नही हो पाता, इसका क्या कारण है ?

भगवान् महावीर ने उत्तराध्ययन सूत्र के २८वें अध्याय मे इन प्रश्नो से उत्पन्न जिज्ञासा का उल्लेख और उसका समाधान किया है।

अन्य दर्शनो की तरह जैन-दर्शन इस सम्बन्ध मे आत्मा को हतोत्साहित, अनाश्वस्त अथवा अविश्वस्त नही करता कि वह मुक्त नही हो सकता। यदि यह विश्वास होगा कि आत्मा मुक्त हो सकता है, तभी तो साधक साधना के मार्ग पर आगे बढेगा।

बन्धन व मोक्ष का कारण कर्म

आपने सम्यक्त्व के ६ बोल कभी सुने होगे। सम्यक्त्व के ६ स्थान है, उनमे से एक मे बतलाया गया है कि जीव मे जिस प्रकार कर्म के कर्तृत्व की योग्यता है, उसी तरह कर्मों से मुक्त होने की भी योग्यता है।

जैन दर्शन की यह मान्यता है कि प्राणी स्वय द्वारा उपार्जित शुभ कर्मों की प्रेरणा अथवा प्रभाव से जिस प्रकार स्वर्ग मे जाता है उसी प्रकार अशुभ कर्मो के प्रभाव अथवा उनकी प्रेरणा से नरक मे भी जाता है।

जैन दर्शन की यह मान्यता है कि आत्मा कर्म करने मे स्वाधीन है किन्तु कर्मो के फल को भोगने मे पराधीन अर्थात् कर्मो के अधीन है। जैन दर्शन की यह भी मान्यता है कि आत्मा कर्मो के फल को भोगने मे कर्मो के अधीन होते हुए भी जिस प्रकार कर्म करने मे स्वाधीन है, उसी प्रकार कर्मो को निरस्त करने अथवा नष्ट करने मे भी स्वाधीन है, स्वतन्त्र है। इसके विपरीत ईश्वर-कर्त्तावादी अन्य दर्शन की यह मान्यता है कि आत्मा किसी भी दशा मे स्वाधीन नही है। न वह कर्म करने मे स्वाधीन है और न कर्मफल के भोगने मे ही। उसके समस्त कार्यकलाप ईश्वरीय शक्ति से सचालित हैं। यदि आत्मा स्वाधीन नही है तो मार्ग पर चलने का प्रयास क्यो करेगी ?

इस निराशा को निरस्त करते हुए भगवान् महावीर ने कहा– "ओ मानव ! यह न समझ कि ईश्वर, दैवी शक्ति या नियति तुझे दु ख से मुक्त करेगी। नियति कोई प्राणियो की शास्ता भिन्न शक्ति नही, जो तुम्हारे दु ख-सुख का निर्माण करे। तुम्हारे दु ख-सुख का कारण तुम्हारे भीतर है।" आपका प्रश्न होगा "तो क्या करे ?" उत्तर स्पष्ट है– "पुरुषार्थ करे।" आप कहेगे 'पुरुषार्थ तो हम निरन्तर करते आ रहे है। ऐसा कौनसा क्षण बीतता है जबकि हम पुरुषार्थ नही करते ? हाँ, कभी पौषध या सामायिक मे बैठे है, तब काया मन्द गति से चलती है पर मन तीव्र गति से चलता है, यह अलग बात है।"

इसी प्रकार कीडे-मकोडे से लेकर इन्द्र, महेन्द्र तक कोई व्यक्ति ऐसा नही है जो पुरुषार्थ नही करता हो। लेकिन पुरुषार्थ से कर्म-

बन्ध भी होता है और मोक्ष भी होता है। आप कहेगे – "ऐसा कैसे हो सकता है ?" शास्त्रकारो ने पुरुषार्थ के हमारे यहाँ दो भेद किये है। एक भव-वर्धक अर्थात् वन्धन बढाने वाला पुरुषार्थ और दूसरा भव-छेदक अर्थात् बन्धन काटने वाला पुरुषार्थ।

अज्ञान-निष्कासन आवश्यक

अज्ञान दशा मे सुमार्ग की ओर रुचि नही होती, आरम्भ, परिग्रह, विषय, कपाय आदि की वासना मे मन, वाणी, एव कार्य की प्रवृत्ति सहज होती है। और इस प्रकार वासना-पूर्ति के लिये जो पुरुषार्थ होता है, वह सारा का सारा पुरुषार्थ कर्म-वन्ध का कारण है। कर्म-बन्ध के पुरुपार्थ मे आपको या किसी दूसरे को कुछ सिखाने की जरूरत नही पडती।

एक मछली का नन्हा सा वच्चा पानी मे कैसे डुवकी लगाता है, ऊपर आता है और कैसे अपने खाद्य छोटे-छोटे कीडो पर मुँह मारता है ? यह उसको किसी ने सिखाया नही है। विल्ली का वच्चा अपने शिकार चूहे को कैसे धर दबोचता है ? वह कैसे सीख जाता है ? उसे किसी के सिखाने की आवश्यकता नही होती। अत कहना होगा कि एक उदयचक्र है जो विश्व मे अनादि काल से जीव के साथ लगा हुआ है – पशु, पक्षी, देव, दानव व मानव सब के साथ वह है।

मानव का एक वच्चा क्रमश तरुण होने पर वैश्यागमन के मर्ग पर चलने लगता है, यह उसको कौन सिखाता है ? इसकी कोई तालीम दी जाती है क्या ? नही। व्यापारी के वच्चे को पैसे कमाने की रुचि और रुपये का सवा रुपया करना कौन सिखाता है ? किसने उसको यह शिक्षा दी ? लालसा को जगाने के लिये प्रेरणा नही देनी पडती। जब तक कोई वच्चा मन से इच्छा नही करे, तब तक चाहे दादा या पिता कोई भी कहे कि बेटा मन लगाकर धन्धा करो, तो भी वह मन नही लगावेगा। चाहे उसे धन्धे पर भेजे, काम सिखाने लगे लेकिन वह ध्यान देकर काम नहीं करेगा। पर जव उसी बच्चे की शादी हो जायेगी, स्त्री का खर्चा वढ जाएगा, स्वय का जेव-खर्च चलाने को भी पैसा पास मे नही होगा और आवश्यकता वढेगी, तो वह स्वय सोचेगा कि पैसा कैसे मिले। तब वह खुद अपने साथियो से वात करेगा, दुकानदारो के पास जाकर स्वय पूछेगा कि नौकरी के लिये

जगह खाली है कि नही। बाप प्रयत्न नही करेगा तो भी स्वय प्रार्थना-पत्र देकर प्रयत्न करेगा।

जिस प्रकार नौकरी के लिऐ कोई भी व्यक्ति प्रयत्न करता है, उस प्रकार ज्ञान दर्शन, चारित्र के लिए कौन प्रयत्न करता है ? ज्ञान दर्शन, चारित्र मे रुचि से कौन आगे आता है ? महाराज सिखाते है तो क्या किसी ने प्रार्थना भेजी है सिखाने के लिये ?

बाबूजी वी काम हो गये, जयपुर मे आगे भरती होने का प्रवेश-पत्र नही मिला तो जयपुर के अलावा जोधपुर, बीकानेर और उदयपुर आदि मे प्रयत्न करेगे। लेकिन साधना-मार्ग मे कोई प्रयत्न करेगा क्या ? साधना के मार्ग पर लगने का नाम आवे तो कोई तैयार नही होता। यह भी उदयचक्र का परिणाम है। इसलिए प्रभु ने कहा – "ओ मानव ! अनन्त-अनन्त काल से जीवन बन्धन की बेडी मे जकडा हुआ है, उसकी बन्धन से मुक्ति कैसे हो, इसका रास्ता कौनसा है, इस सम्बन्ध मे गम्भीरतापूर्वक विचार कर। जब इतना जान लेगा कि बन्धन का कारण और मोक्ष का कारण तू ही है, तेरा ही पुरुषार्थ बन्धन और मोक्ष का कारण है, तब तुझे यह सोचने का मौका मिलेगा कि कैसे तेरे ये बन्धन कटे और कैसे तुझे मोक्ष-मार्ग की ओर आगे बढने का अवसर मिले।"

इस तथ्य का वर्णन करते हुए प्रभु ने उत्तराध्ययन सूत्र के २८वे अध्याय मे बताया है। इसे आप सुनेंगे और इसमे बताए हुए मार्ग पर चलने का प्रयास करेंगे तो अपने बधन काटना, आपके लिये सभव हो सकेगा।

नाण च दसण चेव, चरित्त च तवो तहा।
एस मग्गोत्ति पण्णत्तो, जिणेहि वरदसिहि ।।

यह २८वे अध्ययन की दूसरी गाथा है। पूछा गया कि 'को मग्गो' मोक्ष मार्ग क्या है ? उसके उत्तर मे इस गाथा मे कहा गया है – 'एस मग्गो' यह मार्ग है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप इन चारो का जोड मोक्ष का कारण है, केवल एक एक नही।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र व तप का समन्वय

विचार उत्पन्न होता है कि शास्त्रकार मोक्ष का मार्ग एक बता रहे हैं और सख्या चार बता रहे हैं। मार्ग को एक वचन कह रहे हैं

'एस मग्गो' फिर एक मार्ग कैसा ? वस्तुत ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप ये चारो सयुक्त रूप से मिलकर एक मोक्ष-मार्ग है। यदि चारो को अलग अलग माना जाय तो 'एस मग्गो' यहाँ भी वहुवचन होना चाहिए था। लेकिन ऐसा अभीष्ट नही है। चारो का अलग अलग अपना स्थान हे। पर वे स्वतन्त्र रूप से केवल एक एक ही मुक्ति के कारण नही होते। ज्ञान से अज्ञान की, दर्शन से मिथ्यादर्शन की, चारित्र से मोह की और तप से वेदना की मुक्ति होती है। इस तरह एक एक की अलग अलग महिमा होते हुए भी कर्म-बन्ध से यदि आत्मा को मुक्त करना है तो चारो की जोड मिलाना जरूरी है। चारो का समन्वय करना आवश्यक है। क्या कारण है कि चारो का योग नही मिलेगा तो वन्धन नही कटेंगे ? वन्धन नही कटने का कारण यह है कि ज्ञान का काम समझाना है। उससे वस्तु तत्त्व का वोध तो हुआ पर श्रद्धा ? यह ज्ञान का काम नही है और नये आने वाले कर्मों को रोकना भी ज्ञान का काम नही है। जव नये आने वाले कर्म रुकेंगे नही तो मुक्ति कैसे होगी ? कर्म-वध से मुक्ति पाने के लिये नये कर्मों का रोकना आवश्यक है। यदि कोई ज्ञान का तिरस्कार करता है तो ज्ञानावरणीय कर्म का वन्ध होता है। इसी प्रकार यदि ज्ञानावरणीय कर्म-वन्ध के कारणो को ज्ञान से जान तो लिया लेकिन उन कारणो से बचा नहीं जाय तो कर्म-वध होता रहेगा। कई लोग ऐसे है जो अपने अज्ञान के कारण धर्म-स्थान पर भी कर्म-बन्ध कर लेते है। जैसे एक भाई या सन्त शास्त्र पढ रहे हैं या सुन रहे है, उनको एक दूसरे सज्जन ने आकर पुकार लिया। पुकारने के कारण उनको ज्ञान की साधना से हटना पडा। वह दस-बीस मिनट तक तल्लीनता से, एकाग्र भाव से शास्त्र पढ रहा था, या सुन रहा था, उसको विना कारण आपने वीच मे से उठा दिया। मान लीजिए आप से बात करने के लिए घर से कोई वच्चा आया। आपके पास बैठे सज्जन शास्त्र पढ रहे है। आपने देखा कि उठ कर बच्चे के पास जायेंगे तो ठीक नही रहेगा इसलिए वही वैठे वैठे उससे वात करने लगे। पास वाला जो पढ रहा था, आपकी बातचीत से उसको बाधा पहुँची। इससे आपको ज्ञानावरणीय कर्म का वध हो गया। जानते हुए भी वह ज्ञानावरणीय कर्म से क्यो नही वचा ? जानता है कि दूसरे से वीच मे वात करने पर उनको विघ्न पडेगा और कर्म-वन्ध होगा लेकिन यह जानते हुए भी

विघ्न डाला अत ज्ञानावरणीय कर्म का बन्ध हुआ। अगर असावधानी के कारण गलती हो जाती है और जानकारी होने पर पश्चात्ताप कर लेता है तो उतना कर्म-बन्ध नही होता। इसलिये कहने का तात्पर्य यह है कि मोक्ष, मात्र ज्ञान से नही, कोरे दर्शन से नही होता, कोरे चारित्र से नही होता और कोरे तप से भी नही होता है। किसी ने तप से शरीर को गला डाला लेकिन उसमे ज्ञान, दर्शन व चारित्र नही, धर्म पर भरोसा नही, गुरु पर विश्वास नही सद्गुरु और कुगुरु का भेद-ज्ञान नही है, जो आ गया उसे ही गुरु मान लिया, यह कह दिया कि 'वाना पूज नफा ले भाई'। वहुतेरे लोग वेप के पुजारी होते है। वहुत से नाम या गादी या परम्परा के पुजारी होते है, लेकिन वास्तव मे सद्गुरु, गुरु और असद्गुरु का विचार नही है। यदि इस तरह से श्रद्धा रखो और तपस्या व मासखमण भी कर गये तो लाभ होने वाला नही है। आपने सुना है

मासे मासे उ जो वालो, कुसग्गेण तु भुजए।
न सो सुग्रक्खाय धम्मस्स, कल अग्घई सोलसी।

कोई अज्ञानी मास-मास की घोर तपस्या करे और पारणे के समय कुश याने डाभ की अणी पर ठहरे, जितने अन्न से पारणा करे, डाभ की अणी पर आवे, जितनी वस्तु से पारणा करे तो भी केवल उससे कुछ नही होता। अज्ञानपूर्वक किया गया इस प्रकार का घोर तप वस्तुत चारित्र और श्रुत-धर्म के १६वे अश की तुलना मे भी कही नही ठहरता। श्रुत-धर्म क्या है ? सम्यक्-दर्शन, सम्यक्-ज्ञान-इसे श्रुत-धर्म कहते हैं। क्रिया है पर ज्ञान नही। ऐसे ही ज्ञान है पर क्रिया नही तो एक और तरह की ज्ञान की स्थिति होगी। 'हय णाण किया हीण, हया अन्नाणओ किया' जो ज्ञान क्रियाशून्य है अर्थात् ज्ञान तो वहुत है पर क्रियाशून्य है, भगवती सूत्र के एक एक सूत्र को वारीक दृष्टि से समझाना जानता है, लेकिन क्रिया नही है तो वह ज्ञान निरर्थक है। इसीलिए कहा है—'हत ज्ञान क्रिया-हीन, हता अज्ञानिन क्रिया' पहली वात सुन कर कहा कि अव क्रिया ही क्रिया करूँगा तो कहा है 'हता अज्ञानिन क्रिया' जिसको ज्ञान नही है, उसकी क्रिया भी निष्प्राण—'निष्फल है। क्योकि उस क्रिया मे सद्क्रिया का प्रकाश नही है। चाहे वह कहे कि

मै अमुक चीज छोडता हूँ, भोग-उपभोग छोडता हूँ, लेकिन उसमे सम्यक् ज्ञान नही है तो क्रिया बेकार हुई। इससे निर्णय क्या हुआ ? इसका वर्णन करते हुए कहा – ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप चारो मिलकर सही मार्ग अर्थात् मोक्ष-मार्ग बनाते हैं। 'एस मग्गो' यही सच्चा मार्ग है। इसके विपरीत जो व्यक्ति एकान्त ज्ञान को अथवा एकान्त दर्शन को, एकान्त चारित्र अर्थात् क्रिया को और एकान्त तप को मोक्ष मार्ग मानता है, वह सही नही है। 'एस मग्गो' एक दूसरे का जोड है और इस जोड की दृष्टि से चारो को मिला कर मोक्ष-मार्ग का साधन बताया है।

ज्ञान और दर्शन की दृष्टि से श्रेणिक ने सम्यक् ज्ञान एव सम्यक् दर्शन की प्राप्ति की और वह जीवन भर सम्यग्दर्शन मे रहा। तथापि उसे मोक्ष प्राप्त नही हो सका क्योकि उसने चारित्र-धर्म की किंचित्मात्र भी आराधना नही की।

दूसरी ओर एक व्यक्ति जीवन भर व्रत, नियम एव तप का आराधन एव पालन कर रहा है, पर उसे सम्यग्दर्शन प्राप्त नही हुआ है, तो वह भी मोक्ष प्राप्त नही कर सकेगा। क्योकि मिथ्यात्व के कारण उसका बन्ध तीव्र होगा, वह व्यवहार मे छोटी हिंसा से भी बडा कर्म-बन्ध कर लेता है। अत लाखो वर्षो की तपस्या करके भी वह कर्मो की निर्जरा विपुल मात्रा मे नही कर पाता। जिस प्रकार एक जलाशय को सुखा डालने के लिये उसकी मोरी को तो खोल दिया जाय पर उसमे निरन्तर गिरने वाले उन नालो को बन्द नही किया जाय, जिनसे मोरी के द्वारा निकाले जा रहे पानी से भी सहस्र गुना अधिक पानी निरन्तर उस जलाशय मे आ रहा है, तो वह जलाशय सुखाया नही जा सकेगा। ठीक उसी प्रकार आत्मनद के कर्म-जल को मिथ्यात्व दशा मे की गई तपस्या से तब तक नही सुखाया जा सकेगा, जब तक कि आत्मनद मे निरन्तर गिरने वाले आश्रव-द्वारो को अवरुद्ध नही किया जायेगा। आश्रवद्वारो को सम्यग्दर्शन एव सम्यग्ज्ञान की उपलब्धि के अनन्तर ही बन्द किया जा सकता है। मिथ्यात्व को छोडकर जिसने सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया है, उसका बन्ध भी हल्का होगा, युद्ध मे हत्या करके भी वह मुक्ति मिला सकता है, कारण कि सम्यग्दर्शनी होने से उसकी कषायें

मन्द है, अन्तर जागृत है, मन रूखा है, पाप करते हुए भी वह उसमे मन से लिप्त नही है।

पश्चात्ताप से पाप हल्का

खदक मुनि ने कौनसी हत्या की थी, जिसके कारण उनके वदन की खाल उधेडी गयी। उन्होने पिछले जन्म मे कौनसा पाप किया था, जिससे मुनि के शरीर की खाल उधेडी गई ? आपने सुना होगा कि उन्होने काचरे का छिल्का-खाल उतारा था। न मालूम कितने ही काचरो का कचूमर आप लोगो मे से कइयो ने निकाला होगा। नारियो को तो काचरे का आचार आदि वनाते समय कितने ही काचरो को छीलना पडता होगा, टकरे करने का काम पडता होगा। खदक मुनि ने तो एक वार काचरा छीला, जिसके कारण इतना घोर चिक्करण एव तीव्र कर्म-वन्ध हुआ। इसके पीछे कौनसा मूल कारण है ? मिथ्यात्व दशा की अतितीव्र भावपूर्ण हिंसा उसका मूल कारण है। इसके विपरीत प्रदेशी राजा ने कितने ही मनुष्यो की चमडिया उधेडी होगी। कितने मनुष्यो के उसने सर कटवाये होगे। वह तो आत्मा को मानता ही नही था। तो फिर दोनो मे क्या अन्तर हुआ ? दोनो मे अन्तर यह था कि प्रदेशी राजा को सम्यक् दर्शन और सम्यक् ज्ञान की अनुभूति हुई, तव उसने अपनी पिछली सारी त्रुटियो की आलोचना करके अपने अन्त करण को शुद्ध कर लिया। हृदय से पश्चात्ताप किया, इसलिये उसका पाप हल्का हो गया। लेकिन खदक मुनि के जीव को ऐसा मौका नही मिला। यदि खदक का जीव भी आलोचना करके पश्चात्ताप कर लेता तो उसका पाप भी हल्का हो जाता। सम्यक् दर्शन का जव वोध हो जाता है तव यदि पाप उसके हाथ से होता है तो उसमे तीव्र सक्लेश नही होता, क्योकि पाप करके उसको प्रसन्नता नही होती। जरा ध्यान से सुने। ध्यान देने योग्य वात है –

समभू शके पाप से, अणसमभू हरसत,
वे लूखा वे चीकणा, इण विध कर्म वढत ॥

आपने एक हवेली वनाई या वगला वनाया। वगले की सुन्दरता देख कर आपको प्रसन्नता हुई अथवा नही हुई ? घर मे वच्चे की शादी की, विवाह किया, अच्छे पक्वान्न वनाये, फूल मण्डली वनाई,

पुष्प-मण्डप बनाया। आपने कितनी हिंसा की ? भाई बहने थोडा मन मे विचार करे कि क्या यह सब उचित था ? कहा है – 'समझू शके पाप से' ऐसे भी लोग होगे जिन्होने सुन्दर बगला तो बनाया है लेकिन दश आदमियो को दिखा कर राजी नही होगे बल्कि उल्टे शकित होगे और कहेगे – साहब ! क्या करे ससार मे बैठे हैं, इसलिए बनाना पडता है। ऐसा कह कर पाप-बन्धन को हल्का करने की चिन्ता मे लगे हुए है।

एक दूसरी तरह के सेठजी सुन्दर कोठी बना कर सोचते है कि कैसी सुन्दर कोठी बनवायी है ? मेहमानो को बुलाकर कहेगे– "देखो ! मैंने कोठी बनवायी है, कितनी सुन्दर है ?" देखने वाले मेहमान भी तारीफ करेगे–"वास्तव मे बहुत सुन्दर कोठी बनाई है। जयपुर मे हमने ऐसी दूसरी कोठी नही देखी।" सेठजी सुन कर फूले नही समाये। मैंने खूब बनाई। विदेशी व्यापारी देखने आए, तो उन्होने भी खूब प्रशसा की, प्रसन्न हुए, आप भी प्रसन्न हुए। लेकिन याद रखिये कि वह प्रसन्नता आपके कर्मो को हल्का नही बना रही है वरन् आत्मा पर कर्म का भार बढा रही है और वह आपको चुकाना कठिन हो जायगा। लेकिन आप यह समझे कि हर प्राणी मे जागृति नही रहती। अभी आप यहाँ बैठे है तब तक इस प्रकार का विचार आता है लेकिन घर मे जायेगे तब परिवार के लोग, कुटुम्बी, सगे-सम्बन्धी आकर प्रशसा करेगे, उस समय मन गद्गद् हो जायगा। मन मे हर्षित होते हुए सोचेगे कि बम्बई की चौपाटी पर एक और ऐसी कोठी बनाई जाय। यह कर्म-बन्ध का ऐसा चक्र है, जो अनन्तकाल तक नही छूटता।

मैं बता रहा था कि सम्यक्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि मे क्या अन्तर है। पर अन्तर बताने के लिये रात-दिन का भेद ज्ञात हो जायगा, तब इन दोनो का अन्तर भी ज्ञात हो जायेगा। धर्म मे रगा हुआ आदमी यह नही कहेगा कि सम्यक्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि मे अन्तर नही है। मन के परिणाम मे अन्तर है या नही, यह बताने के लिए सेठजी का उदाहरण सामने है। शादी विवाह किया, कोठी-बगले बनाये, मन मे एक को खुशी हुई और दूसरे को आन्तरिक प्रसन्नता के स्थान पर खेद हुआ। सोचने-विचारने के साथ-साथ मन के परिणामो मे कितना अन्तर आया ? यदि दोनो के मन मे अन्तर नही है तो

समझना चाहिये कि दोनो एक ही श्रेणी मे है और दोनो को कर्मचन्दजी छोडने वाले नही है। कर्म-बन्ध से उनका पीछा नही छूटा है।

इसी तरह मोक्ष मार्ग की ओर उन्मुखता ज्ञान से जागृत होती है और दर्शन से सच्चा निश्चय हो जाता है कि आत्मा ही निस्तार करने योग्य है। यह दृढ विश्वास हो जाने पर हमारे जीवन की परिणति भी बदल जाती है।

शास्त्रकार ने बताया है कि जिन लोगो ने सम्यग्ज्ञान के साथ सम्यग्दर्शन पा लिया, उनको धर्म की ओर आकृष्ट होने मे विलम्ब नही होगा और कर्मो के प्रबल आवरण हटने पर बिना तीव्र पुरुपार्थ के ही वे कर्म-बन्ध से मुक्त होने लगेगे। जिन्हे ज्ञान मे विश्वास हो गया है, उनके सामने बडे से बडा वैभव और भोग की सामग्रियो के ढेर अथवा अम्बार लगे हुए होगे तो भी वे उन्हे बाध कर नही रख सकेगे।

नन्दकाल के एक महामुनि का इतिहास शास्त्रकार बताते है – नन्द के महामत्री शकटार की जीवन-लीला समाप्त हो जाने के पश्चात् उनके उत्तराधिकारी के रूप मे महामत्री बनने के लिए शकटार के पुत्र स्थूलभद्र को निमन्त्रण भेजा गया। जब निमन्त्रण उनके सम्मुख प्रस्तुत किया गया तो उन्होने क्षण भर विचार किया और महामन्त्री के सिंहासन को ठोकर मार दी।

मन्त्री-पद की सोने की कुर्सी बडी या साधु का लकडी का तख्त? आप सोने की कुर्सी पर बैठना चाहेगे कि नही? इस तख्त पर बैठने के लिए हम आपको आमन्त्रित करे और कही दूसरी ओर राजस्थान के मुख्य-मन्त्री पद के लिए आमत्रित करे तो आप किधर जायेगे? सोचिये, विचारिये किस ओर जल्दी बढ जायेगे? हम चौराहे पर खडे होकर कहे कि इस तख्त पर जिस किसी को बैठना हो तो वह आवे। तो कौन तरुण या वृद्ध है जो इस तख्त पर बैठने को तैयार होगा? मन्त्री-मण्डल मे मन्त्रियो के रिक्त स्थान की पूर्ति की घोषणा निकले और दो-चार को निमन्त्रण दे दे तो जाओगे या नही? अनुभव कहता है कि वह कुर्सी कितनी आकर्षण, आकुलता, व्याकुलता वाली है कितनी कर्म-बन्ध का कारण है, लेकिन उस कुर्सी को पाने के लिये लोग फिर भी तिकडम् लगायेंगे।

महामुनि स्थूलभद्र

स्थूलभद्र के सामने जब महामन्त्री का पद ग्रहण करने का प्रस्ताव आया तो उन्होने एकान्त मे जाकर सोचा और निर्णय किया कि यह पद कर्म-बन्ध का कारण है। जो पद उसी के पिता का प्राण ले चुका है और न जाने कितनो के ही प्राण ले सकता है, वह इह-लोक एव परलोक दोनो को विगाडने वाला है। इस वात का जव मन मे निश्चय हो जाय और यह सोचले कि भगवान् के चरणो पर चलना, यह सन्यास का मार्ग, साधु मार्ग और यह काष्ठ की शय्या ही मेरे जीवन को कल्याण-मार्ग पर पहुँचाने वाली है, ऐसा निश्चय हो जाय, तो मनुष्य किधर जाएगा ? अपने चरम लक्ष्य शिवधाम की ओर।

युवावस्था मे पदार्पण करते ही स्थूलभद्र १२ वर्ष तक रूप कोशा वैश्या के साथ रहा। १२ वर्ष तक विषयवासना मे डूवा हुआ व्यक्ति, वैश्या के साथ रहने वाला व्यक्ति पहले ही दिन आया है, पिता के मरने के वाद। मा से पूरा मिला भी नही, भाई से मिला नही और राजा से कह दिया कि सोचना क्या है, मुझे तो लोचना है। वात क्या है ? सम्यग्ज्ञान और दर्शन के कारण उसके जीवन मे प्रकाश फैल गया। यदि जीवन को शान्ति की राह लगाना है तो यही एक रास्ता है।

महामुनि स्थूलभद्र ३० वर्ष तक विषय-वासना-पूर्ति की कामना के कारण ससार मे रहे। ज्ञान सुन कर उनको वैराग्य नही आया लेकिन ससार के स्वरूप को देखकर उनको वैराग्य हो गया। उन्होने अनुभव किया कि ससार के प्राणी मित्र से अमित्र होते देर नही करते। ससार मे मित्र, अमित्र क्यो होते हैं ? स्वार्थ के कारण होते है। बच्चे, भाई, स्त्री आदि सभी के सम्बन्ध स्वार्थ के कारण वने हुए हैं। यदि परीक्षा करनी है तो धन का आधा भाग दे दीजिये और आधा अपने पास रख लीजिये। वडी हवेली, दुकान व कोठी रख लीजिये, नकदी आदि १० लाख है तो उनमे से ढाई लाख भाई को दीजिये और साढे सात लाख आप अपने पास रख लीजिये, फिर देखिए नमूना। सव के तेवर चढ जायेगे और कहेगे कि ७॥ लाख अपने पास कैसे रख लिये ? अगर भाई अच्छा है तो कहेगा, अपने को क्या करना है, वडा भाई है, जो इच्छा थी वह दे दिया। वेटे, पोते, भाई, बन्धु,

स्त्री सब रिश्ते स्वार्थो के कारण है। सब पैसो की खनखनाहट के पीछे है। थोडा कम मिलेगा तो तेवर विगड जायेगे। ऐसे ससार को देखकर वैराग्य न आवे तो क्या आवे ?

राजा नन्द अपने महामन्त्री शकटार के सकेत पर चलने वाला था। राजा ने देखा कि महामत्री का सकेत नही है, इसलिए वररुचि को श्लोक सुनाने पर भी पुरस्कार नही मिला। स्वार्थ-सिद्धि के लिये ही वररुचि ने षड्यन्त्र रचा और यह अफवाह फैलायी कि राजा को अपने सकेत पर चलाने वाला महामत्री राजा से राज्य छीन अपने पुत्र को राजा वनाना चाहता है। राजा नन्द की वदली मन स्थिति जब शकटार ने देखी तो उसने अपने पुत्र श्रीयक को बुला कर समझाया। षड्यन्त्र के कारण सभावित सर्वनाश से परिवार की रक्षार्थ शकटार की आज्ञानुसार श्रीयक द्वारा राज्य सभा मे शकटार की गर्दन काट ली गई। यह दृश्य मस्तिष्क के आगे घूमते ही स्थूलभद्र की सोई हुई आत्मा जगी और उसने सोचा – "ससार विश्वास करने लायक नही है। इसलिये यदि साधना-मार्ग पर चलूँ तभी आत्मा का कल्याण हो सकता है। अन्यथा अन्य साधन तो आत्मा का अध पतन करने वाले, आत्मा को डिगाने वाले है। यह सोच कर उन्होने सन्यास अर्थात् श्रमणधर्म अगीकार कर लिया। वे ३० वर्ष तक घर में रहे और ४५ वर्ष तक युगप्रधान आचार्य रहे। ९९ वर्ष की पूर्ण आयु समाप्त कर उन्होने अपनी आत्मा को स्वर्गधाम का अधिकारी वनाया। इस तरह सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्र और सम्यक् तप की आराधना कर, अपने जीवन को भोग-मार्ग से योग-मार्ग की ओर अग्रसर कर कर्मो का क्षय करते हुए वे मुक्ति की ओर वढ गये। उन्होने जन-मानस मे धर्म-रुचि जागृत कर जन-जन को जिनशासन का अनुयायी और कल्याण-पथ का पथिक वनाया।

ससार मे साधन-सम्पन्न एव धनी-मानी युवक धर्म-मार्ग की ओर अग्रसर होकर दूसरो को इस ओर लाने का प्रयत्न करे तो उसका विशेप प्रभाव होता है। और यदि साधारण व्यक्ति काम छोड़कर इस ओर लगता भी है तो जैसा चाहिए वैसा उसका असर नही होता। कई लोग कह देते हैं कि समाज के लिए और धर्म के लिए हम करेंगे, लेकिन जव वे घर मे, परिवार मे, सम्वन्धियो मे तथा अडोस-पडोस मे

ही प्रभाव नही छोड सकते तो दूसरे जैनेतर समाज मे कुछ कर सकेंगे, ऐसी आशा कैसे की जा सकती है ?

आपको ज्ञात होना चाहिए कि उपाध्याय यशोविजय जी सारे ससार को जैन-शासन मे लाना चाहते थे – प्रेम भावना से बन्धुत्व की भावना से। उन्होने कहा था, 'सर्व जीव करू शासन रसी' कहा तो यह भावना और कहा आज छोटी-छोटी बातो के कारण एक दूसरे से नाराज होने वाली हमारी मनोवृत्ति ? बाप बेटे से नाराज हो जायेगा, भाई-भाई से नाराज हो जायेगा, गुरु-शिष्य से नाराज हो जायेगा। यदि किसी धर्म-गुरु ने एक शिष्य को बढावा दिया तो दूसरा सोचेगा कि यह ज्यादा मुँह लग गया तो ठीक नही रहेगा। इसलिए वह उस पर रोक लगाने का प्रयत्न करेगा। आज हमारी बन्धु-भावना सकुचा गई है। एक दूसरे पर विश्वास नही करेगे। इन बातो से कैसे उद्धार होगा ? विश्व-मैत्री की बात करने वाले घर मे भी मैत्री निभाने मे असफल प्रमाणित होते है।

आपकी और हमारी आत्मा निर्जरा से अनन्त काल के बन्धन काटकर किस प्रकार सदा-सर्वदा के लिये मुक्ति प्राप्त करे, इस सम्बन्ध मे उत्तराध्ययन सूत्र की एक छोटी सी गाथा का यहा वर्णन किया है। २८ वे अध्याय की दूसरी गाथा पर सक्षेप मे यहा विचार रखे हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप क्या है ? उसमे सम्यक् दृष्टि से चेतना क्या है, साधना क्या है ? अपना जीवन कैसे सार्थक होगा ? इन प्रश्नो पर सक्षेप मे यहा चर्चा की गयी है – आगे फिर अवसर पाकर विचार किया जाएगा।

मोक्ष-मार्ग — २

प्रार्थना

वन्धुओ !

'सुख-विपाक-सूत्र' का प्रथम अध्याय सुवाहु के सम्वन्ध मे है। राजकुमार सुवाहु ने अपने जीवन को न केवल वाह्य—भौतिक रूप मे ही अपितु आध्यात्मिक रूप से भी ऐसा शान्त, दान्त, सयमशील और आदर्श वना लिया था कि उनके वहिरग वोध और अन्तरग वोध की शास्त्रो मे वडी महत्त्वपूर्ण चर्चा की गयी है। अमीर हो अथवा गरीव, शास्त्रो मे उसी का वर्णन है, उसी की गुण-गाथा है, जो घूम-फिर कर अन्ततोगत्वा मोक्ष-मार्ग का पथिक वना है।

जीव दो प्रकार के भवमार्गी और शिवमार्गी

जीव दो प्रकार के होते है—एक भवमार्गी और दूसरे शिवमार्गी। विश्व भर मे अनन्तानत प्राणी भव-मार्ग का अनुगमन कर रहे है। उनकी कोई गुण-गाथा नही गायी जाती। उनका उल्लेख कही नही होता। उनका कोई पता भी नही होता कि किधर मे आये और किधर गये। दूसरी ओर शिवमार्गी जो जीव है, वे हुए तो है गिनती के, सख्या मे अमख्य नजर नही आये, किन्तु शास्त्रो मे, सत्साहित्य

आपके ध्यान मे ला दी है कि कितने विशिष्ट वेप के प्राणी शिव मार्ग के अधिकारी वने है। भव-मार्ग पर जाने वाले प्राणियो का पता इसलिये नही है कि वे अध पतन की ओर अग्रसर हो रहे है। भवमार्गी जीव भव-भ्रमण के अधिकारी हैं, पतनोन्मुख है। जो जीव गिरावट की ओर जा रहा है, उसकी ओर दुनियाँ मे कौन ध्यान देता है ? गिरने वाले सेठ, साहूकार, राजा, महाराजा अथवा अधिकारी है, उनका नाम कौन लेते है ? जो गिरने वाले है, उनको हम कितना जल्दी भूल जाते है ? जिनकी पहले विरुदावली गाते थे, जिनके नाम के जय-जय के नारे लगाते थे, उन राजा-महाराजाओ को आज हम भूल गये है। उनके बाल-बच्चे आज भी यहाँ मौजूद है, लेकिन उनकी जय के नारे भूल गये है। क्यो भूल गये ? ये मिनिस्टर साहब हैं, यदि कुर्सी पर है तो उनकी जय बोलेगे नही तो नही बोलेगे। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जो गया अथवा जाता है, उससे जब तक स्वार्थ-सिद्धि होती है, तब तक उसका गुण गाया जाता है और जब वही प्राणी गिरने वाला है, या पतनोन्मुख है, तो उसको कोई नही पूछता। ससार के जीव तो भौतिक चढाव को देखते है। लेकिन शास्त्र भौतिक चढाव की तरफ निगाह नही करके आध्यात्मिक रोशनी की ओर चलने वाले जीव को शिवमार्गी कहते हैं। शिवमार्गी क्या करता है, उसके बाबत विचार करेगे। शिवमार्गी कह दीजिए या मोक्ष मार्गी। मोक्ष मार्गी क्या है, कल पहली गाथा कही थी, आज आगे की गाथा कहेगे।

पहली गाथा मे कहा था – 'नाण च दसण चेव'

हे मुमुक्षु यदि मुक्ति चाहता है तो मुक्ति के मार्ग को ध्यान मे रख। मोक्ष के द्वार बतलाते हुए कहा – पहला ज्ञान, दूसरा दर्शन, तीसरा चारित्र और चौथा तप 'एसमग्गो' – यह मार्ग है। ऐसा कहने वाले मे अथवा मार्ग बताने वाले मे विश्वास भी होना चाहिए। जो गुजराती है, पजाबी है या अन्य किसी जगह का है, वह व्यक्ति आमेर का रास्ता बता रहा है और आप बाहर से आ रहे है तो आप उसका विश्वास कैसे करोगे ? आप कहोगे कि तुम तो स्वय पजाबी हो, इस जगह के जाये-जन्मे नही। जैसे आप बाहर वाले है, वैसे ही वह भी बाहर का है, इसलिए उसका विश्वास नही करोगे। अत मार्ग

वताने वाला स्वय मार्ग का ज्ञाता होना चाहिए, फिर मार्ग का जानकार निष्पक्ष हो तथा सत्यवादी हो। ये तीन वाते जिसमे होगी, वही सही रास्ता वता सकता है, इसलिए कहा गया है कि मोक्ष मार्ग किसने वतलाया –

'जिरोहिं वरदसिहिं'

जो वीतराग हो चुके है, जिनके मन मे राग, द्वेष, मोह, ममता नही है और जो वरदर्शी है अर्थात् केवल-ज्ञान और केवल-दर्शन को धारण करने वाले है। ऐसे महापुरुष द्वारा वताया गया मार्ग विश्वास करने लायक है, इसमे शका ही क्या है। लेकिन यह मार्ग पहुँचाता कहा है ? मार्ग तो है पर यह कहाँ पहुँचायेगा, जव तक यह पता नही चले, तव तक अन्त करण की प्रेरणा नही होगी, उस पर चलने की। इसलिए आगे कहा है –

नाण च दसण चेव, चरित्त च तवो तहा।
एय मग्गमणुप्पता, जीवा गच्छति सुग्गई ॥

इस गाथा का पूर्वार्द्ध वही है, इसलिए यह खयाल नही करे कि यह गाथा वही है, जो पहले कही गई है। पहली गाथा मे मार्ग वताया गया था। अव इसमे कह रहे है कि ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप के मार्ग को जो प्राप्त कर चुके हैं, तप रुपी मार्ग को जो पा चुके हैं, मार्ग पर जो लग चुके है, वे जीव 'एतद् मार्गमनुप्राप्ता', इस मार्ग को जो प्राप्त कर चुके हैं, जिनको निश्चय हो चुका है, वे सुगति प्राप्त करते हैं। सुगति भी अनेक वतायी गई हैं, देव सुगति, मनुष्य सुगति। लेकिन ये सुगतियाँ अस्थायी हैं, अल्पकालिक है, छूटने वाली हैं। इन सुगतियो से जीव फिर गिर सकता है। इसलिए कहा है – एकान्त सुगति अथवा सिद्धि-सुगति। इस सुगति के अधिकारी वे जीव होते हैं, जो अज्ञान से अपने-आप को दूर कर ज्ञान-मार्ग पर लग जाते हैं, कुदर्शन से दर्शन-मार्ग पर लग जाते हैं और मिथ्या चारित्र से सम्यक् चारित्र पर लग जाते हैं।

ज्ञान और सम्यक्त्व का परस्पर सम्वन्ध

अव सोचना यह है कि प्रथम ज्ञान, दूसरा दर्शन, तीसरा चारित्र चौथा तप, यह जो मार्ग की स्थिति वताई गई है, यह जो हमारे

आपके ध्यान मे ला दी है कि कितने विशिष्ट वेष के प्राणी शिव मार्ग के अधिकारी बने है। भव-मार्ग पर जाने वाले प्राणियो का पता इसलिये नही है कि वे अध पतन की ओर अग्रसर हो रहे है। भवमार्गी जीव भव-भ्रमण के अधिकारी है, पतनोन्मुख है। जो जीव गिरावट की ओर जा रहा है, उसकी ओर दुनियाँ मे कौन ध्यान देता है ? गिरने वाले सेठ, साहूकार, राजा, महाराजा अथवा अधिकारी है, उनका नाम कौन लेते है ? जो गिरने वाले है, उनको हम कितना जल्दी भूल जाते है ? जिनकी पहले विरुदावली गाते थे, जिनके नाम के जय-जय के नारे लगाते थे, उन राजा-महाराजाओ को आज हम भूल गये है। उनके बाल-बच्चे आज भी यहाँ मौजूद है, लेकिन उनकी जय के नारे भूल गये है। क्यो भूल गये ? ये मिनिस्टर साहब हैं, यदि कुर्सी पर है तो उनकी जय बोलेगे नही तो नही बोलेगे। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जो गया अथवा जाता है, उससे जब तक स्वार्थ-सिद्धि होती है, तब तक उसका गुण गाया जाता है और जब वही प्राणी गिरने वाला है, या पतनोन्मुख है, तो उसको कोई नही पूछता। ससार के जीव तो भौतिक चढाव को देखते है। लेकिन शास्त्र भौतिक चढाव की तरफ निगाह नही करके आध्यात्मिक रोशनी की ओर चलने वाले जीव को शिवमार्गी कहते है। शिवमार्गी क्या करता है, उसके बाबत विचार करेगे। शिवमार्गी कह दीजिए या मोक्ष मार्गी। मोक्ष मार्गी क्या है, कल पहली गाथा कही थी, आज आगे की गाथा कहेगे।

पहली गाथा मे कहा था – 'नाण च दसण चेव'

हे मुमुक्षु यदि मुक्ति चाहता है तो मुक्ति के मार्ग को ध्यान मे रख। मोक्ष के द्वार बतलाते हुए कहा – पहला ज्ञान, दूसरा दर्शन, तीसरा चारित्र और चौथा तप 'एसमग्गो' – यह मार्ग है। ऐसा कहने वाले मे अथवा मार्ग बताने वाले मे विश्वास भी होना चाहिए। जो गुजराती है, पजाबी है या अन्य किसी जगह का है, वह व्यक्ति आमेर का रास्ता बता रहा है और आप बाहर से आ रहे है तो आप उसका विश्वास कैसे करोगे ? आप कहोगे कि तुम तो स्वय पजाबी हो, इस जगह के जाये-जन्मे नही। जैसे आप बाहर वाले है, वैसे ही वह भी बाहर का है, इसलिए उसका विश्वास नही करोगे। अत मार्ग

बताने वाला स्वय मार्ग का ज्ञाता होना चाहिए, फिर मार्ग का जानकार निष्पक्ष हो तथा सत्यवादी हो। ये तीन बाते जिसमे होगी, वही सही रास्ता बता सकता है, इसलिए कहा गया है कि मोक्ष मार्ग किसने बतलाया –

'जिरोहिं वरदसिहि'

जो वीतराग हो चुके है, जिनके मन मे राग, द्वेष, मोह, ममता नही है और जो वरदर्शी है अर्थात् केवल-ज्ञान और केवल-दर्शन को धारण करने वाले है। ऐसे महापुरुष द्वारा बताया गया मार्ग विश्वास करने लायक है, इसमे शका ही क्या है। लेकिन यह मार्ग पहुँचाता कहा है? मार्ग तो है पर यह कहाँ पहुँचायेगा, जब तक यह पता नही चले, तब तक अन्त करण की प्रेरणा नही होगी, उस पर चलने की। इसलिए आगे कहा है –

नाण च दसण चेव, चरित्त च तवो तहा।
एय मग्गमणुप्पता, जीवा गच्छति सुग्गई॥

इस गाथा का पूर्वार्द्ध वही है, इसलिए यह खयाल नही करे कि यह गाथा वही है, जो पहले कही गई है। पहली गाथा मे मार्ग बताया गया था। अब इसमे कह रहे है कि ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप के मार्ग को जो प्राप्त कर चुके है, तप रुपी मार्ग को जो पा चुके हैं, मार्ग पर जो लग चुके है, वे जीव 'एतद् मार्गमनुप्राप्ता', इस मार्ग को जो प्राप्त कर चुके है, जिनको निश्चय हो चुका है, वे सुगति प्राप्त करते हैं। सुगति भी अनेक बतायी गई है, देव सुगति, मनुष्य सुगति। लेकिन ये सुगतियाँ अस्थायी हैं, अल्पकालिक है, छूटने वाली है। इन सुगतियो से जीव फिर गिर सकता है। इसलिए कहा है – एकान्त सुगति अथवा सिद्धि-सुगति। इस सुगति के अधिकारी वे जीव होते है, जो अज्ञान से अपने-आप को दूर कर ज्ञान-मार्ग पर लग जाते है, कुदर्शन से दर्शन-मार्ग पर लग जाते हैं और मिथ्या चारित्र से सम्यक् चारित्र पर लग जाते है।

ज्ञान और सम्यक्त्व का परस्पर सम्बन्ध

अब सोचना यह है कि प्रथम ज्ञान, दूसरा दर्शन, तीसरा चारित्र और चौथा तप, यह जो मार्ग की स्थिति बताई गई है, यह जो हमारे

सामने मार्ग कहा है, उसमे 'ज्ञान-मार्ग मे प्राणी कब लगता है और ज्ञान का स्वरूप क्या है' – इस बात को लेकर शास्त्रकार स्वय मूल मे विचार करते है। जीव का स्वभाव ज्ञानस्वरूप होने पर भी ज्ञान तब तक प्रकट नही होता, जब तक उस पर से आवरण दूर नही होता। रोशनी देना सूर्य का स्वभाव होता है। प्रकाश देना सूर्य का स्वभाव है फिर भी यदि बादल छाए हुए है, धुन्ध छाई हुई है या धूल जमी हुई है, तो? जब तक ये बादल नही हट जाते, धूल दूर नही होती या धुन्ध नही फट जाती तब तक क्या सूर्य पूरी तरह से प्रकाश दे सकता है? नही। सूर्य के स्वभाव के अनुरूप प्रकाश आने मे बाधा डालने वाले बादल, धुन्ध या धूल, दूर होने पर ही सूर्य रोशनी दे सकता है। इसी तरह आत्मा मे जो ज्ञान का गुण है, उसको रोकने वाला कर्मावरण है। पहला आवरण है मिथ्यात्व, दूसरा आवरण है कषाय तथा तीसरा आवरण है ज्ञानावरणीय कर्म। अज्ञान के हटते ही ज्ञान प्रकट हो जाता है। सम्यक् ज्ञान को प्राप्त करने के लिए मोह कर्म, ज्ञानावरणीय कर्म और अन्तराय कर्म का क्षयोपशम जरूरी होगा। केवल ज्ञानावरणीय कर्म क्षय हो जाय और मोह आदि क्षय नही हो, तो यह भी एक प्रकार से बाधक है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि हमने मोक्ष-मार्ग के पहले अग के रूप मे जिस ज्ञान को सुना है, समझा है, वह ज्ञान आत्मा का स्वभाव होने पर भी जब तक कर्म का तीव्र आवरण पडा हुआ है, तब तक प्रकट नही होता, प्रकाशित नही होता। सम्यक् ज्ञान के प्रकट होने के लिये सर्वप्रथम मिथ्यात्व दूर हटना चाहिए और उसके बाद तीव्र कषाय के जो अनेक बन्धन हैं, वे भी हटने चाहिए। यदि ज्ञान पाना है, तो अज्ञान को हटाना आवश्यक होगा। अन्धेरा हटे बिना प्रकाश नही हो सकता, और प्रकाश के बिना अन्धेरा नही हटता। जिस प्रकार इन दोनो का परस्पर सम्बन्ध है, उसी प्रकार अज्ञान और मिथ्यात्व तथा ज्ञान और सम्यक्त्व का परस्पर गहरा सम्बन्ध है। इसलिए कहा गया है –

> बिना हटे मिथ्यात्व ज्ञान नही होता,
> तीव्र मोह मे अज्ञ अटकता फिरता।
> अज्ञानी जन अमित दुख को भोगे,
> सदसत् का नही भान मूढ मति योगे।

दूर करो अज्ञान ज्ञान घट लाई,
मोक्षार्थी जन सुनो एक चित्त लाई।
भव-भव-सचित होता कर्म विलाई ।।

मार्ग-चतुष्टयी मे चार द्वार होते हुए भी एक दूसरे का गहरा सम्बन्ध है और प्रत्येक की स्वतन्त्र महिमा है। मोक्ष-मार्ग के लिये ज्ञान भी अपना महत्त्व रखता है, दर्शन भी अपना महत्त्व रखता है, चारित्र भी अपना अलग महत्त्व रखता है और तप की भी अपनी स्वतन्त्र महिमा है। ज्ञान कैसे प्राप्त होता है ? मिथ्यात्व और अज्ञान हटने से। मिथ्यात्व और अज्ञान की गाठ कैसे कटेगी ? ज्ञान होगा तव। इसलिए इनका परस्पर सम्बन्ध है। एक को दूसरे की अपेक्षा है। शास्त्रकार ने कहा है –

"नादसणिस्स नाण।"

जब तक मानव के मन मे सच्ची श्रद्धा नही होगी, तव तक ज्ञान पैदा नही होगा और दूसरी तरफ जव तक ज्ञान प्राप्त न हो जाय, तव तक सच्ची श्रद्धा नही होगी। इन दोनो का परस्पर सम्बन्ध है। आपने सुना है, राजा प्रदेशी शरीर और जीव को एक मानता था। 'शरीर से भिन्न कोई आत्मा है और उसको शुभाशुभ कृत-कर्म के फल भोगने पडते है' – वह यह नही मानता था। जब तक उसने यह नही जाना तव तक उसने जीवो की घोर हिंसा की। महाराज केशी श्रमण के सामने एक छोटा सा प्रस्ताव महामात्य की ओर से आया – "महाराज ! श्वेताम्बिका नगर मे पधार कर कैकय प्रदेश के अनार्यो को शिक्षा दीजिये।" तव उन्होने उत्तर दिया – "शिकारी जिस जगल मे सक्रिय हो क्या वहाँ कोई पक्षी रहना पसन्द करेगा ? जिस जगल मे शिकारी का उपद्रव हो वहाँ कोई पक्षी नही रहना चाहेगा ?" महामात्य की अनुग्रह भरी विनति स्वीकार कर केशी श्रमण श्वेताम्बिका गये। प्रदेशी नास्तिक होने के साथ-साथ अज्ञानी और हिंसक भी था। लेकिन जब उसने केशी श्रमण के कृपापूर्ण युक्तिमद् वचनो से अपना अज्ञान दूर कर ज्ञान से यह जान लिया कि जीव क्या है, शरीर क्या है, जीव और शरीर वस्तुत एक दूसरे से पूर्णत भिन्न हैं, जीव शरीर से अलग है और जैसा उसका जीव है, वैसा ही सामने वाले का जीव भी है, तो उसके जीवन की, उसके चिन्तन की धारा ही वदल गई।

जब उसने यह जान लिया, उसे यह विश्वास हो गया, तब उसने हिंसा का त्याग कर दिया और उसको सम्यक्-ज्ञान के साथ सम्यक्-दर्शन प्राप्त हो गया। जैसे मनुष्य के मुख पर दोनो नेत्र एक साथ उघडते है, आगे पीछे नही उघडते। अन्य प्राणियो की अपेक्षा मनुष्य के नेत्र जल्दी उघडते हैं। कई ऐसे प्राणी हैं, जिनके बच्चो के नेत्र जन्म से १०-१२ दिन बाद खुलते है – जैसे चिडी, बिल्ली, कुत्ते के पिल्ले आदि। इनकी आँखे जन्म के बाद कई दिनो तक नही खुलती। किन्तु जब खुलती है, तब एक दूसरी के बाद नही खुलती। पहले दायी खुले फिर बाँयी खुले, ऐसी बात नही है। तो जैसे आपकी और हमारी आँखे दोनो एक साथ खुलती है, उसी तरह ज्ञान और दर्शन का प्रकाश एक साथ होता है। पशु-पक्षी के भेद के कारण आखो का खुलना आगे-पीछे हो सकता है। लेकिन ज्ञान और दर्शन का बोध आगे-पीछे नही हो सकता। अत मिथ्यात्व छोडने पर अज्ञान ज्ञान मे परिणत हो जाएगा। आपने शास्त्रो मे वीतराग की वाणी पढी होगी, लेकिन उस समय यदि किसी मे मिथ्यात्व का उदय हो गया, तब वीतराग की वाणी उसके लिये सम्यक्ज्ञान नही होकर मिथ्याज्ञान होगी। एक छोटा सा उदाहरण है। शास्त्रो मे जमाली का वर्णन आता है। जमाली शास्त्रो का ज्ञाता था। ५०० साधुओ का मुखिया बनकर वह बिहार भूमि मे निकला। लेकिन जब उसे मिथ्यात्व का उदय हो गया और भगवद् वचनो मे उसकी श्रद्धा नही रही, उस वक्त उसका ज्ञान सम्यक् रूप मे परिणत हुआ या मिथ्या रूप मे ? वह मिथ्यात्वी हो गया। शास्त्रो मे मिथ्यात्व के भेद बतलाये है, पर यह साधारण बुद्धि वाले के समझ का विषय नही। किस मे कितना मिथ्यात्व है, यह व्यवहार बतलाता है।

जो नश्वर है, उसका त्याग करें

इन्द्रभूति वेद-वेदान्त के ज्ञाता थे। जब उन्हे सम्यक्त्व प्राप्त हो गया तो वेदो-का ज्ञान सम्यक् हो गया। एक तो इन्द्रभूति वेदो का अर्थ करने लगे और दूसरे पीछे रहे हुए पण्डित अर्थ करते है, इन दोनो मे बडा अन्तर है। इसका मतलब यह है कि दृष्टि जब बदल जाती है, तब शास्त्रो मे या ग्रन्थो मे जो कहा है, उसका अर्थ भी भिन्न हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि राजा प्रदेशी ने पूर्व मे मिथ्या ज्ञान

से देह और आत्मा को एक ही जाना इसलिए किसी को ताडने-तर्जने-मारने आदि मे कोई पाप नही, ऐसा उसका मत बन गया था । लेकिन उसकी यह मान्यता सम्यक् दर्शन पाते ही गायब हो गयी और उसकी हिंसा करने की वृत्ति क्षण भर मे छूट गयी । आप क्षण तो क्या महीनो मे और वर्षो मे भी नही बदलते, इतने पक्के है । शायद आपकी अपेक्षा प्रदेशी पूर्व-कृत्यो को छोडने मे इतना कठोर नही था । वह नास्तिक कहलाने वाला घोर हिंसक एक ही क्षण मे सब कुछ त्याग कर गया । वह क्यो बदल गया ? क्या केशी महाराज को उसे यह कहना पडा कि राजन् राज-पाट, सोना जवाहरात वैभव सब नश्वर है, इसलिए इनको छोड दो ? कहना नही पडा और छोड दिया । क्यो छोड दिया ? इसलिए कि उसको ज्ञान हो गया । अज्ञान हट गया ।

तो बन्धुओ ! इस चीज को समझो । उसके पास शक्ति थी, वैभव था, पाप करता था, लेकिन जब उसने ज्ञान से जान लिया – "यह परिग्रह जाने वाला है, आज नही तो कल स्वत सुनिश्चितरूपेण जायगा । स्वय जाय इससे पहले ही मैं इसको छोड दूँ तो इसमे बलिहारी है ।" यह समझकर उसने सब का त्याग कर दिया । लेकिन आप कहोगे कि स्वय जाय उसकी परवाह नही है, हम आगे होकर इसको कैसे छोडे ? पर यह तो समझो कि आप जो अन्न खाते हो, क्या उसका विसर्जन नही करते ? क्या इसके लिए आपसे किसी को कहने की जरूरत पडती है ? सुबह उठकर शौचालय जाने को निकलोगे क्योकि यह सुनिश्चित है कि जिस प्रकार अन्न ग्रहण किया जाता है उसी प्रकार समय पर शरीर के मल का विसर्जन भी होना चाहिये । यदि मल विसर्जन नही होगा तो हमारी तन्दुरुस्ती को खतरा है । यदि जमा रह गया तो डाक्टर को दवा देकर या पिचकारी, एनिमा लगाकर निकालना होगा । इसी प्रकार जिस दिन ज्ञान हो जाय कि परिग्रह-पुद्गल छोडने योग्य है, जिस तरह से हम उसका सग्रह करते हैं, उसी प्रकार उसका निष्कासन या विसर्जन भी होना चाहिए । विसर्जन की नाडी भी साफ रहनी चाहिए । यदि विसर्जन की नाडी बिगड गयी, तो स्वास्थ्य बिगड जाएगा । यह ज्ञान हो गया तो आप कुछ करने को तैयार हो जाओगे । यह बात जो धन के लिए बतायी, वही मनुष्य की जिन्दगी मे जितने भी सम्बन्ध हैं, उन सब पर लागू होती

तरह सोचिये कि ये जो भौतिक पदार्थ धन, धान्य, इत्यादि है इन कितने स्वामी बदल गये ? फिर आप कैसे कहते है कि ये मेरे है यह नगीना मेरा है, यह हवेली मेरी, यह बगला मेरा इत्यादि – य जो मेरेपन की बात है या जो बोध है, उसके बारे मे शास्त्रो कहा गया है कि अज्ञान के कारण प्राणी ऐसा समझ रहा है जब ज्ञान का प्रकाश प्रदेशी राजा मे आ गया तो छोडने मे उसे देर लगी नही, उसी तरह आपको भी देर नही लगनी चाहिये। असल मे सोचा जाय तो यह बुद्धि आपमे जगी नही है। अभी तक इनके प्रति रागानुबन्धन घटे नही है। जब तक रागानुवन्धन घटे नही, बुद्धि जगी नही, तब तक त्याग की प्रवृत्ति नही होती है।

प्रदेशी का एक दिन मे, एक बार मे ही अज्ञान घटा। उसी समय उसने बिना राजपाट का प्रबन्ध किये केशी मुनि के चरणो मे बैठकर १२ व्रत धारण कर लिये। १२ व्रत धारण करने के साथ ही साथ उसने परिग्रह का परिमाण किया। उसका परिग्रह ज्यादा लम्बा चौडा था आपका ज्यादा लम्बा चौडा ? आपमे से यदि किसी को कहा जाय कि सेठजी परिग्रह की सीमा तो बाधो, तो कहोगे – "महाराज ! अभी तो पता नही है कितना देना है, कितना लेना है, कितना माल है, दिवाली पर जब हिसाब करेंगे तब पता चलेगा।" वस्तुत आपका इस प्रकार कहना परिग्रह-परिमाण से बचने का उपाय मात्र ही माना जा सकता है। यदि वास्तव मे आप परिग्रह का परिमाण करना चाहते है तो जितना आज आपके पास है, उतना खुला रखकर बाकी का तो त्याग कर दो। यह तो बिना आँकडो के भी आप कर सकते है। हिसाब पीछे करते रहना। १०–२० या २५ लाख हैं, उनसे अधिक इकट्ठा करने का त्याग कर दो। जितने बगले, मकान दुकान, इत्यादि है,

उससे अधिक नहीं बढाओगे, यह तो प्रण कर लो। उस तरह का संकल्प यदि करना चाहो तो बिना विलम्ब के कर सकते हो या नहीं? हाँ। फिर तैयार क्यों नहीं होते? संकल्प करने की तैयारी की बात तो दूर रही, आप और संग्रह करने की इच्छा और लालसा रखते हो। यदि आप इस तरह का त्याग नहीं करोगे तो आप निश्चित रूप से अपने आत्मदेव को और अधिक भारी बनाओगे।

परिग्रह नहीं, त्याग ही बडप्पन की निशानी है

सूत्र का पहला श्लोक कल बतलाया था, उसमे यह बताया गया है कि परिग्रह का बंधन तब तक नही कटेगा, जब तक मनुष्य यह न मान ले कि यह आत्मा के लिये दुःखदायी है और जीवन-निर्माण मे बाधक है। लेकिन आज तो उल्टा समझ रहे हैं। आज तो यह समझ रहे हैं – "परिग्रह, हमारे शान, मान और बडप्पन की निशानी है। देखो हमारे पास धन है, परिग्रह है, तभी तो लोग आते है, चन्दा मागने वाले आते हे, और कहते है – सेठजी पाठशाला के लिए कितना चन्दा दोगे? दूसरा कहता है – सस्था के लिये कितना दोगे? छात्रवृत्ति के लिये चन्दा मागने वाले आते है, और और कार्यों के लिए, अस्पतालो आदि के लिए माँगने वाले आते हैं। पैसा है तो नौकर चाकर है, मुनीम-गुमास्ते हैं, आगे पीछे लोग पूछते है। यदि हम सारा धन निकाल देगे तो कौन पूछेगा? इसलिए हम तो अधिकाधिक धन-सग्रह मे अपना तथा औरो का हित समझते हैं।"

इस प्रकार आज मानव परिग्रह को उच्चता और सुख-सुविधा की निशानी समझता है। वह भूल गया है कि परिग्रह उच्चता की निशानी नही है। लोगो मे सम्मान की निगाह कब होगी - परिग्रह त्याग पर या रखने पर? इतनी सीधी-सादी चीज को भी मानव भूल जाता है, इससे बढकर अज्ञान क्या हो सकता है? इसलिए भगवान् ने सबसे पहले देखा कि मुक्ति का रास्ता बताना है तो अज्ञान को नष्ट करके ज्ञान का प्रकाश किया जाय। ऐसा किया जायगा तो मोक्ष और मोक्ष का मार्ग नजदीक हो जाएगा।

अपने यहाँ जैनागम मे मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति ७० कोडा-कोडी सागरोपम और ज्ञानावरणीय कर्म की ३० कोडाकोडी सागरोपम बतलाई गई है। इसका मतलब यह हुआ कि एक-एक कर्म की स्थिति

असख्य काल तक रहने वाली है । लेकिन मिथ्यात्व की ७० कोडाकोडी तक की जो स्थिति है, उसमे से ६६ कोडाकोडी सागर घट कर जब एक अन्त कोडाकोडी सागर बाकी बचती है, तब जीव मिथ्वात्व से हटकर सम्यक्त्व के अभिमुख होता है। इसका मतलब यह हुआ कि मिथ्यात्व का जोर हटा तो अज्ञान हटा, बन्धनो की बेडी कटने लगी और मोक्ष नजदीक आ गया। इसलिए भगवान् ने कहा कि पहले अज्ञान हटाओ। सम्यक् ज्ञान कब आएगा ? तभी जबकि मिथ्यात्व हट जाएगा।

प्रदेशी राजा का मिथ्यात्व हटा, उसने १२ व्रत धारण किये और कर्म-बन्ध का मार्ग त्याग दिया। कैसा त्याग किया ? साधु बन गया क्या ? नही। १२ व्रतधारी श्रावक बना और उसने सोचा कि परिग्रह जो वस्तुत कर्म-बध का प्रमुख कारण है, वह सवर और निर्जर का कारण बने। उसने केशी महाराज के चरणो मे जाकर निवेदन किया— "भगवन् ! मैं राज्यकी आय को चार भागो मे विभक्त करूँगा। इन चार भागो मे से एक भाग चतुरगिणी सेना की समुचित व्यवस्था के लिये, दूसरा भाग प्रजाकी पालना के लिये कोश मे, तीसरा भाग अन्त पुर की रक्षा एव व्यवस्था के लिये और चौथा भाग एक बडी ही विशाल दानशाला की व्यवस्था के लिये रखूँगा। उस बडी दानशाला मे अनेक सवैतनिक कर्मचारियो को रखकर अशन-पान-खादिम-स्वादिम रूप चारो प्रकार का भोजन तैयार करवा श्रमणो, माहणो, भिक्षुको एव अतिथियो मे उस आहार का वितरण करवाऊँगा।"

राजा प्रदेशी की ममता परिग्रह से क्यो हटी ? सेठ की सेठाई तिजोरी मे कमी होने से मिट जायगी या राजा का राजापन मिट जायगा। सस्कृत मे एक कहावत है कि 'यत्तेज कोश-दडजम्'। राजा की शक्ति दो बातो से आँकी जाती है, एक तो उसका कोष मजबूत हो और दूसरा उसका दड मजबूत हो। दड मजबूत होने का अर्थ यह है कि उसका शस्त्रागार और सेना मजबूत हो। जिस राजा का शस्त्रागार सभी प्रकार के सामयिक एव आवश्यक शस्त्रास्त्रो से परिपूर्ण है, कोपबल सर्वथा सुदृढ एव पर्याप्तरूपेण समृद्ध है, तो वह राजा तेजस्वी कहलाता है। तो राजा का खजाना अधिक से अधिक भरा रहना चाहिए। लेकिन जब प्रदेशी को ज्ञान हो गया तो उसको खजाना भरे

रहने की या खाली रहने की चिन्ता नही रही। उसने सोचा कि खजाना भरा रहने से फायदा क्या है ? यदि प्रजा भूखी है, उसके खाने-पीने, रहने की व्यवस्था नही है, शिक्षा और चिकित्सा की व्यवस्था नही है, तो मेरे खजाने का फायदा क्या है, महत्व क्या है ? इसलिए उन्होने अपनी आमदनी का चौथाई हिस्सा दान कर दिया। चाहे खर्च मे पूरा हिस्सा लगता है या नही, उन्होने ममता घटा डाली। मोक्ष उतना ही उनके नजदीक आ गया, जितनी कि उन्होने ममता घटाई।

मोक्ष का प्रथम सोपान : ज्ञान

मोक्ष का पहला सोपान, पहली सीढी क्या है ? ज्ञान। ज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर ससार से ममता हट जायगी। धन की और कुटुम्व की ममता की बेडियो का वन्धन ढीला हो जायेगा, कम हो जाएगा। ज्ञान से धन के व्यावहारिक रूप मे भी फर्क पडता है। आप सवेरे उठकर रोज सामायिक करते है लेकिन आप मे ज्ञान नही होगा तो आराधना भी नही होगी। इसलिए मोक्ष का पहला मार्ग, प्रथम सोपान है – ज्ञान। ज्ञान मिलने पर सम्पूर्ण प्रकाश प्रगट हो गया और इससे कर्म हल्के हो जाय तो सर्व-विरति वन जाते हैं। कर्म हल्का नही हो तो १२ व्रती श्रावक और कर्म हल्का हो जाय तो व्रती वन जाते है। जैसा कि कल आपको महान् त्यागी स्थूलभद्र के वारे मे बताया गया था।

जिस तरह भोग-मार्ग की साधना करने वाले आर्य स्थूलभद्र ने अपने पिता का सकारण मरण देखा तो सोचा कि इस राज्य-महामात्य पद की लालसा के कारण मेरे पिता का प्राणान्त हुआ है। इसी पर गहन चिन्तन करते हुए नन्द के निमन्त्रण को, प्रस्ताव को ठुकरा कर, महामन्त्री पद नही लिया और क्या अगीकार कर लिया ? श्रमणत्व। उन्होने आचार्य सभूति विजय के पास जाकर दीक्षा अगीकार कर ली।

मैं भगवान् महावीर के वाद की पीढियो के वारे मे वताना चाहता हूँ। पहले नम्बर मे सुधर्मा स्वामी २० वर्ष तक भगवान् महावीर के पट्टधर रहे। उनके वाद दूसरा नम्वर आया जम्बू स्वामी का। ये ४४ वर्ष तक आचार्य पद पर रहे। इनके पश्चात् तीसरे पट्टधर आचार्य प्रभव हुए और चौथे आचार्य हुए शय्यभव। आचार्य

प्रभव जन्म से क्षत्रिय थे और शय्यभव ब्राह्मण। शय्यभव यज्ञ क्रिया करने वाले थे। उन्हे ज्ञान की किरण मिल गई तो वे आचार्य प्रभव के पास दीक्षित हुए। शय्यभव के पश्चात् प्रभु के पाँचवे पट्टधर यशोभद्र हुए। भगवान् महावीर के छट्ठे पट्टधर आर्य सभूति विजय हुए, जिनके चरणो मे आर्य स्थूल भद्र दीक्षित हुए। सम्भूति विजय वडे थे और आर्य भद्रवाहु छोटे थे, इसलिए पहले पट्टधर सम्भूति विजय हुए, फिर भद्रवाहु। स्थूलभद्र सभूति विजय के पास दीक्षित हुए और उन्होने अपना जीवन साधना मे विताया। इतिहास-परिचय अधिक न वताकर मै आगे की बात कहूँगा। स्थूलभद्र ने ३० वर्ष गृहस्थ जीवन मे बिताए, २४ वर्ष का समय उन्होने सामान्य मुनि-पद पर विताया और ४५ वर्ष तक वे युग-प्रधान पट्टधर पद पर रहे। भद्रवाहु युग-प्रधान थे तब स्थूलभद्र आचार्य पद के अधिकारी हुए। आचार्य भद्रवाहु १४ पूर्व के ज्ञाता थे और स्थूलभद्र १० पूर्व के। ससार-पक्ष भी उन्होने तेजस्विता से विताया और धर्म-पक्ष भी तेजस्विता से।

ससार मे वही आदमी प्रशसा के योग्य है, जो किसी काम को पकड कर उसे उत्साह के साथ आगे बढाता है। रोते-झीकते हुए काम करने वाले की तारीफ नही होती। आज आप धर्म का कार्य जिस उमग से करना चाहिए, उस उमग से नही करते और यह देखते है कि नही करूँगा तो महाराज नाराज होगे। व्याख्यान मे देरी से गया, सामायिक नही की, अभी तो नवर बदल गया है, थोडे दिन बदला ही रहने दो, फिर देखा जायेगा। कोई भी काम करना है तो उसे हर्षित मन से करना चाहिए या रोते-झीकते ? करना है तो झिझकते हुए क्यो करना ? झिझकते हुए करने से काम का महत्व कम हो जाता है। जवरदस्ती, लोगो के दबाव से, महाराज के दबाव से व्रत किया है, तो उसकी कीमत या चमक कम हो गयी या नही ? इसलिए वन्धुओ ! यह योग मिला है, मौका मिला है, साधना का अवसर मिला है, मुक्ति-मार्ग की वात सुनी है, तो जीवन मे उल्लास और उमग से धर्म की साधना करो। ऐसा करने से आत्मा का कल्याण निश्चित है।

स्थूलभद्र ९९ वर्ष तक जीवित रहे। उन्होने जो त्याग और साधना की, वह उमग से की। उनकी तेजस्विता और त्याग से दूसरो

पर भी प्रभाव पडा। उसी तरह यदि आप भी उमग से त्याग करेंगे तो उसका प्रभाव नही पडेगा क्या ? स्थूलभद्र के अत्यद्भुत त्यागमय जीवन को देखकर वेश्या भी श्राविका बन गयी। १२ वर्ष तक स्थूलभद्र जिस वेश्या के ससर्ग मे रहे थे, श्रमण बनने के पश्चात् उसी वेश्या के ससर्ग मे चार मास तक रहे, लेकिन उन्होने न केवल अपने मन को ही मलीन नही होने दिया अपितु वेश्या के जीवन को भी निर्मल बना दिया। तो बन्धुओ ! वह शक्ति, तेज, तप, आपमे हम मे, हर बालक एव वृद्ध मे मौजूद है। अज्ञान को दूर करिये, अपनी शक्ति, योग्यता और सामर्थ्य के अनुसार चातुर्मास का समय धर्म-आराधना मे, आत्महित मे लगाइए। इससे आपका इहलोक भी और परलोक भी सुखमय एव कल्याणमय होगा।

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति

सम्यग्ज्ञान

—•—

प्रार्थना

बन्धुओ !

सुख-विपाक-सूत्र के पहले अध्याय मे सुमुख गाथापति, जो सुबाहु के पूर्वभव का जीव है, वह किस प्रकार एक महामुनि का योग पाकर, प्राथमिक साधन रूप से मुनियो, तपस्वियो की सेवा-साधना द्वारा किस परिणति को पाता है, इस बात का वर्णन है ।

चाहे छोटी क्रिया हो अथवा बडी क्रिया, वस्तुत ज्ञान और विवेक से उस क्रिया की चमक बढती है । जिस क्रिया मे ज्ञान और विवेक का पुट नही है, वह क्रिया चमकहीन हो जाती है । तपस्वी मुनि सुदत्त और गाथापति सुमुख दोनो ज्ञान और विवेक मे आगे बढे हुए थे । जिन-शासन मे तप का महत्त्व है, पर यदि वह ज्ञानशून्य है तो उस तप का महत्त्व नहीवत् है । मैं 'वत्' शब्द का प्रयोग जानबूझ कर कर रहा हूँ क्योकि फल तो होता ही है । पर ज्ञान-विवेकविहीन क्रिया द्वारा वस्तुत जो फल हमे इष्ट है, जिस फल को हम प्राप्त करना चाहते है, वह फल उपलब्ध नही हो सकता । इसीलिये मैंने कहा 'नही वत्' ।

यदि तप के साथ ज्ञान का सयोग हो, तो उस तप की गणना भी मार्ग-चतुष्टयी मे होती है । शास्त्रकार ने पूर्व चरण मे बताया है

'नाण सुझाणं चरणस्स सोहा ।'

चारित्र की एव तप की शोभा क्या है ? उत्तम ध्यान वाला ज्ञान, चारित्र की शोभा है । इसलिये मोक्ष-मार्ग का दिग्दर्शन कराते हुए प्रभु ने मार्ग-चतुष्टयी मे पहला प्रमुख स्थान ज्ञान को दिया है । जब मार्ग-चतुष्टयी पर विचार चल रहा है, तब हम बताने का प्रयत्न

करेंगे कि कैसा ज्ञान, कैसा दर्शन, कैसा चारित्र और कैसा तप मोक्ष का साधन बनता है।

ज्ञान किसे कहे ?

अभी केवल यहाँ ज्ञान पर विचार किया जा रहा है। 'ज्ञा' धातु से जानने अर्थ मे ज्ञान शब्द की सिद्धि होती है। उसका अर्थ होता है – 'ज्ञायते हिताहित धर्माधर्म येन तद् ज्ञान' अर्थात् जिसके द्वारा हिताहित या धर्माधर्म का बोध हो, जो कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का और सत्य-असत्य का बोध कराता है, मोक्ष-मार्ग का बोध कराता है, उसको ज्ञान कहते है। इसका मतलब यह हुआ कि ज्ञान एक वह साधन है, जिसके द्वारा आत्मा अपनी शक्ति का, सत्यासत्य के बोध मे उपयोग कर सके। उस सत्यासत्य का बोध करने वाले गुण का नाम ज्ञान है। ज्ञान सम्यक् भी होता है और मिथ्या भी होता है। सक्षेप मे कहा जाय तो पदार्थो की यथार्थ अभिव्यक्ति का नाम सम्यक् ज्ञान है। ज्ञान का वर्गीकरण करके इसे तीन भागो मे बाँटा जा सकता है – अज्ञान, कुज्ञान और सम्यक् ज्ञान। जीव मे चेतना गुण है। ज्ञान के अल्पतम रूप को अज्ञान कहा है। अज्ञान का मतलब है अल्पतम ज्ञान। 'अ' का एक अर्थ निषेध, एक अर्थ अल्प और एक अर्थ विपरीत भी होता है। यहाँ अज्ञान पद मिथ्या-ज्ञान के लिए प्रयुक्त हुआ है।

मैने आपको ज्ञान के तीन विभाग बतलाये। ज्ञान की दृष्टि से हम जीवो का तीन भागो मे वर्गीकरण करते है। जैसे – अज्ञानी, कुज्ञानी और सम्यक्ज्ञानी। इनमे से अज्ञानी का मतलब अल्पतम ज्ञानी भी बतलाया गया है।

दूसरा हो गया 'कुज्ञान' इसका अर्थ है मिथ्या ज्ञान। वस्तु का जो स्वरूप है, उसको यथावत्, बराबर न समझ कर मिथ्यारूप से समझना – उसको कहते हैं कुज्ञान या मिथ्याज्ञान।

सम्यग्ज्ञान

मोक्ष-मार्ग मे जिस प्राणी को लगना है, उसके लिये सम्यक् ज्ञान का होना परमावश्यक है। अज्ञान और कुज्ञान से हटकर सम्यक् ज्ञान मे जब प्राणी का प्रवेश होगा, तब समझना चाहिये कि वह मोक्ष-मार्ग का पहला पाया या पहला चरण प्राप्त कर सका है।

सम्यक् ज्ञान के लिये कहा है –

नाणेण जाणइ भाव, दसणेण य सद्दहे ।
चरित्तेण निगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झइ ।।

उत्तराध्ययन-सूत्र के २८ वे अध्याय मे इनका क्रम इस प्रकार बतलाया है । जैसे-ज्ञान से प्राणी वस्तु के भले-बुरे स्वभाव को जान पाता है । ज्ञान का काम जानना है । फिर दर्शन का परिणाम निश्चय होना है, जिसके लिये ठाणाग सूत्र मे कहा हे –

'विज्जा निच्छयसारा' – अर्थात् विद्या निश्चय सारवाली है । विद्या का सार निश्चय है । जेमी विद्या होती है, वैसा ही निश्चय होता है । विद्या यदि सम्यक् न होकर अविद्या की ओर ले जाने वाली है, तो क्या भाव उत्पन्न करेगी ? उत्तराध्ययन-सूत्र के चौथे अध्याय मे कहा गया है –

"जे सखया तुच्छ-परप्पवाई, ते पिज्जदोसाणुगया परज्झा ।"

जो लोग भाषा-ज्ञान से सस्कारित होकर दूसरो को तुच्छ समझते है, वे लोग राग, द्वेष मे उलझे होने के कारण भव-बन्धन को नही काट सकते । इसका मतलब यह हो गया कि हम जिस मार्ग की जानकारी कर रहे है, वह ज्ञान दूसरा है और आपका लौकिक ज्ञान दूसरा है । वर्ण-ज्ञान, भाषा-ज्ञान, कला-ज्ञान, लेखन-ज्ञान, पदार्थ-ज्ञान, रसायन-ज्ञान इत्यादि भिन्न-भिन्न ज्ञान है । ये मानव को पदार्थ का बोध कराने मे सहायक सिद्ध होते है, लेकिन जब तक सम्यक् ज्ञान नही हो जाता, तब तक ये सभी लौकिक ज्ञान भव-बन्धन को काटने मे सहायक नही होते । तो हमारा जो मोक्ष-मार्ग है, उसको जिस ज्ञान की आवश्यकता है और जिस ज्ञान की प्रेरणा की गई है, वह क्या है ?

एक बार जो सम्यक् ज्ञान मिलावे ।
भव फेरा का अत निकट वह पावे ।।
मुहूर्त भर जो सद्दर्शन मे रहता ।
आधा पुद्गल परावर्तन कर तिरता ।।
निज दर्शन से लघुता उसमे आई ।
मोक्षार्थी जन सुनो एक चित्त लाई ।।

ऐसा ज्ञान जिससे भव-वन्धन की वेडी काटने का इल्म आवे, वह ज्ञान किसी पुस्तक से, किसी कॉलेज से, किसी विश्वविद्यालय से प्राप्त होने वाला ज्ञान नही है। हो सकता है वहा उस ज्ञान के भी कुछ वाह्य निमित्त हो, हमे इसे अस्वीकार नही करना है। लेकिन वे वाह्य निमित्त भिन्न-भिन्न प्रकार के है और उनकी वाह्य वृत्ति भी सम्यक् ज्ञान को जागृत करने वाली हो सकती है। पर उस स्थिति मे आत्यतिकी अनिवार्य आवश्यकता इस वात की है कि साधक को स्वय के अन्दर का प्रकाश प्राप्त होना चाहिये। मुख्यत इस ज्ञान के लिये अन्तर की परिणति की परम आवश्यकता है।

जैसा कि कल कहा गया, मिथ्यात्व का भाव हट गया और सम्यक्-भाव का जागरण हो गया, तो सम्यक्-भाव का जागरण और ज्ञानवारणीय कर्मों का क्षयोपशम, यही वस्तुत अन्तर की परिणति है। इसका पहला कारण है मिथ्यात्व का क्षय-उपशम। दूसरा कारण है ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम, क्योकि सम्यक्त्व-पूर्वक ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम ही सम्यक् ज्ञान का उत्पादक-कारण है, जनक है।

ज्ञान की उपलब्धि तीन प्रकार से

तीन प्रकार से ज्ञान की उपलब्धि होती है। मिथ्यात्व के क्षय, क्षयोपशम, और उपशम का होना जितना सम्यग्ज्ञान की उपलब्धि अथवा उत्पत्ति के लिये अनिवार्य रूपेण आवश्यक है, उतना ही ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय का क्षयोपशम भी परमावश्यक है। मिथ्यात्व का क्षय, क्षयोपशम, उपशम और फिर ज्ञानावरणीय तथा दर्शनावरणीय का क्षयोपशम ये तीन चीजे होने पर आत्मा मे ज्ञान का प्रकाश होगा। इसीलिये कहा है कि एक वार भी सम्यक्त्व तथा सत्य ज्ञान का भाव यदि किसी आत्मा मे आ जावे तो उस आत्मा का उद्धार होते देर नही लगेगी।

आज हम ससार मे विषय का आकर्षण देखते है। कभी मेलो का दिन हो तो लोग तैयारी करके, नये कपडे पहन, हमझोलियो के साथ, प्रियजनो के साथ टोलिया वना कर घूमने निकल जाते हैं। दो-चार घटे का लम्वा टाइम लग जावे और उतने समय तक व्यापार छोडना

पडे तो भी सकोच नही करेंगे। इसी प्रकार की उमग, इसी प्रकार का आकर्षण यदि साधना-मार्ग के प्रति उत्पन्न हो तो क्या साधना मे जाने के लिये भी मेले मे जाने जैसी ही उमग नही होगी ? अवश्य होगी। कल मेले मे कितनी भीड थी ? देखकर खयाल आया कि गाव के लोग घर छोड कर, धन्धा छोड कर, खेती छोड कर, जयपुर चले आये। कितने आदमी मेले मे होगे, अन्दाज नही। उनके लिए कोई सोने की जगह नही थी, उठने-बैठने की जगह नही थी। सडको पर, पटरियो पर बैठना, वही खाना, वही सोना, वही बच्चो को टट्टी आदि कराना। खर्चा भी २५-५० का हुआ ही होगा, गाँठ खाली करके गये होगे लेकिन फिर भी मेले मे हजारो लोग आये, चलने का रास्ता मुश्किल से मिला। हमारे मन मे खयाल आया कि उनको क्या आकर्षण था जो आये। एक ओर तो मँहगाई का जमाना, कमर-तोड मँहगाई और दूसरी ओर गरीब से गरीब व्यक्ति, अडोस-पडोस के गाँवो मे शायद ही बचा हो, जो नही आया हो। यहा आकर उन्होने क्या लाभ पाया ? उनके मन मे कुछ लाभ हुआ होगा, किसे उन्होने लाभ समझा होगा ? कितनी भ्रान्ति हुई होगी उन्हे अलाभ को लाभ समझने मे ? उनको कुछ तो उत्तेजक शब्दो मे ग्रामीणो के गाने, रेडियो के गाने सुनने को मिले होगे, चित्रपट देखा होगा ? खास तरह के शब्दो का आनन्द, स्पर्शेन्द्रिय, चक्षु-इन्द्रिय का आकर्षण होगा, इसलिये सभी लोग दौड आये मेले मे। यदि उनको ज्ञान हो जाता कि इस प्रकार के मेलो मे जाना धर्म की हानि करने वाला है, तो शायद वे इतनी तादाद मे नही आते। लेकिन जब तक यह ज्ञान नही हो पाता और जब तक ज्ञान का प्रकाश उन्हे अन्त करण मे नही मिलता तब तक उनके दिमाग मे ज्ञान की बात नही जमती। जब तक दिमाग मे ज्ञान की बात नही जमती, तब तक मानव अपनी शक्ति को ऐसे ही बेकार गँवाने को तैयार रहता है। बेचारे किसान इससे अनजान है तो उन आदिवासियो की तो बात ही क्या है। आप नगरवासियो को गुरुओ की वाणी सुनने का सयोग मिलता है लेकिन आपके मन मे भी इस प्रकार की चीज नही जचे तो ? इसका मूल कारण सम्यग्ज्ञान की उपलब्धि न होना ही है। सम्यग्ज्ञान के अभाव के कारण मानव-मन मे अनेक प्रकार की बुराइयाँ घर करती हैं।

बच्चो के चरित्र-निर्माण मे उपेक्षा नही बरतें

कल शिकायत पहुँची थी कि तरुण बच्चे ताश खेलते हैं और पत्तियो पर कुछ पैसे भी लगाते है। किसके बच्चे ? श्रावको के घर के बच्चे, जिनको स्वाध्याय करने के लिये १५-२० मिनट का भी समय नही मिलता, वे बच्चे ताश खेलते है। मैं विचार मे पड गया यह बात सुनकर। जिनके माँ-बाप गर्व करते है कि हम आपके पीढियो के श्रावक है, उनके घर के बच्चो की यह कमजोर स्थिति है तो अडोस-पडोस वाले इतना खयाल क्यो करेंगे ? समाज के कर्णधार खयाल नही करें, घर के अभिभावक खयाल नही करेंगे तो आगे चलकर उनकी क्या स्थिति होगी ? समय रहते जो आदमी समझ जाता है, उसके हाथ मे बाजी रहती है, और समय निकलने के बाद जो सम्हलता है, वह सिवा पश्चात्ताप के और कुछ नही कर सकता। जो मा-बाप बच्चो के शरीर की चिन्ता करते है किन्तु आत्मा की चिन्ता नही करते, उनके जीवन-सुधार की चिन्ता नही करते, मैं कहूँगा कि वे सच्चे मा-बाप कहलाने के हकदार नही है। वे पिंड की निर्मलता की ओर तो ध्यान देते हैं पर उस पिण्ड मे विराजित आत्मदेव की निर्मलता की ओर ध्यान नही देते। यदि माँ-बाप को अपना फर्ज अदा करना है तो उन्हे अपने बालक-बालिकाओ के चारित्र-निर्माण की ओर पूरा ध्यान देना चाहिये। यदि बच्चो पर कुसगति का असर पडा देखते हैं तो उन पर काम का ज्यादा भार डालना पडेगा। जब तक बालक अपरिपक्व दिमाग का है, तब तक उसे जैसा समझाओगे वैसे ही समझ जायगा। लेकिन कई मा-बाप तो लाड-प्यार के कारण बच्चो को कुछ नही कहते, वे जैसा करना चाहे, वैसा करने देते है और जब-जब जितने रुपये चाहिये, २५-५० तुरन्त दे देते है।

मुझे एक सेठजी का नमूना याद है किशनगढ का। बच्चो के सम्बन्ध मे वे कहने लगे—"महाराज ! ये बच्चे क्या मौज-शौक करेंगे ? मै तो इनके जितना था तब खूब मौज करता था।" ऐसे माई के लाल भी हैं। बच्चो के जीवन के बनने-बिगडने सम्बन्धी फिक्र करने वाले कितने लोग है ? यहा बैठे हुए लोगो मे से ५-१० भी नही मिलेगे। फिर हमारा इतना लम्बा भाषण सुनाना, समझाना और आपका सुनना क्या मतलब रखता है ? बात समझ मे नही

आई। बात यह है कि पहले आपने इस सम्बन्ध मे कुछ नही सोचा और समय निकल गया। जो समय निकल गया, उसे तो जाने दीजिए अब वर्तमान को ही सम्हालिये। जितने दिन उपेक्षा मे गुजर गये, वे तो गुजर गये, अब वर्तमान को सम्हालने के लिए हर माता-पिता यह देखे कि वच्चे-वच्चियो के जीवन मे विकृति कहाँ आ रही है। यह सब अच्छी तरह देखने के पश्चात् फिर उनको समझाने का प्रयास किया जाय। समझाने-बुझाने के बाद उन्हे अपने विचार प्रकट करने का मौका दीजिये। जब उनकी समझ मे यह बात आ जायगी कि अमुक चीज से उनको नुकसान है और अमुक चीज से फायदा है तो वे स्वत ही सीधी राह पर आ जायेगे। यह चीज उनके दिमाग मे जमा दीजिये कि जो कुछ वह कर रहे है, उससे, धन, जीवन और समय की हानि हो रही है, तभी वह उसको छोडने के लिये तैयार होगे।

मद्रास के कुछ लडके अपने धन्धे से इधर आये तो उनसे मैंने पूछा कि सिनेमा कितने देखते हो ? हमारी कुछ आदत है लोगो से उनके दैनिक जीवन की बाते पूछने की। उन्होने कहा कि मद्रास मे तो धन्धे के कारण दो चार महीनो मे देखते हैं। किन्तु बम्बई वगैरह शहरो मे जावे तो ज्यादा बार भी देख लेते हैं। यहा पर वे सिनेमा क्यो नहीं देख पाते ? क्योकि उनको धन्धे मे दिलचस्पी हो गई है, इसलिये यदि वे सिनेमा जावे तो धन्धे मे समय का नुकसान हो जाय, इस बात को उन्होने दिमाग से जान लिया है। ऐसे ही यदि अपनी अभिरुचि आध्यात्मिक ज्ञान के रस को प्राप्त करने मे लगा दे, तो जो जीवन कई मोडो मे स्वच्छन्दता से बह रहा है, उसकी गति सीधी, सरल, सुन्दर, सरस और सुखद हो जायेगी। जब ज्ञान हो जायगा तो विषय-कषाय का रग भी फीका पड जायगा। मोह, माया की तीव्र भावना मद होगी तो ज्ञान का प्रकाश स्थिर रह सकेगा और उत्तरोत्तर बढता रहेगा। इसलिये कहा गया कि जिसे एक बार भी सत्य ज्ञान मिल जायगा तो उसको यह अचिन्त्य अनुपम लाभ होगा कि वह कर्मो की बेडियो से एक न एक दिन अवश्यमेव मुक्त हो जायेगा।

जब सम्यक् ज्ञान आयेगा तो उसका दर्शन भी सम्यक् होगा ही। यदि अन्तर्मुहूर्त भर भी सम्यक् दर्शन का स्पर्श हो जाय तो निश्चित ही प्राणी मोक्ष-मार्ग का अधिकारी हो जाता है। इतना महत्त्वशाली

सम्यग्ज्ञान है। उसका एक जन्म मे भी लाभ है और भव-भव मे भी लाभ है। तब फिर आपको धन के लिए ज्यादा दौड-धूप करनी चाहिये या सम्यग्ज्ञान के लिये ज्यादा दौड-धूप करनी चाहिये ? बच्चो को कौनसा ज्ञान देना चाहिये, ताकि वह जीवन भर काम आवे ? सम्यक्ज्ञान। समझ मे तो बात आई, लेकिन पकड मे कितनी आई, यह आप खुल कर बता देगे तब जानेगे। व्यक्तिगत रूप से तो एक दो नम्बर बता देगे पर इतनी बडी मण्डली मे एक-आध को थोडा प्रकाश मिल जाना, मन को सतोष नही देता।

औरो के लिए शुभ निमित्त बनें

यो तो वास्तव मे अपनी आत्मा को तिराना अथवा डुबाना प्रत्येक व्यक्ति के अपने स्वय के अधीन है फिर भी कुछ निमित्त होता है। मैं नही मानता कि आपके तिराने मे मेरा हाथ है। मैं यह भी नही मानता कि आपने मेरी बात जीवन मे नही उतारी और आपका रास्ता गलत रहा तो मेरा कोई अहित होगा या मैं डूब जाऊँगा। यदि आप दो-चार महीने मेरे प्रयास करने पर भी, समझाने पर भी केवल गर्दन हिलाकर रह जायेगे, मेरे कथन को क्रिया मे न ढालेगे, तब भी मैं क्यो कहता रहूँगा ? यह जानते हुए भी कि मै आपको तिराने वाला नही और आपके ग्रहण करने न करने से मुझे कोई हानि या लाभ नही होने वाला है फिर भी यह समझाने का, कहने का प्रयास चल रहा है। एक-आध बात आपके कर्णरन्ध्रो मे पहुँचाई जा रही है, यह निमित्त के बतौर है। कभी-कभी निमित्त भी काम कर जाता है और कैसा काम कर जाता है, इसके अनेक उदाहरण जैन वाङ्मय मे विद्यमान है।

आर्य स्थूलभद्र की बात आपके सामने है। उन्होने अपना जीवन विकसित किया था। भोग के मार्ग मे वे निमित्त से फसे। किन्तु भोग से योग का बाना लिया तो वह भी निमित्त से ही। आपके और हमारे जीवन मे जो थोडी बहुत अच्छाई आयी है, वह भी बिना निमित्त के नही आई है। यदि आपके लिये कोई सतो का निमित्त नही बना होता या पूर्वजो का निमित्त नही होता, घर मे अच्छा वातावरण नही होता, सत्सग नही मिलता तो जो थोडी-बहुत अच्छाई आई है, वह आती क्या ? आपने निमित्त का फायदा उठाया तो क्या

आपके निमित्त का फायदा दूसरो को नही मिलना चाहिये ? यदि आप अपने निमित्त का फायदा दूसरो को नही देगे तो मैं यह कहूँगा कि आप कर्जदार रह जायेगे, अपने पूर्वजो के, मन के, दुनियादारी के और घर के। इसलिये यदि अच्छा निमित्त बने तो मर्जी आपकी वरना बुरा निमित्त तो कम से कम मत बनिये। हर माँ, बाप, स्त्री, भाई, भतीजे आदि का कुछ न कुछ निमित्त होता है। माता-पिता की कमजोरी से बच्चो मे गलत परिणति आ जाती है। तो गलत निमित्त बनना अच्छा या शुभ निमित्त ? शुभ निमित्त बनने के लिये जो अवसर मिले है, उनका पूरा उपयोग होना चाहिये।

जिस तरह स्वय आचार्य स्थूलभद्र अपने जीवन मे शुभ निमित्त के योग से जीवन का उद्धार कर सके, वैसे ही वे स्वय भी दूसरो के लिये निमित्त रूप बने और अनेकानेक प्राणियो को कुमार्ग से सुमार्ग पर लाये। इसमे एक उदाहरण है आर्य महागिरी का। भगवान् महावीर के पश्चात् पट्टधर आचार्यो की परम्परा मे स्थूलभद्र के बाद पहला नम्बर आता है महागिरी का।

सयोग से महागिरि के माता-पिता, ऐसा अनुमान किया जाता है कि गरीब कुल के थे। हो सकता है महागिरि की बाल्यावस्था मे ही उनके माँ-बाप का देहात हो गया हो। सयोग से शुभ सस्कार वाले बालक पर घूमते-घूमते आर्या यक्षा की निगाह पडी। आर्या यक्षा स्थूलभद्र की बहिन साध्वी थी, प्रतिभाशालिनि थी। वह श्रुत-ज्ञान और सूझ-बूझ मे अग्रगण्या थी। बालक महागिरी को देखकर आर्या यक्षा को अनुमान हुआ कि इस बालक का भविष्य उत्तम, सुन्दर और कल्याणकारी हो सकता है। कवि ने कहा है —

श्रमणी यक्षा ने गिरि को ज्ञान सिखाया।
उपासिका ने भी मन प्रीति बढाया।।
स्थूल भद्र का शिष्य मुख्य कहलाया।
दस पूर्वी जिन-कल्प मार्ग मन लाया।।
ज्ञान चरण से दीपे शासन भारी।। २।।
लेकर शरण तिरे अनन्त नर नारी।
यह जिन शासन की कैसी महिमा भारी।।

आर्या यक्षा जो प्रबुद्धा एव प्रतिभाशालिनी सती थी, महागिरि जैसे बालक को देखकर उनके मन मे विचार आया कि इसे उदीयमान बाल-सूर्य को समीचीनतया धार्मिक-शिक्षण देकर तैयार करना चाहिए। किसी को देखने एव परखने के लिये दो प्रकार की दृष्टियाँ बताई गई है। एक तो व्यवहार-दृष्टि और दूसरी निश्चय-दृष्टि। निश्चय-दृष्टि से देखने पर किसी को किसी के लिए चिन्ता करने की आवश्यकता नही है। निश्चय-दृष्टि से देखने पर समाज का क्या होगा, मण्डल का क्या होगा, या शिष्यो का भविष्य क्या होगा, यह सव सोचने की आवश्यकता निश्चय-दृष्टि वाले को नही होती। लेकिन जिस कार्य के लिए आप अपने जीवन मे एक-एक कदम आगे का खयाल करके जीवन की गतिविधि करते हैं तो उस दशा मे आप व्यवहार मार्ग के पथिक है। आप व्यवहार मार्ग के पथिक होना चाहते है या निश्चय मार्ग के? किसी ने आपके बालक के लिये कह दिया कि ६ वर्ष के वाद उसे मारकेश की दशा आने वाली है। किसी ज्योतिषी ने ऐसा कह दिया, तो क्या आप मे से किसी भी पिता को अपने बालक के भविष्य की चिन्ता नही होगी? क्या उसे बचाने के लिये आप जमीन-आसमान एक नही कर देगे? जब से आपको यह वात मालूम होगी, तभी से आप उसको बचाने का कार्य प्रारम्भ कर देगे। अभी तो बच्चा एक साल का है, सकट-काल के आने मे अभी पाँच साल अवशिष्ट है। फिर भी आप उसी समय से यह प्रयास करेगे कि उस बालक को भावी सकट से वचाया जाय। उस बालक की यदि जल से मौत बताई गई है तो अपने बगले के हौज तक उस बालक को नही जाने देगे। वगले मे हौज के रहने से वगले की सुन्दरता बढती है और जल की आवश्यकता भी पूरी होती है। लेकिन आपको यह खयाल हो गया है कि जल से वच्चे का मरण वताया है तो क्या आप वच्चे को हौज तक खेलने जाने देगे? नही। क्या कारण है? वडा भाई विश्व-विद्यालय मे तैरने जा रहा है और छोटे भाई को साथ ले जाना चाहता है लेकिन आपने उसे कह दिया खवरदार! इसे साथ न ले जाना। यह क्या कर रहे हैं? जरा सोचो भाई! यदि उसके जीवन का अन्त इसी तरह से होना है तो क्या आप उसे टाल सकोगे? नही टाल सकोगे। फिर भी प्रयत्न करना नही छोडोगे।

इसी प्रकार दुनियाँ भर के व्यवहार वच्चो के लिये किये जाते

है। उनकी सुख-सुविधा बढाने के लिये, शिक्षा के लिये, धन्धे मे लगाने के लिये हजारो तरह के प्रयास करते है, व्यवहार करते है। लेकिन उनके आत्म-सुधार के लिये क्या कभी आपने प्रयास किया है या करते है ? नही करते। बहुत से लोग तो हमे कहते है "बापजी! हम क्या करे, उसके आत्मकल्याण का जोग होगा तो अपने आप रास्ते पर आ जाएगा, नहीं तो हमारे कहने से क्या होता है।" कई श्रद्धालु भाई कहते है, आपकी कृपा से आ जायेंगे रास्ते पर। ये लोग हमारे मत्थे पर वजन रखना चाहते है, कितने भोले-भाले है ? हम यदि उनसे कहे कि भाई! हमारी कृपा पर इतना भरोसा है तो साल भर तक बम्बई, कलकत्ता या विलायत धन्धे के लिए जाना छोड दो, तो कहेगे – "बापजी! यह कैसे होगा ?" आप अपने कुटुम्ब या परिवार के सदस्यो की धार्मिक प्रवृत्ति जगाने के लिये तैयार नही है। इसका परिणाम है कि आपका मोह बढा है और अनुराग घटा है। जैन घरो के माता-पिता मे अपने परिवार के सदस्यो के प्रति मोह कम होना चाहिये, अनुराग अधिक होना चाहिये। साधु-साध्वियो के प्रति भी अनुराग होना चाहिये। हम आपके मोह-त्याग के पक्ष में है। लेकिन आप प्रात काल उठते ही अपने बच्चो के लिये यह तो चिन्ता करते हैं कि उन्होने नाश्ता किया या नही। उनसे यह नही पूछते कि उन्होने नमस्कार-मत्र का स्मरण किया या नही, सामायिक की या नही। उनके जीवन मे शुभ सस्कार बढाने चाहिये, इसके लिए आपने क्या किया ? यदि यह खयाल नही है तो यही कहा जायगा कि आपका बच्चो पर मोह है, अनुराग नही।

मै यह कह रहा था कि साध्वी यक्षा ने बालक महागिरि को देखा तो उसने सोचा "अयोग्य पुरुषो नास्ति, योजकस्तत्र दुर्लभ।" कुछ लोग कहते है कि अभी के लडके धार्मिक भावना वाले नही है। लेकिन क्या यह सही है ? यदि यह बात सही है कि आज के लडके धार्मिक भावना वाले, सेवा भावना वाले नही है तो क्या १० वर्ष बाद समाज का नेतृत्व करने के लिये कोई आसमान से आयेगे, क्या परम्परा खत्म हो जायेगी ? इस प्रकार की भयावह सभावना को दृष्टिगत रखते हुए सदा सजग रहकर समुचित उपाय करने होगे। हमे स्थान भी खाली नही रखना है और परम्परा भी चलानी है। अत आज

जो मौजूदा है, उन वालको मे, तरुणो मे थोडा सा प्रकाश करने की ओर खयाल दौडाया जाय, प्रयास किया जाय तो काम हो सकता है।

सतो यक्षा ने महागिरि के बारे मे सोचा कि इस वालक मे ससार का मोह-बधन नही है, लेकिन इसकी आत्मा पर ज्ञान की किरण दिखाने वाला कोई चाहिये। कोमल मन हो उस वक्त तैयारी ठीक हो सकती है। तैयार करने के लिये कोशिश की जाय। इसके लिये समय देखना चाहिये। यदि वचपन बीत चुका है, लडका परिपक्वावस्था मे पदार्पण कर चुका है तो प्राय॰ जितनी अपेक्षित है, उतनी सफलता नही मिलेगी। अपरिपक्वावस्था का वालक हो और सुयोग्य व्यक्ति उसे शिक्षा देने वाला हो, तो वह यथेप्सित रूप मे तैयार किया जा सकता है। परिपक्व को रास्ते पर लाने का तरीका दूसरा है और अपरिपक्व को लाने को दूसरा।

पुराने जमाने मे वाल-वच्चो की परीक्षा के लिये चिन्तन करते थे। अव तो एक ही चिन्तन है पैसा कैसे कमाना आवे। लखपति से करोडपति कैसे वने, अच्छा जौहरी कैसे वने, यही एक फिक्र है और कोई न तो फिक्र है न श्रद्धा ही। महागिरि के लिये सती यक्षा का यह लक्ष्य हो गया कि योग्य पात्र है और योग्य घटक मिल जाय तो कामयावी हासिल हो सकती है। लेकिन साधु-जीवन की कुछ मर्यादाए है। "इस बालक को रखे कहाँ, इसका भरण-पोषण कौन, कैसे करे, इसका सरक्षण कौन करे? इसको ज्ञान देने मे और शिक्षण देने मे पर्याप्त समय लगेगा" — यक्षा की इस चिन्ता को एक विवेकशील श्राविका ने समझा। श्राविका ने सोचा — "गुरुणीजी इस वालक को योग्य देखकर तैयार करना चाहती है तो मैं इस धर्म-दलाली का लाभ क्यो नही लू, इसका भरण-पोषण क्यो न करू। ससार मे आरम्भ, मोह तथा परिग्रह वढाने के लिये कोई सेवा करता है तो यह लोभ का काम है। धर्म के कारण सेवा का मौका मिल रहा है, इसका लाभ ले तो यह आत्म-तोष का प्रसग है।" उस श्राविका ने कहा — "गुरुणी जी! यह वालक आपको ज्ञानवान् एव सस्कारशील होने योग्य पात्र लग रहा है, तो वडी खुशी से इसे सस्कार प्रदान किये जायँ। इसके भरण-पोषण और रक्षा के लिये कुछ भी सोचने की आवश्यकता

नही है। आप अपनी मर्यादा के अनुकूल काम कीजिये। मै मेरी मर्यादा के अनुरूप काम करूँगी।

पुराने जमाने मे ऐसे विवेकशील श्रावक होते थे। यदि साधुओ के पास एक दो वैरागी होते तो साधु-साध्वियो को मर्यादा के बाहर निकलने की आवश्यकता नही होती थी। आज लाखो करोडो की सम्पत्ति वाले श्रावक मिलेगे, भक्त मिलेगे, लेकिन इस प्रकार का विवेक दुर्लभ है। पुराने चारित्रात्मा धीरे-धीरे कम हो रहे है। नये चारित्रात्माओ का जीवन कई तरह की बाधाओ से युक्त है। उनको इस प्रकार के विवेकी श्रावको का सहयोग मिले तो आगे बढने का मौका मिल सकता है।

महागिरि बालपन से यक्षा की निश्रा मे ज्ञान प्राप्त करने, शिक्षा प्राप्त करने मे लीन हुए। उनमे त्याग-भावना जागृत हुई और वह उत्तरोत्तर बढती ही गई। फलस्वरूप आचार्य स्थूलभद्र के पास पहुँचकर उन्होने श्रमण दीक्षा ग्रहण की। जिस वक्त महागिरि ने चारित्र ग्रहण किया, उस वक्त श्रमण-सघ मे हजारो साधु थे। कितने ही चारित्रशील महान् आत्मा थे। आचार्य स्थूलभद्र के जीवन की सान्ध्य-वेला सन्निकट आ रही थी। उन्होने देखा कि वर्षो से पूर्व-ज्ञान के लिए जो चिन्ता थी कि यदि योग्य पात्र नही मिला तो यह महान् ज्ञान विलुप्त हो जायगा, सयोग से यह महागिरी योग्य पात्र मिल गया है, जो दश पूर्वो के ज्ञान को पाने का अधिकारी है। स्थूलभद्र बडे प्रसन्न हुए, वे महागिरि जैसे योग्य शिष्य को पूर्वो का ज्ञान सिखाकर श्रुत-रक्षण मे निमित्त बने और महागिरि को आचार्य पद पर आसीन कर स्वय शासन-सेवा के दायित्व से मुक्त हुए। इस प्रकार आर्या यक्षा और आचार्य स्थूलभद्र ने शासन-सेवा मे निमित्त बन कर अपना नाम अमर कर लिया। सब की जानी हुई बात है कि जो साधन आज जिस स्थिति मे है, कल इस स्थिति मे रहेगे या नही, कह नही सकते। बुद्धिमानी इसी मे है कि समय रहते प्राप्त साधनो का अच्छे निमित्त रूप मे उपयोग कर कुछ लाभ प्राप्त कर ले, तो हमे भी स्थायी शान्ति मिल सकेगी।

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति

सम्यग्ज्ञान – २

प्रार्थना

वन्धुओ !

चारित्र-आत्मा सुदत्त मुनि भिक्षा-वेला मे भिक्षा की गवेषणा करते हुए सुमुख गाथापति के यहाँ पधारे। सुमुख ने पहले-पहल यह अपूर्व लाभ का अवसर पाया था। उसके मानस मे असीम उल्लास और परम प्रमोद की धारा वह चली। कभी-कभी मुनियो के सौम्य जीवन और त्यागमय चर्या का चिन्तन करके भी व्यक्ति ज्ञान की प्राप्ति कर लेता है।

ज्ञान-प्राप्ति के दो मार्ग

ज्ञान-प्राप्ति के दो मार्ग वताये हैं – एक तो सुनकर और दूसरा अनुभव जगाकर। इसे दूसरे शब्दो मे – "तन्निसर्गादधिगमाद्वा" इस रूप मे निसर्ग एव उपदेश के नाम से भी अभिहित किया गया है। जिसके भीतर की ज्ञान-चेतना जागृत हो गई, वह आत्मा विना सुने, विना पढे भी ज्ञान का प्रकाश प्राप्त करती है, जैसे नमिराज की ज्ञान-चेतना चूडियो की झन्कार को सुनकर जागृत हो गई। मृगापुत्र ने मुनियो को देखकर ज्ञान प्राप्त कर लिया। ऐसे अनेको उदाहरण शास्त्र व साहित्य मे उपलब्ध होते हैं। ऐसा भी उदाहरण उपलब्ध होता है कि चोर को वध-स्थल पर ले जाते देखा और समुद्रपाल को ज्ञान उत्पन्न हो गया। यद्यपि चोर ज्ञान-प्राप्ति का निमित्त नही है, लेकिन उसे सोचने वालो ने अपनी ज्ञान-चेतना को जागृत करने का साधन वनाया। इसका तात्पर्य यह हुआ कि ज्ञान अपने अनुभव से भी प्राप्त किया जा सकता है और सत-समागम एव उपदेश से भी मिलाया जाता है। आज सर्वसाधारण के लिए सत-समागम का साधन सुलभ है। अधिकाश लोगो को अधिकाश ज्ञान सत्सग के साधन से

ही उपलब्ध होता है। लेकिन अनुभव जगाकर अपने ज्ञान-बल से भी बहुत से व्यक्ति वस्तुतत्त्व का बोध प्राप्त कर सकते हैं। पर इस प्रकार बोध प्राप्त करने के अधिकारी कोई विशिष्ट व्यक्ति ही होते है। इधर उपादान ने निसर्ग से ज्ञान उत्पन्न होने की स्थिति मे सिद्धि की ओर जोर लगाया तो निमित्त गौण रहा, उपादान प्रधान रहा और दूसरी ओर अधिगमादि निमित्त के माध्यम से ज्ञान उत्पन्न होने की दशा मे निमित्त प्रधान रहता है और उपादान गौण। प्रत्येक कार्य की निष्पत्ति मे उपादान और निमित्त ये दोनो ही कारण चलते है। यह नही समझिये कि कभी किसी कार्य मे एक कारण से ही कार्य-सिद्धि हुई है। ऐसा न कभी हुआ है और न कभी होता है। जिस तरह मन्थन करने वाला मथेरणा दधि से मक्खन निकालता है, तब मन्थन-क्रिया करते समय क्रमश एक हाथ पीछे रहता है तो दूसरा हाथ आगे। दोनो हाथो से क्रिया चलती है लेकिन एक हाथ आगे और दूसरा हाथ पीछे चलता है। इसी तरह ज्ञान-प्राप्ति मे कभी निमित्त आगे और उपादान पीछे रहता है तो कभी उपादान आगे और निमित्त पीछे रहता है। हमारे यहा जिनशासन मे अनेकान्त दृष्टि-कोण है। इनमे व्यवहार और निश्चय मुख्य हैं। कभी व्यवहार आगे रहता है तो निश्चय पीछे और कभी निश्चय आगे तो व्यवहार पीछे रहता है। गौण एव प्रधानता से दोनो को लेकर चलना है।

भगवान् महावीर ने मोक्ष-मार्ग के एक दूसरे से भिन्न साधनो को एक जोड मे लाकर मार्ग-चतुष्टयी, अर्थात् ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप को मोक्ष का मार्ग बताया है। अब यदि इन चारो को हम सक्षेप मे कहे तो दो मे कह सकते हैं। ज्ञान और क्रिया। चारित्र और तप क्रिया मे तथा ज्ञान और दर्शन वस्तुत ज्ञान मे आ जाते है। इस ढग से यदि चार को सक्षेप मे किया तो दो हो गये। अब इन दोनो को भिन्न-भिन्न जानना है। जानना और आचरण करना, इनमे ज्ञान और क्रिया दोनो मुख्य है। यदि एक को ही पकड कर कार्य-सिद्धि चाहे तो वह सभव नही हो सकती। अत प्रसग से यह कहा गया कि कार्य मे उपादान और निमित्त दोनो कारण आवश्यक हैं।

कभी-कभी ऐसा भी देखने को मिलेगा कि एक व्यक्ति मे बिना दूसरे के प्रबोध के भक्ति जग गई और उसने स्वय चिन्तन करते-करते

केवलज्ञान भी प्राप्त कर लिया। इस उदाहरण को देख कर साधारण व्यक्ति इस खयाल पर पहुँचता है कि उसने बिना निमित्त के सिद्धि मिला ली। यदि निमित्त अत्यावश्यक होता तो उसको जो केवल स्वय चिन्तन करने से ही केवलज्ञान प्राप्त हो गया, वह नही होता। निमित्त को जो प्रधानता देने वाले है, वे यह भी सोचेगे कि ऐसी कौन महान् आत्मा है, जिसको बिना गुरु के ज्ञान हुआ है? जिस प्रकार बिना गुरु के ज्ञान नही होता उसी प्रकार बिना सुने पढे भी ज्ञान प्राप्त नही होता। इसलिए निमित्त ही सव कुछ है, यह समझ लिया जाय तव क्या होगा? और उपादान ही सव कुछ है, निमित्त कुछ भी नही यह समझ लिया तो क्या होगा?

मैं बता रहा था कि मोक्ष का पहला उपाय ज्ञान वताया गया है। ज्ञान दो प्रकार से प्राप्त होता है। एक तो निसर्ग से और दूसरा सगत से। साधारणत दूसरा मार्ग सरल है। शास्त्रकार ने चारो को जोडकर मोक्ष का रास्ता वता दिया। लेकिन जब तक उनकी पहिचान न हो तब तक आदमी चले कैसे? इसलिये एक-एक की पहचान करते है। ज्ञान क्या है, कैसा है? दर्शन किसको कहते है? उसके कितने भेद है? इसी तरह चारित्र किसे कहते हैं? इत्यादि। इसलिये एक-एक रूप पर विचार करने हेतु मूल शास्त्र मे आगे कहा है, पहले ज्ञान पर बात करें –

तत्थ पचविह नाण, सुय आभिणिबोहिय।

ज्ञान पाँच प्रकार का है। ज्ञान का अर्थ और परिभाषा आपको वता दी गयी है। जिस तत्व के द्वारा धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य जाना जाय, उसको ज्ञान कहते हैं। ज्ञान आत्मा का गुण है। वास्तव मे है ज्ञान एक फिर भी पाच प्रकार का वताया गया है, यह क्या वात है? उदाहरण के लिये यह लाल भवन एक मकान है। यदि इसकी दीवारो को और एक-एक कमरे को अलग कर दिया जाय तो क्या हो? इतने वडे हाल को क्या कहते है? एक हाल कहेगे या दो हाल। आज से दो तीन साल पहले जव यह हिस्सा पार्टीशन द्वारा अलग था और वीच मे चौक था तव क्या कहा करते थे। 'महाराज माहिले वाजू विराजिया है।' अव माहिलापन और वाहरलापन मिट गया। यह कमरा अलग हो गया। यदि यह दीवार नही होती तो क्या

होता ? इस तरह की यह एक छोटी सी मिसाल है। ज्ञान मूल मे एक है लेकिन एक होते हुए भी आवरण और क्षय उपशम आदि व्यवहार से इसके पाच भेद बताये है। आपमे से जिनको २५ बोल आते है, वे जानते होगे कि पहला मतिज्ञान, दूसरा श्रुतज्ञान, तीसरा अवधिज्ञान, चौथा मन पर्यवज्ञान और पाँचवा केवलज्ञान है। वैसे पहला स्थान मतिज्ञान को दिया है लेकिन मतिज्ञान की अपेक्षा श्रुतज्ञान को अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है।

श्रुतज्ञान तथा मतिज्ञान

श्रुतज्ञान को धारण कब करेंगे, श्रुत के द्वारा सुनकर वस्तु का भेद मालूम कब करेंगे ? मति होगी तब। यदि मति नही हुई तो ? इसलिए मति के साथ श्रुति को बताया है। लेकिन जब तक मन नही होगा, तब तक मति काम नही करेगी और जब तक मति काम नही करेगी तब तक श्रुति द्वारा ज्ञान श्रुत नही होगा। उदाहरण के तौर पर पशुओ को देखिये, जिनमे श्रवण के साथ मति है। वे पशु है – गाय, भैंस, बकरी, पिल्ला आदि। उन्हे बुलाने पर दो चार बार एक शब्द से पुकारेंगे तो आ जायेंगे। कुत्ते को तू-तू करके बुलाया जाता है। छू-छू करके लगाया जाता है। तो आवाज के साथ मति जुडी रहेगी, तब वह उसको समझ लेगा और आ जाएगा। इसी तरह छोटा बच्चा या शिशु है उसको कोई ज्ञान नही है लेकिन जिस वक्त आपने माँ के पास उसे इशारा किया 'मम्मी'। दो बार उसने सुन लिया तो तीसरी बार कहने की जरूरत नही पडेगी। वह समझ जायगा कि मम्मी किसे कहते हैं, वह तुरन्त कह देगा 'मम्मी'। उसको यदि 'पप्पू' कहकर दो चार बार उगली का इशारा करके बता देगे तो वह समझ जायगा कि 'पप्पू' कौन है। यदि इसमे केवल 'श्रुति' ही मिलती और 'मती' काम नही करती तो कार्य-सिद्धि नही होती। इसलिये श्रुत-ज्ञान और मतिज्ञान को एक दूसरे से सम्बद्ध कहा गया है। 'श्रुत' का मतलब है श्रवण से होने वाला बोध। जो बोध शब्द के सहारे किसी को कराया जाता है, ऐसा सारा बोध चाहे बोल कर, लिखकर, पुस्तक पढकर कराया जाय, चाहे शब्द-ध्वनि से कराया जाय, चाहे सकेत से कराया जाय, वह 'श्रुतज्ञान' है।

श्रुत के भेद अक्षर श्रुत और अनक्षर श्रुत

श्रुत के भी दो भेद है। एक अक्षर श्रुत और दूसरा अनक्षर श्रुत। अक्षर श्रुत मे बच्चे को या पशु-पक्षी को आवाज देकर पुकारा या बुलाया तो यह पुकारना अक्षर-श्रुत हुआ। लेकिन जब किसी को सीटी (व्हिशल) बजाकर बुलाया, जैसे विद्यालयो मे या सस्था मे बच्चो को सामूहिक रूप से एक साथ बुलाने की जरूरत पडती है। पढाई का समय होने पर या भोजन का समय होने पर एक-एक को तो नही पुकारा जाता, बल्कि सीटी बजा दी जाती है या घण्टा बजा दिया जाता है और इस सकेत से सभी बच्चे इकट्ठे हो जाते हैं। पुराने जमाने मे भी मन्दिरो मे घण्टा बजाया जाता था, यह बतलाने के लिए कि देव-पूजा का समय हो गया है, सब आ जाओ।

इस भाति मन्दिरो मे आवाज या मस्जिदो मे अजान लगाकर पुकारते है। १०-१५ मिनट पहले आवाज दे देते है, सारा मोहल्ला सुनता है और जिनको आना होता है वे आ जाते है। कहने का मतलब यह है कि जो बात स्पष्ट रूप से आवाज देकर कही जाय वह 'अक्षर-श्रुत' हुआ और जो बिना बोले सकेत से सीटी से, घण्टा बजाकर, आवाज करके, या चुटकी बजाकर, मेज बजाकर, कुर्सी थपथपा कर समझाया जाय, यह अनक्षर-श्रुत कहलाता है। यदि बच्चे क्लास मे शोर मचाते हैं तो शिक्षक द्वारा मेज या कुर्सी थपथपाये जाने पर वे शान्त हो जाते है। इसको श्रुत-ज्ञान का 'अनक्षर' भेद कहते है। अकेले श्रुत-ज्ञान को लेकर बतलाया है कि वह कितने प्रकार का होता है। नन्दी सूत्र मे इसके १४ भेद बतलाये है और कर्मग्रन्थ मे इसे २० प्रकार का बताया गया है। ऐसे, शब्दो द्वारा होने वाले अथवा शब्दो पर आश्रित ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते है।

श्रुतज्ञान के पश्चात् दूसरा ज्ञान आता है मतिज्ञान अथवा आभिनिबोधिक ज्ञान। कुछ तीर्थंकरो के भी दो नाम है। क्या आप बतायेगे कि वे कौन-कौन से हैं? नौवे तीर्थंकर सुविधिनाथ जी का दूसरा नाम है 'पुष्पदत', २४वे तीर्थंकर महावीर स्वामी का दूसरा नाम है 'वर्धमान'। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव जी का दूसरा नाम है आदिनाथजी और २२वे तीर्थंकर अरिष्टनेमी का दूसरा नाम है नेमिनाथ जी। यह इसलिये बताया कि मतिज्ञान के प्रसग से दूसरे

नाम की वात आ गई। मतिज्ञान का दूसरा नाम है आभिनिवोधिक। आभिनिवोधिक का मतलब है 'आ' मर्यादा, 'नि' नियत, वोधिक-बोध कराने वाला। इन्द्रियो और मन से ताल्लुक रखने वाला जो ज्ञान है वह है 'मतिज्ञान'। पाचो इन्द्रियो और मन के सामने आये हुए विषयो का मर्यादा के साथ नियत बोध होना, इसका नाम है, आभिनिबोधिक। एक वस्तु आपके सामने आयी तो क्या आप उससे श्रवण का बोध कर लोगे ? नही करोगे। जैसे मिश्री का श्वेत रग का अच्छा पाशा, जिसे आपके किसी साथी ने आपके पास भेजा है, आपने उसको अच्छी तरह से देखा, सफेद रग का है, चौकोर है, आदि आदि सारी बाते आपने मालूम करली, लेकिन उसमे कितना मिठास है, यह नही जान सके। फिर स्पर्श इन्द्रिय से सम्बन्ध रखने वाला जो रूप है, उसको बिना छुए नही समझ सके कि उसका कितना वजन है। रात-दिन जो देखते रहते है वे अन्दाज तो लगा लेगे कि कितने केरेट का है। लेकिन असली वजन जानने के लिए उसे काँटे मे तोलना होगा। आपको चक्षुओ ने रग, रूप, आकार, प्रकार का वोध कराया लेकिन वजन जानने के लिये तो काटे मे तोलना पडेगा। ऐसे ही यदि स्वर्ण है, तो उसे कसौटी पर कसने की जरूरत पडेगी। इसी तरह इन्द्रियो से होने वाला मतिज्ञान रग, रूप बताएगा। आपने रत्न को देखा, अन्दाज लगाया कि यह १० हजार का, २५ हजार का या लाख रुपये मूल्य का होना चाहिये। यह जो जानकारी हुई वह 'मतिज्ञान' से हुई। दिमाग से सोचकर, चक्षुओ से देखकर, और चखकर जो ज्ञान किया जाता है वह है 'मतिज्ञान'।

इसी तरह आपके यहाँ आने वाले ग्राहक को आपने देखा। उसकी चाल, ढाल से, आँख से एक तो आपने बोध किया। फिर उसकी सूरत शक्ल देखी, वार वार उसे इधर से उधर मुँह मोडते देखा, नजर की चचलता देखी और सोचा कि यह आदमी तो उचक्का है। एक तो इन्द्रियो से उसका आकार-प्रकार देखा। फिर गौर किया कि उसकी नजर का रुख क्या है। देखकर आपके मन मे विचार आया कि यह भद्र पुरुप है या स्वभाव का भोला है, या दिमाग से क्रेक है अथवा उसमे उचक्कापन है। क्या इन सारी वातो का निर्णय आँख से, कान से हो जायेगा ? नही। मतिज्ञान मे

इन्द्रियो और मन द्वारा मर्यादा से नियत वोध किया जाता है। इस तरह से मतिज्ञान का यह थोडासा विश्लेपरण हुआ।

अभी आपके सुनने मे और मेरे वोलने की क्रिया करने मे दोनो प्रकार के ज्ञान का उपयोग हो रहा है। मैं अपनी वात वताने के लिए वोलने के साथ शव्द सोच सोच कर उच्चारण करता हूँ। उसमे से कितनी वाते आपके हृदयगत हो रही है, उसका खयाल पहुँचाता हुआ कहू तो मेरा खयाल पहुँचाना आपकी दृष्टि, रुचि और आपके मनोगत भावो का अनुमान कर कहना मेरा मतिज्ञान होगा। और शास्त्रो के इन प्रसिद्ध प्रसगो को ध्यान मे लाकर, उनके आधार पर परिभापा और न्याय आदि का कथन करना यह है–श्रुतज्ञान। शव्दो को सुनकर और सुनने के साथ पहले पीछे के शव्दो को जोड कर विचार करना, यह आपका क्या हो गया ? मतिज्ञान।

अवधिज्ञान

तीसरा भेद है अवधिज्ञान। यह इतनी प्रसिद्ध चीज है कि जैन परम्परा वाले सभी वन्धुओ को मालूम होनी चाहिये। लेकिन स्वाध्याय या पठन-पाठन यदा-कदा करने के कारण आप मे से वहुत से भाई शायद पाँच ज्ञान के नाम भी नही गिना सकेगे। कोई गिना जायेगे तो अर्थ नही वता सकेगे। इस कमी को दूर करने के लिए ही स्वाध्याय की आवश्यकता रहती है। आप मे शक्ति नही हो, समझने का सामर्थ्य नही हो, ऐसी वात मै नही मानता। आप मे शक्ति है, सामर्थ्य है, हौसला है लेकिन आप अपनी शक्ति का उपयोग जैसा धन्धे मे करते है, वैसा धर्म-ध्यान या स्वाध्याय मे नही करते। यदि दो-चार वार विलायत घूमना हो जाय तो विदेशी भापा के शव्द ध्यान मे रखोगे। जैसी उधर आपकी तवज्जह है, ऐसी यदि इधर हो जाय तो वेडा पार हो जाय या नही ?

ही २-४-१० लाख रुपये मिल गये हो। एक एक पेढी मे २०-२५ लाख रुपये कमाये होगे। उधर आपने अपने दिमाग से कितनी तवज्जह दी। भाषा सीखने के लिये अपनी शक्ति लगाई। विदेशी भाषा सीखना ज्यादा कठिन है या इन बातो को सीखना जो रात-दिन सुनने मे आती है। मार्ग-चतुष्टय आपके अज्ञान को दूर करता है। इसलिए यह आपका निज गुण है। धन, कोठी, वैभव आपका निज-गुण नही है। आप मे से कोई विदेश मे रहने वाला मिलेगा। एकाध ऐसा भी होगा जो विदेश का नागरिक बन गया और फिर उसे छोड-कर वापस आ गया। सोच लीजिये आप धन्धे के कारण बाहर रहते है – बम्बई मे, कलकत्ता मे या और कही। मुझे विश्लेषण मे जाने की जरूरत नही है। इस प्रदेश को छोडकर अनार्य लोगो की बीच मे, जिनकी जाति भिन्न, सस्कृति भिन्न, और रीति-रिवाज भी अपने से भिन्न हैं, उनके बीच आप अर्थलाभ के लिये चले जाते हैं। अपनी पसन्द से आप अपना स्थान बनाते है और समय पाकर वही पर यदि आपके प्रतिकूल स्थितिया आती है, तो उस स्थान को छोड देते है। क्योकि वह आपका निजी नही है, इसलिए छोड देते हैं। यदि कोई आपको जयपुर छोडने के लिए कहे तो छोड देगे क्या ? नही। मद्रास, रगून या और कोई स्थान छोडना आपके लिए कठिन नही है, पर जयपुर छोडना कठिन है, क्योकि यह आपका निज का है। जो निज का है उसे आप छोडना नही चाहते। लेकिन मैं यह कह रहा हूँ कि भूमि, कोठी, जायदाद और धन-सम्पत्ति, ये सब आपके निज के नही हैं। आपका निज का तो वस्तुत ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूपी आपका आत्मगुण है। आप निज को भूलकर, निज के आत्म-गुण को भूलकर जो आपका अनिष्ट करने वाला है, उसे अपना निजी समझ रहे हो। इस भूमि, जायदाद आदि से ज्यादा सोच आपको ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप का होना चाहिये, क्योकि ये आपके निज-गुण है। एक अल्प बुद्धि वाला व्यक्ति भी जिसे अपने कुटुम्ब का ध्यान हो, खतरे की स्थिति पैदा हो जाय तो जिस जगह वह २० वर्ष से रह रहा है, उस स्थान को छोडने मे देर नही करेगा। पर बडे आश्चर्य और दु ख की बात है कि आप निज-घर को छोडकर सर्वस्व नाशक शत्रु के घर मे बैठे कराल काल की चक्की मे पिसे जा रहे हो। महाविनाश से बचने के लिए आपको कोई चिन्ता नही है। भ्रान्तिवश सुरम्य उद्यान को

छोड ज्वालामुखी मे प्रवेश किये बैठे हो। अमृत को छोड गरलपान कर रहे हो। बार-बार सकट से सावधान किया जा रहा है, पर आप इसे छोडने को तैयार नही। धन, परिग्रह, घर, भूमि, सपत्ति आदि को तो आप अपना समझते हो और ज्ञान को पराया। समझाने पर सभवत मन ही मन यह कहते हो कि ज्ञान प्राप्त करना तो महाराज का काम है। 'म्हा महाराज थोडे ही बण्या हा'। ज्ञान तो महाराज का काम है और धन आपका। बँटवारा कर लिया आपने तो।

ऐसी बात चाहे आप बोलोगे तो नही लेकिन आपका व्यवहार ऐसा बता रहा है कि ज्ञान की बात महाराज करते है। ठीक है आप जवाब नही देते, इसको सुनकर आप स्वीकार करते हो। लेकिन असल मे आपने धन को आपना समझा या ज्ञान को अपना समझा? सोचना यह है कि इस मनुष्य जन्म मे वीतराग-वाणी के समागम से आत्म-सुधार का अवसर हमे मिला है। इस समय भी अज्ञान को नही मिटाओगे तो आखिर बताइये दूसरा मौका कौनसा आएगा? इससे बढकर और कोई दूसरा मौका नही आने वाला है।

अभी ज्ञान की बात हो रही थी। मति-ज्ञान और श्रुत-ज्ञान। उनमे क्षयोपशम की दृष्टि से असख्य भेद हैं। असख्य कहना अतिशयोक्ति मत समझियेगा। अपनी जिन्दगी मे मतिज्ञान और श्रुतज्ञान सदा मौजूद रहते है। आप जब ४ वर्ष के थे तब भी यह मौजूद था, २० वर्ष के हुए तब भी मौजूद था और ३० वर्ष के हुए तब भी मौजूद है। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के एक होते हुए भी भेद है। अवधिज्ञान यो तो मतिज्ञान और श्रुतज्ञान से बडा है। लेकिन सेवा और कल्याण की दृष्टि से अवधिज्ञान वाला ज्ञानी केवल अवधिज्ञान से किसी दूसरे को तारने का या ज्ञान देने का निमित्त नही बनता।

शील है । ऐसा व्यक्ति, जो शात चित्त से ज्ञान की गरिमा मे गहराई से गोता लगाता है, वह मूकज्ञान से भी लाभ ले लेगा । लेकिन सामान्य ज्ञान वाला व्यक्ति ऐसा नही कर सकेगा । हम जिन आचार्यो की महिमा गा रहे है, वे विशिष्ट ज्ञानसम्पन्न एव महान् प्रभावक आचार्य थे । स्थूलभद्र से लेकर आज तक सहस्रो आचार्य हो गये । वे दो ज्ञान के ज्ञाता थे । उनकी सख्या न्यून होने पर भी उन्होने निर्मल श्रुतज्ञान को हजारो वर्षो से धारण करके शासन को सुरक्षित रखा । शासन को सुरक्षित रखने मे श्रुतज्ञान का प्रमुख स्थान है ।

आचार्य महागिरि

श्रुतज्ञान वाले महापुरुष अपनी जीवन ज्योति से किस तरह खुद प्रकाशित होते है और दूसरो के जीवन को कैसे प्रकाशित करते हैं, इसके उदाहरण स्वरूप आचार्य महागिरि का जीवन आपके सामने कल बता दिया गया है । आर्य महागिरि महासती यक्षा के सान्निध्य और सरक्षण मे ज्ञान पाकर विशिष्ट श्रुत के ज्ञाता हुए । फिर आर्य स्थूलभद्र जैसे त्यागी, वैरागी, परम गभीर और ज्ञानी आचार्य से उनका सम्यक्त्व निखरा । उनका खुद का खिचाव था, फिर उनकी योग्यता के बीज को स्थूलभद्र द्वारा सिचाई मिली । इन सब के सयोग से ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित हुई । बीज यदि उत्तम योग्यता वाला है तो उसको सुन्दर वृक्ष के रूप मे आगे विकास का मौका देने मे किसकी कला काम आती है ? माली की । बीज अकुरित होकर बढना जानता है लेकिन किधर बढना, डालियो को किधर फैलाना, इसमे माली की बुद्धि और प्रतिभा का उपयोग लगता है, तभी पौधा सुघड और सुन्दर रूप धारण कर लेता है । बीज के लिये जिस तरह माली या कृषक की देखरेख रहती है, उसी तरह महागिरि की आत्मा जो बीज की तरह योग्यता मे पूर्ण थी, उसमे सयोग मिला स्थूलभद्र का, जिन्होने उसको ज्ञान की खुराक दी । और अल्प समय मे ही महागिरि १० पूर्वज्ञान के ज्ञाता हुए । १० पूर्व के ज्ञान वाले बनने के बाद भी उनकी आत्मा मे एक प्रकार से इतनी विनम्र दृष्टि, उपशम दृष्टि थी कि जिसके कारण उन्होने अपने जीवन को द्रव्य और भाव दोनो रूपो मे साध लिया ।

वीर निर्वाण के २१५ वर्ष बाद आर्य स्थूलभद्र का स्वर्गवास

हो जाता है। हजारो साधुओ का विशाल मण्डल है, उसका सुचारु रूप से सचालन करने के लिये कुशल नेता की आवश्यकता पडती है। महागिरि ने ज्ञान-साधना के साथ-साथ साधुमण्डल के जीवन को ऊचा उठाने की योग्यता एव बुद्धि-कौशल प्राप्त किया था। अतः महागिरि ही आर्य स्थूलभद्र के पश्चात् आचार्य बनाये गये –

तीस वर्ष गृह-वास सयमी सत्तर।
चालीस वत्सर बाद प्राप्त पदवीधर,
पूर्ण शतायु होकर स्वर्ग सिधाये।
कठिन साधना से शासन शोभाये,
गिरिसम अविचल सहे परीषह भारी,
लेकर शरणा तिरे अमित नर नारी।

बचपन मे शुद्ध साधना के वातावरण मे रहने से महागिरि के मन पर इतनी गहरी त्याग की छाप जमी कि ३० वर्ष की वय मे दीक्षित हुए, तब भी भोग के कीचड से उन्होने अपने जीवन को सदा दूर रखा। भरपूर युवा वय हो, गृहस्थ का वातावरण हो, शरीर स्वस्थ हो, सुन्दर रूप हो, फिर भी आदमी अपने-आपको वासना से बचाले, यह कब हो सकता है? यह तभी हो सकता है जबकि वातावरण पवित्र हो। पवित्र वातावरण मे जो पला हो और सत्सग के सस्कारो मे जिसने वृद्धि पाई हो, वही आगे बढ सकता है। अन्यथा मामला बडा ही विचारणीय और टेढा बन जाता है।

महागिरि ३० वर्ष की लम्बी अवधि तक पवित्र जीवन से गुजर कर, शुद्ध, निर्मल, पवित्र ज्ञान की धारा लेकर आचार्य स्थूलभद्र के चरणो मे दीक्षित हुए। जिसने जीव और पुद्गल का सच्चा ज्ञान प्राप्त कर आत्मतत्त्व को पहचान लिया हो, जिसकी बुद्धि परिपक्व हो और जिसमे ज्ञान के साथ वैराग्य हो तो उसको कोई खतरा नही रहता। अज्ञान अवस्था मे जीवन चल-विचल हो सकता है और उसको खतरा रहता है। ज्ञानी के विचलित होने का खतरा नही रहता। जैसे दीपक मे तेल है और बत्ती ठीक स्थिति मे है तो हवा के साधारण छोटे-मोटे झोको से वह दीपक बुझ नही सकता। लेकिन यदि तेल ही समाप्त हो गया है तो वह दीपक साधारण सा झोका पाकर भी बुझ जाएगा। इसलिए क्या गृहस्थ जीवन मे, और क्या त्यागी जीवन

मे, यदि हम चाहते है कि जीवन कुमार्ग और कुसगति मे पडकर गलत रास्ते पर नही लगे, तो श्रुत-ज्ञान का जल अधिक मात्रा मे डालना चाहिये, तभी खतरे से बचेगे।

एक जमाना था जब बच्चो की जिन्दगी घर और मुहल्ले के इर्द-गिर्द तक ही सीमित रहती थी। उस वक्त उनका उनका जीवन किसी व्यसन मे या दुराचार मे लग जायगा, ऐसा खतरा नही रहता था, क्योकि उनका सीमित क्षेत्र था, कही आना जाना नही था। अधिक से अधिक रामनिवास बाग तक घूम आये और अन्य किसी जगह न जाकर वापिस घर आ गये। लेकिन अब समय ने अपना रुख बदला है। आज तो देश-विदेश भी मुहल्ले बन गये हैं। नाहरगढ रोड, पुराना जयपुर, पुरानी बस्ती एक ही नगर के मुहल्ले होते हुए भी महीने मे कितनी बार वहा जाने का काम पडता होगा? एक नगर के भाग होते हुए भी महीने दो महीने मे, या कुछ लोग छठे-छ मास कभी-कबास वहाँ जाते होगे, लेकिन आजकल विलायत मुहल्ला सा बन गया है, जब मन चाहे तभी चले जाते हैं। व्यापार का काम अधूरा रह गया हो, और फिर से जाना हो तो महिने मे दो चक्कर भी लगा लेते होगे, ऐसे नमूने भी है। इसका मतलब यह है कि विदेश आज मुहल्ला हो गया है। वक्त पर १५ दिन से ज्यादा वहाँ रह गये है और कोई चीज वहा से मगानी हो तो सूचना करके मगा लेते हैं। इस तरह समुद्र पार के देश भी आज एक मुहल्ले के समान बन गये है। वहा पर खान-पान की शुद्धता का भी खयाल रखना मुश्किल हो जाता होगा? कभी-कभी बीयर जैसी नशीली चीजे भी चखने और कठ के नीचे उतारने का प्रसग आ जाय तो ताज्जुब की बात नही है। इसलिए इस ओर भी खास तौर से ध्यान देने की आवश्यकता है।

महागिरि तीस वर्ष तक घर मे रहे और उन्होने ४० वर्ष तक सामान्य मुनि रूप मे सयम पाला। ऐसा सयम पाला कि वे स्थूलभद्र जैसे ज्ञानी आचार्य की सगति से अन्तर मे भी और बाहर भी साधना के रग मे रग गये, मजीठ के रग की तरह। इस रग को रगड कर भी उतारना चाहो तो नही उतरता। इसी तरह से वे धर्म के रग मे ऐसे रग गये कि यदि उनके आगे सुन्दर नर्तकियाँ कलात्मक नृत्य करे

और उनकी महिमा का बखान करे तो भी वे किञ्चित्मात्र भी नही डिगे। ४० वर्ष तक उन्होने अपने गुरु की सेवा की और उसके पश्चात् ३० वर्ष तक आचार्य पद पर रहे। वीर सवत् २१५ मे आर्य स्थूलभद्र का स्वर्गवास हुआ और सवत् २४५ मे महागिरि का स्वर्गवास हुआ। कितना समय हुआ ? सवत् २४५ तक महागिरि का धर्म-शासन रहा। महागिरि ने अपने साधना-काल मे सबसे बडा काम किया वाचना का। ज्ञान मे उनका इतना प्रगाढ विश्वास था कि अपने शिष्यो को शास्त्र का ज्ञान देने का कार्य वे स्वय करते। खुद का साधना मे प्रेम था। एकात सेवन का भी विशिष्ट प्रेम था। इतिहास मे वर्णन आता है कि उन्होने जिनकल्प के समान आचरण किया। जिन-कल्प के समान कार्य कौन करता है ? जिनकल्प के आचरण वाले दूसगे के प्रति निरपेक्ष रहते है। वे दूसरो से सेवा लेते भी नही और देते भी नही। यह जिन-कल्प का रूप है। न तो ऐसे साधु दूसरो के लिये गोचरी लाते है और न अपने लिए किसी से मँगाते ही। जिन-कल्पी साधुओ की दृष्टि एक मात्र अपने कल्याण की ओर रहती है। लेकिन महागिरि के मन मे श्रमण-सघ के प्रति वात्सल्य था – वे श्रुतदान के बडे रसिक थे। उन्होने और बातो से तो निवृत्ति पा ली लेकिन साधुओ को ज्ञान सिखाने के काम से निवृत्ति नही ली। वे ज्ञानदान को परमावश्यक मानते थे। इसलिये उन्होने अपना पिछला समय ज्ञानदान करने मे एव आत्मसाधना मे बिताया। सघ की व्यवस्था करने का काम, जैसे – साधुओ को सभालना, किस साधु को कहाँ रखना, समाचारी पालन की प्रेरणा व सेवा आदि व्यवस्था का सारा काम उन्होने सुहस्ती को दे दिया। लेकिन ज्ञान देने का काम, शास्त्र पढाने का कार्य वे स्वय करते थे। आप इससे सोच सकते है कि जहाँ दस पूर्व जितने विशाल ज्ञान के धनी, साधु-मण्डल को ज्ञान देने का काम स्वय करे और उनको यह ध्यान हो कि यदि सम्यक्ज्ञान नही दिया गया तो नीव कच्ची रह जायेगी, वहा ज्ञान का कितना विपुल प्रचार-प्रसार हुआ होगा ?

आपके बच्चो की नीव कितनी मजबूत है ? साधुओ की नीव मजबूत होने के साथ-साथ आपके बच्चो की भी नीव मजबूत, सुदृढ होनी चाहिये। हमारे श्रमण बने हुए शिष्यो को जब किसी अन्य सघ वालो से बातचीत करने के प्रसग आते हैं, तब ज्ञान के महत्त्व का

पता चलता है। अगर उनका ज्ञान चढा हुआ नही है और उनकी नीव कच्ची रह गई है या ज्ञान मे कमी रही है तो वे सयम की निर्मल आराधना नही कर पायेंगे और अन्य सघ वालो के समक्ष उनकी ठीक वैसी ही दशा होगी, जैसी कि कीचड मे फसी एक दुर्बल गाय की दशा होती है। जब एक सघपति को अपने शिष्यो का इतना ध्यान रहता है तो कुलपतियो को भी अपने बच्चो का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिये। आप मे से एक एक आदमी कुलपति है, कुछ सघपति या सघ के नायक भी हैं। उनको भी यह बात ध्यान मे रखनी चाहिये कि हमारी नीव का पहला आधार या पाया श्रुतज्ञान है। यदि वह पाया कमजोर रह गया तो सारी की सारी मजिल मजबूत रहने के बजाय गिर पडेगी। इसी कारण लाला लाजपतराय जैसे राष्ट्र के नायक जैन धर्म से विमुख हो गये। न मालूम ऐसे कितने ही जैन धर्म के अनुयायी कुलपतियो एव सघपतियो की लापरवाही से जैनधर्म से विमुख हो गये। यदि समय रहते हमने अपने कर्त्तव्य को नही सभाला तो हम अपनी भावी सतानो को शासन-सेवा से वचित रख देगे। श्रुतज्ञान की आराधना जिस तरह महागिरि ने अपने जीवन मे तन, मन से की उसी तरह आप भी श्रुतज्ञान की आराधना करके अपनी आत्मा को उज्ज्वल बनावें। जब तक हमारा सम्यक्ज्ञान मजबूत रहेगा, हम तब तक कभी नही डिगेगे। यदि आपने जीवन मे सम्यक्ज्ञान की आराधना की तो आपका यह लोक भी सुधरेगा और परलोक भी सुधरेगा।

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति

सम्यग्ज्ञान – ३

प्रार्थना

वन्धुओ !

सुखविपाक-सूत्र का प्रथम अध्याय अभी आपके सामने सुनाया जा रहा है। सुदत्त मुनि सुमुख गाथापति के यहाँ भिक्षा के लिये पहुँचे हैं। पात्र और दान-दाता दोनो ही बडे ऊँचे हैं। सुमुख गाथा-पति उनको पूर्ण विधिपूर्वक दान देने का कार्य कर रहा है। दोनो साधक है। एक सर्वविरति-धर्म का और दूसरा अभी अविरत दशा मे भक्ति-मार्ग का साधक है। और यही कारण है कि सुदत्त अणगार को देखकर, अपरिचित होते हुए भी सुमुख के अन्त करण मे उस प्रकार की भक्ति जागृत हुई कि उसके भाव शब्दो मे अभिव्यक्त नही किये जा सकते। सुमुख अत करण मे भावविभोर हो सोचता है – "मैं भक्ति करूँ।"

सम्यक्ज्ञान, सम्यक्दर्शन, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप–ये चार मुख्य है। ज्ञान को मोक्ष का पहला मार्ग बताने मे शास्त्रकारो ने यह चिन्तन करना जरूरी समझा कि ज्ञान क्या है, कैसे पैदा होता है, और उसका स्वरूप क्या है। इसको समझिये। अभी मैने ज्ञान का थोडा-सा सक्षेप मे स्वरूप बता कर बोध की चर्चा आपके सामने की।

ज्ञान, जैसा कि मैंने बताया, कुल पाँच प्रकार का है। उनमे से दो का अर्थ समझाया – मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का। यद्यपि आपके हमारे बोलने के क्रम मे अन्तर है। हमने पहला श्रुतज्ञान फिर मतिज्ञान कहा है। अवधिज्ञान, मन पर्यवज्ञान और केवलज्ञान ये पीछे के तीन है। जैसे कि –

तत्थ पचविह नाण, सुय आभिणिबोहिय।
ओहिनाण तु तइय, मणनाण च केवल॥

यह मूल सूत्र उत्तराध्ययन सूत्र के २८ वे अध्याय की तीसरी गाथा है।

"तत्थ पचविह नाण" – ज्ञान के पाँच प्रकार बताये है, उनमे श्रुतज्ञान को पहला स्थान क्यो दिया, इस पर विचार किया जा चुका है। ज्ञान के पाच प्रकार ये है – श्रुतज्ञान, आभिनिबोधिक अर्थात् मतिज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्यवज्ञान और केवलज्ञान। ज्ञान के प्रकरण मे दो तरह के ज्ञान बताये हैं – एक प्रत्यक्ष और दूसरा परोक्ष। जैन शास्त्रो मे प्रत्यक्ष के भी दो भेद बताये हैं। एक इन्द्रिय-प्रत्यक्ष अर्थात् जो पाँचो इन्द्रियो की सहायता से – आख, नाक, कान आदि की सहायता से जाना जाय, वह इन्द्रिय-प्रत्यक्ष है। दूसरा वह प्रत्यक्ष है जिसमे इन्द्रियो की मदद नही चाहिये और मन का सहयोग भी नही चाहिये। बिना इन्द्रियो और बिना मन के सीधे ही आत्मा जिन पदार्थों का स्पष्ट ज्ञान करे, उसका नाम नोइन्द्रिय-प्रत्यक्ष है। दूसरे नाम से कहे तो साव्यावहारिक प्रत्यक्ष और पारमार्थिक प्रत्यक्ष के नाम से अभिहित कर सकते है। व्यावहारिक जगत् मे लोगो से सुना, आख से देखा, नाक से सूघा, कान से सुना, मन से प्रत्यक्ष तजुर्बा किया, आकार से ज्ञान का अनुभव किया, उस समय आप ऐसा कहते हैं कि मैने प्रत्यक्ष ज्ञान किया। वास्तव मे प्रत्यक्ष वह है, जिसमे सशय नही है, विपर्यय नही है, शका का कारण नही

है, विपरीतता नही है, ऐसे ज्ञान को प्रत्यक्ष-ज्ञान कहते हैं और वह प्रत्यक्ष इन्द्रियो से नही होता। कई वार इन्द्रिय-ज्ञान भ्रान्त हो जाता है और कहना पडता है कि अजी नही हमने तो भूल से ऐसा समझ लिया था और नजदीक आने से मालूम हुआ कि यह तो दूसरी ही चीज है। जैसे रात्रि के वक्त कही पर सीपी पडी है और चन्द्र की चादनी प्रकाशित हो रही है तो वे सीपे चादी के टुकडे समझ मे आ जायेगी। दूर से सीप को चादी समझ लिया लेकिन जव नजदीक आया और उसकी जाँच की तो क्या प्रमाणित हुआ? इसी तरह कही पर रास्ते मे रस्सी पडी है? रात्रि के वक्त अधेरे मे सहसा नजर पडी तो पहली ही नजर मे चौंक कर मनुष्य कहता है – साप है भागो, भागो। लेकिन वाद मे तलाश करने पर मालूम होता है कि यह तो एक रस्सी का टुकडा है।

सूर का ज्ञान भ्रम

ऐसी ही कई ऐतिहासिक घटनाए भी है। सूरदास और गोस्वामी तुलसीदास के जीवन मे ऐसी घटनाए घटित हो चुकी हैं। सूरदास चिन्तामणि के पीछे आसक्त होकर रात्रि मे ससुराल चला गया। घर का दरवाजा वन्द था। उसने दीवार की ओर देखा तो एक चीज लटकती हुई दिखाई दी। वास्तव मे वह साप था। लेकिन उसे रस्सी जैसा लगा। क्योकि वह भावोद्रेक मे उद्विग्न था, उतावला था, मोह मे देख नही सका। उसने सोचा कि चिन्तामणि भी उसी की तरह विरह-व्याकुल होगी। इसलिये उसने उसके लिए रस्सी लटकायी होगी। यह समझ कर वह उस साप को पकड कर ऊपर चढ गया। जव चिन्तामणि ने उससे कहा – "मैंने तो रस्सी लटकायी नही थी तुम किसको पकडकर ऊपर आये हो, जरा देखे।" उसने जाकर प्रकाश मे देखा तो साप था। उसने साप को रस्सी समझा, यह प्रत्यक्ष ज्ञान था या परोक्ष? प्रत्यक्ष देखा लेकिन गलती हो गई। इसी तरह अर्थी से क्या हुआ एक मुर्दा पानी मे वहा चला जा रहा था और सूर ने

हो गया । यह भी परोक्ष नही था लेकिन उस समय भावना मे इतनी तन्मयता थी कि चिन्तामणि से मिलने की धुन मे बराबर समझ नही पाया, छूकर देख नही पाया, इसकी क्या वजह थी ? मेरे कहने का मतलब इतना ही है कि इन्द्रिय-प्रत्यक्ष कभी कभी भ्रान्त हो जाता है ।

जैसे देखने मे भ्रान्ति होती है, वैसे ही सुनने मे भी भ्रान्ति हो जाती है । कोई बात होती है दूसरे के लिए और आप उसके आधे शब्द सुनकर अपने बारे मे समझ बैठते है । वह किसी और का विरोध कर रहा है और आपने उसके आधे शब्द सुनकर समझ लिया कि वह हमारा विरोध कर रहा है और जाकर कह दिया –"महाराज ! अमुक आदमी आपका विरोध कर रहा है ।" अन्दाज से उसके चन्द शब्दो को पकडा और पकड कर बात का बतगड बना दिया । कई बार मित्रो के बीच मे, सम्बन्धियो के बीच मे, कार्यकर्त्ताओ के बीच मे प्रत्यक्ष मे सुनी हुई बात, आधी सुनी और मतलब नही समझा तो क्या हो जाता है ? अर्थ का अनर्थ हो जाता है । इसलिये जैन शास्त्रो ने इस प्रत्यक्ष को इन्द्रिय-प्रत्यक्ष कहा है, सव्यावहारिक-प्रत्यक्ष कहा है । वास्तव मे इसे प्रत्यक्ष नही माना है । दूसरे शब्दो मे इसे परोक्ष कहना चाहिए था ।

कौन-कौन से परोक्ष-ज्ञान होते है । अभी जो हम मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का वर्णन कर आये है, वह परोक्ष है । मतिज्ञान परोक्ष है, श्रुतज्ञान भी परोक्ष है । इसमे कभी-कभी गलती होने का अन्देशा रहता है । इसलिए भावना के साथ बार-बार कहा – कही गलती न हो जाय, इसलिए चितन करने की जरूरत होती है और चिन्तन मे कही गलती न हो जाय इसलिये जाचने की भी जरूरत होती है । अभी परोक्षज्ञान और प्रत्यक्षज्ञान की बात कही । अब रहता है अवधिज्ञान, मन पर्यवज्ञान और केवलज्ञान । ज्ञान का धर्म यह है कि वह मानव-जीवन मे एक विशेष प्रकार का प्रकाश प्रदान करता है । ज्ञान केवल वस्तुओ को जानना मात्र ही नही है । ज्ञान से मतलब है, हमारा सम्यक्ज्ञान । कवि ने कहा है –

पच प्रकारे ज्ञान कहा जिनवर ने,
मति श्रुत अवधि, मन पर्यव हितकर ने ।

चार ज्ञान प्रतिपाती आकर जावे,
केवल क्षायक होने से नही जावे।
मोक्षार्थी जन सुनो एक चित्त लाई,
मिथ्यात्वी अज्ञान से भटके भाई!

आवरण हटने से ज्ञान प्रकट होता है

प्रत्यक्ष ज्ञान आपके और हमारे भीतर है, उसमे भी सामर्थ्य है। जितना ज्ञानावरणीय कर्म का पर्दा दूर होता है, उतना ही ज्ञान का प्रकाश प्रकट होता है। अभी सूर्य आकाश मे है, फिर भी आपको सूर्य की किरण नही दिखती, इसका क्या कारण है? यही कारण है कि सूर्य पर बादल का आवरण है। बादल के कारण सूर्य की किरणे मौजूद होते हुए भी दिखाई नही देती। इसी तरह आत्मा रूपी किरणो पर ज्ञानावरणीय कर्म का जितना-जितना आवरण होगा उतनी ही वे किरणे छिपी रहेगी, दबी रहेगी। लेकिन भीतर दिव्य प्रकाश विद्यमान है, इसलिए शास्त्र कहता है कि मानव! पुरुषार्थ कर, कर्मो का पर्दा हटाना तुम्हारे अधीन है, किसी दूसरे के अधीन नही है।

पुरुषार्थ का प्रभाव

अ, ब, स, जैसे अक्षरो को भी नही पहचानने वाला एक बालक जब स्कूल मे जाकर पुरुषार्थ करता है तो चद दिनो मे अच्छा लिखने लायक, पढने लायक, बोलने लायक और समझने लायक अपने आपको बना लेता है। कैसे बनाया? पुरुषार्थ करने से। यदि वह परिश्रम नही करता तो उसके ज्ञान का विकास नही होता। अतर मे शक्ति के विद्यमान रहते हुए भी उसे यदि जगाया नही गया तो विकास नही होगा। जिस तरह किसी बन्धु के मकान मे बिजली का कनेक्शन जुडा हुआ है लेकिन गृहपति ६ महीनो से बाहर घूम रहा है। घर मे लगे तारो मे विद्युत् का सचार है या नही? है, फिर भी अभी बल्ब जलते नही दिखते। क्यो नही दिखते? बात यह है कि गृहपति के बाहर होने से बिजली का खटका किसी ने दबाया नही, खटका दबाने का पुरुषार्थ किसी ने नही किया। तार मे बिजली है, हाल और कमरो मे बल्ब लगे हुए हैं, तथापि हवेली मे अधकार है। लेकिन गृहपति के वापिस

आने के बाद जैसे ही खटका दबाया कि सब कमरो मे एक साथ प्रकाश हो गया। यह एक छोटी सी नजीर है। छोटे से पुरुषार्थ से सारे कमरो मे एक साथ प्रकाश हो गया।

आत्म-प्रकाश

बिजली का प्रकाश क्या चीज है, आत्मा के प्रकाश के सामने ? आत्मा का प्रकाश बडा है या बिजली का ? बिजली के प्रकाश को खोजकर किसने निकाला ? अमुक-अमुक चीजो को जुटाने से विद्युत् पैदा हो सकती है, इस चीज को खोजकर निकाला किसने ? तार और एजिन लगाने की जरूरत नही पडती, कुछ मसाला बना कर बैटरी मे मसाला भर दिया और खटका दबाते ही प्रकाश हो गया। बैटरी है तो गाडी मे बैठे हुए भी रेडियो से गीत सुन लोगे, यद्यपि वहा बिजली का कनेक्शन नही है। मानव के मस्तिष्क ने ये सब चीजे खोज निकाली। आत्मा इतनी तेजस्वी है कि उसने छोटे-छोटे जड पदार्थों मे छिपी हुई शक्ति को प्रकट किया। तो शक्ति प्रकट करने वाला बडा या जिसने शक्ति दिखाई वह बडा ? जल मे विद्युत्-शक्ति है। हजारो वर्षो तक इन पदार्थो की शक्ति दबी पडी हुई थी। गाव-गाव मे, नगर-नगर मे और घर-घर मे बटन दबाने से रोशनी नही होती थी। हजारो वर्षो पहले भी, भाखरा और चम्बल बाध बनने से पहले भी, इस पानी मे, चम्बल और दूसरी नदियो की धारा मे विद्युत् उत्पन्न करने की शक्ति थी, लेकिन चम्बल के आस-पास के गावो मे रोशनी नही होती थी। क्योकि मानव की आत्मा ने उसके लिए हाथ नही बढाया था। जिस दिन मानव-आत्मा का दिमाग गया, हाथ लगा, पुरुषार्थ लगा, तो सैकडो हजारो मील तक इस छोटी सी नदी से बिजली उत्पन्न की जा कर फैलाई गई। कहने का मतलब इतना ही है कि पानी की धारा मे विद्युत्-शक्ति है, लेकिन अपने आपको नही भूलना चाहिए कि इस बिजली से ज्यादा शक्ति इस आत्मा मे है। आपके शब्दो मे लाखो गुणा, हजारो नही, लाखो गुणा, करोडो गुणा और अरबो गुणा शक्ति है, ऐसा कह दू तो आपको शक करने की जरूरत नही होगी। वहा चिन्तन की विद्युत् है लेकिन उसको पुरुषार्थ के माध्यम से जगाने की जरूरत है। आपने और हमने, चिन्तन द्वारा उस शक्ति को प्रकट करने के लिए जितना प्रयास या

पुरुषार्थ करना चाहिये, उतना नही किया, इसलिए आपको हमको यह ताज्जुब लगेगा।

अवधिज्ञान

अवधिज्ञान – जिस ज्ञान से हजारो मील दूर बैठे आदमी के पास क्या चीज है, किसको क्या दिया है, क्या लिया है, किस घर मे क्या है, इसको जान लिया जाय, उस ज्ञान का नाम अवधिज्ञान है। अवधिज्ञानी बिना आँख खोले, देख ले और बता दे, यह बात कही जाय तो अभी आपकी समझ मे नही आयेगी। क्योकि आपने आँख से देखने का काम किया है। बिना आँख के कोई देख सके, जान सके, यह बात आपके खयाल मे जल्दी जमती नही। लेकिन आश्चर्य करने की आवश्यकता नही है, ताज्जुब करने का कारण नही है, वस्तुत आत्मा मे वह शक्ति है। आत्मा खुद ज्ञानमय है। इसलिए भूतकाल की बात हो, भविष्यकाल की बात हो, कोई हजारो कोसो दूर बैठा हो या नजदीक बैठा हो, जब हमारा ज्ञान का प्रकाश जागृत होता है, तब हम सब कुछ जान लेते हैं। अवधिज्ञान का मतलब है 'रूपी' पदार्थों को बिना इन्द्रियो और मन की सहायता के अच्छी तरह से जानना। यह मर्यादित होता है। इसमे क्षेत्र की मर्यादा होती है, काल की मर्यादा होती है। जिसके अवधिज्ञान की जितनी मर्यादा है, उतने क्षेत्र तथा काल तक ही जानना, यह सक्षेप मे अवधिज्ञान का लक्षण है। 'रूपी' पदार्थ का मतलब है, जिसमे वर्ण, गध, रस, स्पर्श और आकार हो। 'रूपी' का मतलब यह नही कि आख से दिखे वही 'रूपी'। शब्दलहरी आपको दिख नही रही है। मेरी बात आपके कान तक पहुच रही है लेकिन वह आपको दिखती नही है। तो भी वह 'रूपी' है क्योकि इन्द्रिय इसको ग्रहण करती हैं, रेडियो का पर्दा इसको ग्रहण कर सकता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जो चीज भले ही देखने मे न आये लेकिन श्रवण आदि इन्द्रियो से ग्रहण की जाती है, वह 'रूपी' है। गन्ध के परमाणु भी देखने मे नही आते। कोई गुलाब का फूल लेकर उपस्थित हो जाय तो क्या छिपा रहेगा। उसके पीछे और अगल-बगल मे बैठे हुए लोगो को खुशबू आयेगी और इस तरह उनको पता चल जायेगा कि कोई गुलाब का फूल लेकर बैठा है। इसी तरह गध के परमाणु, शब्द के परमाणु, प्रकाश के परमाणु आतप, उद्योत

वगैरह के परमाणु दिखते नही फिर भी उनको 'रूपी' कहा है। क्योकि उनमे रग, रूप, गध, स्पर्श है, रस है। उनमे से किसी को एक इन्द्रिय ग्रहण करने वाली है, किसी को दो इन्द्रियाँ ग्रहण करने वाली है। इस तरह जो इन्द्रियो से ग्रहण किया जाय उसको 'रूपी' कहते है। अवधिज्ञान के विषय 'रूपी' पदार्थ है।

मन पर्यवज्ञान

चौथा ज्ञान है, मन पर्यवज्ञान। इसका मतलब है मन मे विचारे हुए, सोचे हुए विषय को जानना। वस्तुत मनोगत भावो को जानकर पता लगाना, यह मन पर्यवज्ञान है। अवधि और मन पर्यवज्ञान दोनो रूपी पदार्थो को देखने- जानने वाले ज्ञान है।

केवलज्ञान

अब अंतिम रहा केवलज्ञान। केवलज्ञान तो केवल ज्ञान ही है। जिस ज्ञान से समस्त जगत् के सभी पर्यायो का सर्वकालीन जो ज्ञान होता है, वह केवलज्ञान है। अर्थात् समस्त जगत् के त्रिकालवर्ती सम्पूर्ण पर्यायो का यथावत् युगपद् ज्ञान करना, चाहे वह चर हो, अचर हो, रूपी हो, अरूपी हो, सूक्ष्म हो, चाहे स्थूल हो, उनको यथावत् जानना केवलज्ञान का काम है। चाहे रूपी हो, चाहे अरूपी, पदार्थमात्र को यथावत् जानना केवल-ज्ञान है। इस तरह ये तीन ज्ञान प्रत्यक्ष-ज्ञान हो गये और मति एव श्रुत – ये दो परोक्ष ज्ञान हो गये।

ज्ञान के घर्षण से ज्ञान का प्रकाश

आप मे, हम मे और प्राणिमात्र मे, जैसा कि कल कहा, ज्ञान वस्तुत मूल मे एक है। उसके पाच भेद अपेक्षा से, व्यवहार से, किये गये है। केवलज्ञान का प्रकाश आप मे, हम मे मौजूद होते हुए भी जब तक पुरुपार्थ का जोर नही लगे और कर्मो का पर्दा नही हटे, तब तक प्रकट नही होता। जैसे चकमक पत्थर मे आग-की चिन्गारी है लेकिन उसे रगडा न जाय तो वह नही निकलती। धूम्रपान करने वाले लोग छोटी सी डिबिया रखा करते है, एक नली रखा करते है, जिसमे किसान लोग कपडे की वत्ती रखते हैं। ज्यो ही बटन दबाया पापाण मे घर्पण होता है और आग लग जानी है। बीडी जल जाती है और बीडी-सिगरेट पीने वालो का काम बन जाता है। किंतु जब

तक वह डिविया पोकेट मे वद है, वह महीना, दो महीना, या चार महीना, वही पडी रही तो उसमे तो चिन्गारी नही निकलेगी। लेकिन चिन्गारी भीतर है या नही ? भीतर है। यदि भीतर है तो निकलती क्यो नही ? जैसे इस चकमक की पेटी और उस पाषाण मे ज्योति मौजूद है पर घर्षण के विना प्रकट नही होती, ठीक उसी तरह आप मे, हम मे, ज्ञान की ज्योति है लेकिन ज्योति प्रकट होने के लिये घर्षण आवश्यक है। घर्षण किससे ? ज्ञान प्रकट करने के लिए ज्ञानी से घर्षण हो तो ज्ञान प्रकट होता है। अज्ञानी से वातचीत कर रहे होगे तो लडाई होगी, झगडा होगा और यदि समाज मे कोई व्यक्ति प्रिय या अप्रिय वात निकालेगा तो भी झगडा हो जाएगा। किसी अज्ञानी या बुरे आदमी के पास वैठेगे तो या तो क्रोध जगेगा या मोह जगेगा या काम जगेगा। किसी कामी के पास वैठे या कामिनी के पास वैठे तो वहा उस ज्ञान-ज्योति की रगड से क्या होगा ? तो क्रोध जगा, मोह जगा, कामना जगी लेकिन ज्ञान नही जगा। यदि आप भी अपने भीतर ज्ञान की ज्योति जगाना चाहते है तो पुरुषार्थ कीजिये। चकमक से ज्योति निकालने की तरह आपकी आत्मा मे रही हुई चेतना से ज्ञान की ज्योति प्रकट करने का प्रयास कीजिये। पुरुषार्थ करने पर ज्योति अवश्य निकलेगी। इसके लिए इतिहास साक्षी है।

आचार्य स्थूलभद्र महामत्री शकडाल के पुत्र थे। भोग-मार्ग पर उनकी प्रारभिक जिन्दगी कटी। लेकिन वे ही जव सभूति विजय के ससर्ग मे आये तो जिन-भक्ति उनके मन मे जगी। ज्ञान से ज्ञान का घर्षण हुआ तो ज्ञान की दिव्य ज्योति प्रकट हुई। स्थूलभद्र और महागिरि की चर्चा चल रही थी।

ज्ञान-जागृति के कारण

महागिरि वालपन से ही सत्सग मे, ज्ञानियो के वातावरण मे रहे। साधु-साध्वियो के ससर्ग मे रहते हुए उनके जीवन मे ज्ञान की ज्योति जगी और वे १० पूर्व के ज्ञाता वने। १० पूर्व का ज्ञान अभूतपूर्व ज्ञान है। एक पूर्व का ज्ञान भी इतना विशाल है कि आज जो हमारे सारे सूत्र ३२ या ४५ मानते है, उनको एकत्रित कर दे तो भी एक पूर्व ज्ञान के वरावर भाग हमे उपलब्ध नही होगा। इतने

विशाल ज्ञान के सागर थे महागिरि। महागिरि ने पुरुषार्थ की डुबकी लगाई तो उनमे ज्ञान की ज्योति जगी। ज्ञान की ज्योति जगाने के चार कारण बताये है –

परमत्थ सथवो वा, सुदिट्ठ परमत्थ-सेवणा वावि।
वावन्न कुदसण-वज्जणा, इग्र सम्मत्त-सद्दहणा ।।

ज्ञान मिलाना है तो परमार्थ का रास्ता अपनाओ अथवा ज्ञाता लोगो की सगति करो। तभी तुम्हे ज्ञान-लाभ होगा। इसके विपरीत सगति हुई तो ज्ञान नही मिलेगा। ज्ञान मिलाने के बाद भी ज्ञान का वातावरण चालू रहना चाहिए। ज्ञान पाकर यदि ज्ञान के वातावरण मे रहने के वजाय अज्ञान के वातावरण मे रहने का मौका आयेगा तो जो ज्ञान प्राप्त किया है, वह भी नही रहेगा। यह साधारण अनुभव से जानी-मानी बात है। आप जब सतो की वाणी सुनते हैं तो दिल मे कुछ भाव जागृत होते हैं और उससे कषाय पतले पडते है। लेकिन घर जाने से पहले ही उसे भूल जाते है। सुना हुआ वह ज्ञान स्थायी क्यो नही रहा? उसका एक मात्र कारण वातावरण है। यहा से लौटते समय आपके मित्रजन एव परिवार वाले रास्ते चलते दूसरी तरह की बाते करते रहेगे। वे यह नही सोचेगे कि रास्ते मे तो प्रवचन के बारे मे चर्चा करे। लाल भवन से घर जाते समय तक तो दूसरी बात न करके प्रवचन के विषय मे, जो बाते कही गई है, उन पर चिन्तन करने का सिलसिला रहे तो फायदा हो सकता है। लेकिन आज तो इतना अन्तर आ गया कि घर जाना तो दूर रहा, अभी व्याख्यान समाप्त भी नही हुआ है और पास ही दूसरे भाई वैठे है, उनसे व्यापार सम्बन्धी वात करना शुरू कर देगे। वम्बई से आये है या विलायत से आये है, उनके साथ बातचीत का सिलसिला शुरू हो जाता है। अब वताइये दिमाग मे प्रवचन की वात घुसे कैसे? घण्टा, आधा घण्टा यहा सुनने के लिए आते है, तब भी ध्यान दूसरी तरफ रहता है तो सतो की वाणी का आप पर क्या असर हो सकता है? इसी तरह माताए व्याख्यान सुनते-सुनते जब देखती है कि पास वैठी औरत के लडका है और अपनी लडकी है। सयोग वैठे जैसा है तो वही पर वातचीत शुरू कर देती हैं। अपना सम्बन्ध, दूर की रिश्तेदारी निकाल लेगी, कुशल पूछेंगी और

व्याख्यान उठने से पहले ही बातचीत शुरू कर देगी। अब भला बताइए आपके विषय-कषाय घटे कैसे और ज्ञान की ज्योति जलती कैसे रहे ? यदि आप चाहते है कि ज्ञान की ज्योति कुछ देर तक टिकी रहे तो वैसा वातावरण रखना पडेगा।

ज्ञान पर वातावरण का प्रभाव

आपने देखा होगा ईसाई लोगो को, वे जब-जब भी गिरजाघर मे जायेंगे तो नजदीक पहुँचते ही गाडी से उतर जायेंगे और दूसरी सारी बाते छोड देंगे। आपकी तरह गिरजा मे घुसने तक वे बात नही करेंगे। चर्च से निकलने के बाद भी कुछ समय तक विचारमग्न रहेंगे। उनके मन मे वही विचारधारा चलती रहेगी। अनार्य सस्कृति मे पले है लेकिन उनके मन और दिमाग मे यही है कि रविवार सिर्फ धर्म-साधना के लिये मिलता है। तो उस दिन उनका ध्यान उसी मे लगा रहता है। जब उन्होने नियम बना लिया है कि गाडी का हॉर्न चर्च की अमुक सीमा मे नही बजायेंगे तो वे लोग उस सीमा मे हर्गिज हॉर्न नही बजायेंगे। जब वे नही बजायेंगे तो दूसरे राहगीर भी नही बजायेंगे। प्रार्थना के बीच या प्रवचन के बीच कोई बात नही करेंगे। जब आप नही बोलोगे तो दूसरे, पास वाले भी नही बोलेंगे। लेकिन अपने यहा आप पर असर कहा है। व्याख्यान हो रहा है, शास्त्र का वाचन चल रहा है, लेकिन कुछ लोग यहा बैठे बात करते रहेंगे। दरवाजे तक आयेंगे, तब तक बीडी-सिगरेट फूकेंगे। घण्टे भर यहा रहना पडेगा, इसलिये बहुत से लोग तो खा-पीकर आते है। ऐसी स्थिति मे सोचने की बात है कि धर्म-स्थान मे आते हैं तो उस समय व्यसन की चीज का इस्तेमाल बिना किये ही आवे तो कितना अच्छा रहे। ज्ञान कहा से शुरू होना चाहिए ? घर से रवाना हुए, यह सोच कर कि मन्दिर जाना है, उपासरे जाना है, या सत्सग मे जाना है। तभी से आपके मन मे, धर्म की, ज्ञान की बात पैदा होती है। वही से शान्त होकर चलना चाहिये। यदि रास्ते मे व्यसन की चीज का इस्तेमाल किया तो मन और मस्तिष्क पर पवित्र वातावरण का असर नही पडेगा। लेकिन आज आपका ज्ञान इतना मद हो चला है कि उससे वातावरण को पवित्र रखने की प्रेरणा ही नही मिलती। आज आवश्यकता इस बात की है कि सुनी हुई बात को विचार

चिंतन से दिमाग मे रखने के लिए वातावरण पैदा किया जाय। पहले के लोग व्याख्यान मे आते, ध्यान से सुनते, और घर पहुचते तब तक रास्ते मे दूसरे विषय पर बात नही करते थे। वे व्याख्यान मे सुनी हुई बातो पर ही विचार चलाते रहते थे। आप भी दो चार दिन उसी तरह से कर के देखिये कि इससे आपको कितना लाभ होता है ?

महागिरि का कार्यकाल

मै कह रहा था आर्य महागिरि ने ज्ञान की ज्योति जगाई और अच्छे वातावरण से प्रेरणा पाकर ज्ञान को आगे बढाया। उस समय छोटे-मोटे व्यवसायी, काश्तकार, और छोटे दुकानदार ही वीतराग-मार्ग के साधक नही थे। बल्कि राजघराने के लोग, सिंहासन पर बैठने वाले राजा लोग भी जैन धर्म के अनुयायी थे। भद्रबाहु और स्थूलभद्र के समय मे नन्दवश का राज्य था। उस समय के महामत्री शकडाल जैनधर्म के बडे भक्त और श्रद्धालु उपासक थे। नद वश के बाद मौर्य और गुप्तकाल मे भी सीमित पर उदार विचारधारा और ज्ञान-लिप्सा के कारण वीतराग मार्ग पर चलने वालो का उन राजवशो मे आदर और अनुपालन चलता रहा। जब तक जनता, चाहे राजा हो, चाहे प्रजा, वीतराग मार्ग का अनुसरण करती रही तब तक जन-जीवन सामान्य रूप से चलता रहा। क्योकि धर्म मानव के मन मे एक प्रकार की पवित्र भावना पैदा करता है और अपवित्र सस्कारो को रोकता है।

पितृ-आज्ञा पालन का उदाहरण

महागिरि के पश्चात् सुहस्ती के समय की बात है। बिन्दुसार के बाद अशोक हुआ। अशोक ने अपने पुत्र कुणाल को युवराज अर्थात् अपना उत्तराधिकारी घोषित कर उसे कुमार-भुक्ति के रूप मे उज्जयिनी का राज्य दिया। कुमार कुणाल का जब बाल्यावस्था मे अध्ययनकाल आया तो उस समय कुणाल की सौतेली मा यह चाहती थी कि उसके पुत्र को राज्य मिले, जबकि परम्परागत नियम अधिकार और न्याय की दृष्टि से कुणाल को राज्य मिलना चाहिये था। अशोक ने यह सोचकर कि सदा कुटुम्ब के पास मे रहने से कभी कही असमय मे कुणाल के प्राणो को खतरा पैदा न हो जाय अत उसे अवन्ती मे

रखा। जव वह ८ वर्ष का हो गया तो उसके शिक्षण के लिये राजाज्ञा की प्रतीक्षा की जाने लगी। उस समय राजवश मे मर्यादा-पालन का विशेष खयाल रखा जाता था। आज तो वडे घरो मे मर्यादा-पालन का ध्यान कम रखा जाता है, छोटे घरो मे उनकी अपेक्षा अधिक रहता है। लेकिन जब हमारे देश का स्वर्णयुग कहलाता था, उस समय राजवश और उत्तम घर के उच्च कुलो मे मर्यादा-पालन की ओर ज्यादा ध्यान रखा जाता था। 'वडे घरो की बडी मर्यादा'–यह कहावत राजस्थान मे आज भी प्रचलित है। आने वाले को आदर देना, हस कर वोलना, यह वडे घरो की चाल है। जब वडे घरो मे भी सम्बन्ध दूसरी तरह के हो जाते है, मन पर हुकूमत का नशा छा जाता है, तव मर्यादा की वात खत्म हो जाती है। लेकिन उस समय ऐसा वातावरण नही था, इसलिये अशोक के आदेश की प्रतीक्षा हो रही थी। अशोक को पता चला कि कुमार की आयु ८ वर्ष हो गई है, तो उसने पत्र मे आदेश लिखा 'अधीयतु कुमार।'

पत्र लिख कर अशोक ने उसे एक स्थान पर रखा और आवश्यक कार्य से वाहर चला गया। तव रानी ने जानना चाहा कि पत्र मे क्या लिखा है। जब रानी ने पढा–'अधीयतु कमार' तो उसने सोचा कि यह उसके पुत्र के हित मे नही है। उसने कज्जल की सलाका भरी और उस पत्र मे 'अ' पर विन्दी लगा दी। इससे क्या हो गया ? 'अंधीयतु कुमार'। राजा आया और उसने विना पढे ही पत्र वन्द कर दिया। पत्र लेकर सेवक अवन्ती पहुँचा और कुमार के हस्तगत किया। कुमार ने पत्र पढा, पिताजी ने आज्ञा दी है और लिखा है–"अंधीयतु कुमार"। पिता ने लिख दिया कि पुत्र को अंधा कर दिया जाय। उस समय पुत्र के दिल मे पिता के प्रति इतना आदर था कि नन्नोनच तक नही की। उसने 'तथास्तु' कह दिया। उसने पिता के इन्साफ मे अविश्वास करने की आवश्यकता नही समझी। उसने सोचा कि घर का न्याय घर मे ही करना चाहिये। जिस घर का न्याय दूसरो को करने का मौका आ जाय तो समझना चाहिये कि घर की तेजस्विता समाप्त हो गई है। अपना विवाद खुद ही सुलझा ले तो किसी को कहने का अवसर नही आता। जब कभी

पति-पत्नी के बीच तकरार होती हो या पिता-पुत्र के बीच, भ
के बीच मानसिक मान-मर्यादा, विचार-भेद या मन्तव्य-भे
उलझन हो जाय, ऐसे प्रसग जीवन मे आते रहते हैं, तो इ
के प्रसगो पर चतुराई इसी मे है कि चाहे त्रुटि किसी की हो,
समस्या को घर ही मे, आपस मे बैठकर निपटा लिया जाय
बाहर के लोगो को पता भी न चले कि आपस में मन-मुटाव था।

जैसे एक दर्जी कपडा सीता है। वह पहले कपडे को फाड
उसके टुकडे करता है, फिर उनको सीता है। कोट बनाना है,
बनाना है या सूट बनाना है, आपने चाहे उसे टेरेलिन का थान
है तो भी वह पहले कैंची लगाकर दो-तीन टुकडे करेगा। बाह
अलग, गर्दन के अलग, पीठ के अलग। इस तरह से कई टुकडे करे
कोई उसको मूर्ख कहे तो ? पहले टुकडे किये फिर विधि से उ
उनको जोडने का काम किया और उन टुकडो को सीकर पेण्ट, व
या सूट बना दिया। दूसरे ही क्षण देखने वाला देखेगा कि उ
कपड के टुकडे करके इतना सुन्दर सूट तैयार कर दिया है। आ
जैसा कपडा दिया था, वैसा ही यदि वह रख देता तो सुन्दर सूट न
बन सकता था। कारीगर कपडे को फाडना जानता है तो फाड
उसे जोडना भी जानता है। फाड कर जोडने वाला क्या होता है
कारीगर। कभी लाल मु ह का मथुरा का मेहमान आ जाय तो व
करे ? उनको कपडा फाडना तो आता है लेकिन जोडना नही आत
उनको कहते है, बन्दर। कारीगर जो फाड कर जोडने वाला है, क
कर सिलाई करने वाला है, उसको आप बन्दर नही कहेगे क्यों
वह जोडने वाला है। मतलब कहने का यह है कि जो मनुष्य अप
घर के झगडो को, घर की उलझनो को घर मे ही निपटाना जान
है, वही कुशल कहलाता है। उसके लिये दूसरो के निर्देश व
आवश्यकता नही रहती।

कुमार कुणाल ने सोचा कि पिताजी ने लिखा है। चाहे उनक
फैसला दूसरो की नजरो मे गलत ही हो, लेकिन जब उन्होने क
दिया कि अन्धा कर दिया जाय तो उनकी आज्ञा का पालन करन
ही चाहिये। उसने गर्म सलाई ली और अपनी आखो मे डालकर
अन्धा हो गया। कर्त्तव्यशीलता का कैसा उत्कृष्ट उदाहरण है ? आज

के मानव का मस्तिष्क इसे शायद अच्छा नही समझेगा, लेकिन उस युग मे अच्छे-बुरे का प्रश्न इतना महत्त्व नही रखता था जितना कि कर्तव्यशीलता का खयाल था। इसलिए वह अंधा बन गया। अन्धा हो जाने से कुणाल का राज्य का अधिकार जाता रहा। वास्तव मे - राजगद्दी पाने का अधिकारी कुणाल था लेकिन उस समय भी शासनतत्र की मर्यादाए थी। अन्धा राजगद्दी पर नही बैठ सकता था। उसी तरह व्यभिचारी को भी राजगद्दी का उत्तराधिकारी नही बनाया जाता था।

कहने का अर्थ इतना ही है कि अशोक की आज्ञा का पालन करके कुणाल अन्धा हो गया। इतना होते हुए भी उसके मन मे मालिन्य नही हुआ। अशोक को जब इस बात का पता चला तो उसको बडा दु:ख हुआ। उसने विचार किया, उसके द्वारा लिखे हुए पत्र का गलत उपयोग कैसे हुआ ? भीतर की बात का उसे पता नही था। जब वास्तविकता का पता चलता है, तब उसका मन दुखित हो जाता है। मोह होना और स्नेह होना, इन दोनो मे अन्तर है। अपनी सतान से मोह करने के लिये दूसरी की सतान को अंधा कर देना यह सीमा के बाहर का मोह है और किसी भी योग्य माता मे, योग्य नारी मे, इस प्रकार की दुर्बल मनोवृत्ति न रहे, उसके लिए अच्छे सस्कारो की जरूरत रहती है।

महागिरि के समय मे इसी तरह बिन्दुसार जैसे एक राजा का शासन रहा और जिनशासन की सेवा करने मे भी उसका अपना योगदान रहा। बिन्दुसार के बाद अशोक और अशोक के पश्चात् कुणाल का पुत्र सम्प्रति राजा बना। अशोक द्वारा कुणाल-पुत्र का नाम सम्प्रति रखा गया। जब कुणाल को पुत्रलाभ हुआ तब वह अपनी कुल परम्परानुसार राज्य पाने का अधिकारी हो गया। कुणाल जब अंधा हो गया तो उसने सोचा कि वह अपना जीवन सुख से कैसे बितावे ? इस हेतु उसने सगीत और काव्य मे रुचि लेना प्रारम्भ कर दिया। एक कहावत है -

> काव्यशास्त्रविनोदेन, कालो गच्छति धीमताम्।
> व्यसनेन च मूर्खाणां, निद्रया कलहेन वा॥

अच्छे आदमी के लिये समय बिताने का तरीका भी अच्छा ही होना चाहिये। क्योकि अच्छा आदमी अपना समय यदि गलत ढग से बितायेगा तो उसके अच्छेपन मे एक प्रकार का धब्बा लगेगा। प्रत्येक समझदार व्यक्ति को चाहिये कि वह अपने अवकाश के समय का सदुपयोग करे। आज खुशहालियत मे रहने वाले लोग चाहे सेठ हो, चाहे अधिकारी हो, चाहे और कोई हो, अधिकाश लोगो की यह मनोवृत्ति हो गयी है कि रविवार का दिन है, अवकाश का दिन है, चलो १० आदमी मिलकर ताश खेलेगे, चौपड, शतरज या और किसी तरह का खेल खेलेगे अथवा किसी क्लब मे जायेगे। मनमानी मौज होगी, मनोरजन होगा। और मनोरजन मे अच्छाई एव बुराई का खयाल भूल गये तो अच्छे आदमी का अच्छापन क्या रहेगा? उसके पीछे क्या चाहिये? विवेक, बुद्धि, और जागरण चाहिये। आप कहेगे कि रविवार के दिन तो कुछ मन प्रसन्न करने के, विनोद के भी साधन होने चाहिये, अन्यथा क्या मन मसोस कर मर जावे? ठीक है, मन मसोस कर मरना नही है, दिल बहलाने के लिए और खुशहाली मे समय गुजारने के लिए मनुष्य के सामने अवलम्बन जरूरी है। लेकिन इसका मतलब यह नही है कि मनोरजन निरर्थक खेल से, अश्लील गानो से, अश्लील नाटक-नृत्य देखने से या इसी तरह की ओर चीजो से करे। यह मनुष्य समाज के लिए शोभनीय नही है। मनुष्य समाज के कई वर्ग है – आर्य-अनार्य सभ्य-असभ्य, इत्यादि। असभ्यो के मनोरजन का तरीका दूसरा है और सभ्यो – ज्ञानियो के मनोरजन का तरीका दूसरा है। बच्चे यदि मनोरजन करेगे तो गिल्ली-डडा और धूल मे खेलेगे। धूलि उछालेगे, एक के ऊपर दूसरा बैठ जाएगा घोडा बनाकर। ऐसा मनोरजन आपको करने के लिए कहा जाय तो क्या आपको अच्छा लगेगा? नही। लेकिन बच्चो को कैसा लगेगा? बच्चो को यह अच्छा लगेगा। एक को घोडा बना लेगे दूसरा उस पर सवार हो जायेगा। उनको मान-अपमान का खयाल नही होता। कई जगह एक दूसरे को कोडा मारते है और इसमे भी मनोरजन मानते हैं। आपको यह तरीका पसद आएगा या नही? इसका मतलब यह हुआ कि अलग-अलग लोगो के मनोरजन का तरीका अलग-अलग है। आर्यो और ज्ञानियो के मनोरजन का तरीका भी

दूसरा है – 'काव्य शास्त्र विनोदेन'। अवकाश का समय है तो कुछ लोग धार्मिक गोष्ठी करेंगे, विचार करेंगे, स्वाध्याय करेंगे, प्रश्नोत्तर करेंगे। ज्ञान-गोष्ठी के द्वारा आमोद-प्रमोद के समय चर्चा करेंगे। ज्ञान-मार्ग को समझने के लिये चर्चा करेंगे। उससे भी मनोरजन किया जा सकता है। ऐसे मनोरजन से एक पथ दो काज हो जायेंगे। मन का आमोद-प्रमोद करना भी हो गया और समाज की स्थिति पर विचार भी हो गया। कुणाल सगीत साहित्य द्वारा अपना मनोरजन करता था।

जव कुणाल के यहा पुत्र-जन्म हुआ तव पाटलीपुत्र पहुँचा और पिता के सामने सगीत सुनाया। सगीत सुनकर पिताजी वहुत प्रसन्न हुए और वोले – "माग क्या चाहता है ?" तव उसने कहा कि उज्जयनी का राज्य चाहता हूँ। अशोक कहने लगा कि तुम तो अन्धे हो राज्य का क्या करोगे ? उसने कहा – 'पुत्राय' पुत्र के लिए राज्य चाहता हूँ। राजा ने पूछा – "तुम्हारे पुत्र कव हुआ ?" उसने उत्तर दिया – "सम्प्रति" अर्थात् अभी हुआ है। सस्कृत मे सम्प्रति अभी को कहते हैं। राजा वडा प्रसन्न हुआ और वोला – "तुम्हारे पुत्र हुआ है मेरा पौत्र, – वडी खुशी की वात है। उसी वक्त उज्जयिनी का राज्य सम्प्रति के लिए लिख दिया। आगे चलकर जिनशासन की गौरव-पताका ऊँची उठाने के लिए, शासन और धर्म की सेवा करने के लिए सम्प्रति ने क्या-क्या प्रयत्न किये, अपना तन, मन, और धन किस प्रकार अर्पित किया, यह सव फिर कभी आपके सामने प्रसग होगा तो वतलाया जायगा। अभी महागिरि का प्रसग चल रहा है।

स्वाध्याय करें

महागिरि ने अपनी वुद्धि और गुणो से श्रीमन्तो और सामान्य प्रजाजनो को प्रतिवोधित किया। उन्होने समझाया कि मानव को यदि मानव-समाज मे गलत प्रवृत्तियो को रोकना है तो उसे चाहिये कि वह अपने जीवन के एक-एक क्षण का सदुपयोग करे। सवसे पहले विचारो मे ज्ञानवल प्रवाहित होना चाहिए। ज्ञान प्राप्त होता है सत्सग से और स्वाध्याय से। अव प्रश्न यह है कि स्वाध्याय किसको कहते हैं। स्वाध्याय का मतलव है स्व-अध्ययन, अपने आपको पढना। इसके दो अर्थ हो गये। एक तो विना किसी गुरु की प्रेरणा

के अथवा बिना गुरु की उपस्थिति के अपने आप पढे और दूसरा अर्थ है अपने आपको पढे-पढावे। लडका कौन सा पास होगा ? एक तो मास्टर जब तक क्लास मे छडी हिलाता है, तब तक क्लास मे बैठता है। गुरु के बिना खुद नही पढता। जो लडका मास्टर के पास पढता है और वह भी आज के मास्टर के पास, जिसका पढाने का ढग निराला होता है। क्या वह बिना पढे पास हो जायगा ? मैं यह नही कहता कि सारे शिक्षक उपेक्षा भाव से पढाने वाले है। लेकिन जो बहुलता से देखा जाता है, उसी की बात की जाती है। आज का मास्टर क्लास का घण्टा या पीरियड चलता है, उसमे आकर स्पीच देगा और उस समय जिस बच्चे के पल्ले पड गया, जिसने ध्यान से सुन लिया तो ठीक है और यदि किसी के पल्ले नही पडा तो यह उसके भाग्य की बात है। बच्चे क्लास के पीरियड मे पढने मात्र से उत्तीर्ण नही होते। यदि बच्चे घर पर अध्ययन नही करे तो पास नही हो सकते। जो स्वय अध्ययन करेगा, वही बच्चा उत्तीर्ण होगा और जो स्वय अध्ययनशील नही है, वह फेल होगा। जिस प्रकार व्यावहारिक ज्ञान के लिए स्वय अध्ययन करने की जरूरत है, वैसी ही जरूरत आध्यात्मिक ज्ञान के लिए भी है। सीधा-सा उदाहरण है। व्याख्यान हो रहा है, तब तक तो आपने हमारी बात सुनी लेकिन घर जाने के बाद अपने आप पढने का रास्ता किसी ने नही बनाया तो ज्ञान के प्रकाश से वचित रह जायेगे। जब तक स्वय पढने का अभ्यास नही करेगे, तब तक ज्ञान का प्रकाश कैसे आयेगा ? इसका यह मतलब नही है कि आपको या आपके बच्चो को पढने का समय नही मिलता, समय मिलता है लेकिन कमी इस बात की है कि समय का सदुपयोग नही करते। आदमी को खाने के लिए समय मिलता है, कमाई के लिए अथवा आराम के लिए समय मिलता है, व्यवहार के लिए समय मिलता है, तो फिर स्वाध्याय के लिए समय क्यो नही मिलता ? उपन्यास पढना होगा तो तैयार है। यदि आप से मै एक प्रश्न का उत्तर पाना चाहूँ तो उत्तर देगे ? ऐसे कितने घर है जहाँ नोविल – उपन्यास न पढे जाते हो और ऐसे घर कितने हैं, जिन घरो मे धार्मिक पुस्तको का अध्ययन होता हो ? ऐसे युवक, जिन्होने उपन्यास नही पढा हो, कितने हैं, हाथ उठाकर बता सकते हैं ? धर्म-ग्रन्थ जिन्होने पढे है, ऐसे युवक कितने हैं ? धर्म-ग्रन्थ पढने वालो की

नामावली कम मिलेगी। आपने इसकी उपेक्षा मे बहुत समय गुजार दिया। जव तक श्रद्धा का युग था, भक्ति का युग था, विश्वास का युग था, तव तक तो आप नही पढते तो भी कोई हर्ज नही था। लेकिन अव श्रद्धा का युग चला गया, भक्ति का युग नही रहा। अव क्या आया है? बुद्धिवाद का युग, विज्ञान का युग आ गया। आपके पिताजी, दादाजी, माताजी मे धर्म के प्रति कितनी श्रद्धा थी और आज आप मे कितनी श्रद्धा है? उनको देखकर आपके मन मे भी आता होगा कि माताजी वडो धर्मात्मा है, रोज सामायिक करती है, धर्मध्यान करती है, उनकी तरह हमे भी करना चाहिए। इस चीज को आपका दिमाग क्या मजूर कर लेता है? आज के दिमाग को ज्ञान चाहिये लेकिन तर्क के साथ, योग्यता के साथ मिलाया हुआ ज्ञान चाहिए। यह विना स्वाध्याय के नही मिल सकता। इसलिए यदि अपनी भावी पीढी को और समाज को धर्म के रास्ते पर लाना है, तेजस्वी वनाना है तो स्वाध्याय का घर-घर मे व्यापक प्रचार होना चाहिये। जैसा कि कवि ने कहा है –

मनोरजन नोविल पढते हो, यात्रा-विवरण भी सुनते हो।
पर निजस्वरूप ओलखने को, स्वाध्याय करो स्वाध्याय करो॥

जिनराज भजो सव दोष तजो, अव सूत्रो का स्वाध्याय करो।
मत खेल कूद निद्रा विकथा मे, जीवन धन वरबाद करो॥

सद्ग्रन्थ पढो, सत्सग करो, स्वाध्याय करो, स्वाध्याय करो।
मन के अज्ञान को दूर करो, स्वाध्याय करो, स्वाध्याय करो॥

यदि जीवन मे अज्ञान के अन्धकार को दूर करना है, अपने हित और अहित की वस्तु को जानना है, तो उसके लिए स्वाध्याय करना जरूरी है। जो वाते मै इतने समय मे कह गया हूँ, इन वातो को आप खुद चितन के द्वारा अपने मन मे जव जानोगे, तभी, मैं समझता हूँ, उसका असर मेरे द्वारा सुनाये गये विचारो से अधिक पडेगा। मन से आप सोचेगे तभी असर अधिक होगा। एक तो माताजी ने कहा, पिताजी ने कहा, या किसी वयोवृद्ध ने कहा कि वेटा! स्वाध्याय करो, सत्सग करो, साधना करो तो उसका कुछ मामूली असर पडा लेकिन जव वच्चे ने स्वय सोचा – "मुझे स्वाध्याय करना चाहिये, सत्सग मे जाना चाहिये, अवकाश के दिन इधर-उधर

भटकूँगा तो फालतू दिन जायगा। कमाई से वंचित रहा और ज्ञान से भी वंचित रहा तो दोनो तरफ से नुकसान उठाना पडेगा। तो क्यो नही पाच-दस मित्रो को लेकर स्वाध्याय करूँ।" इस प्रकार के विचार यदि बच्चो और तरुणो के मन मे उत्पन्न हो तो उसका असर दूसरो के द्वारा कही गई बात की अपेक्षा बहुत अधिक होगा। कवि ने कहा है – "काव्य शास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।" मनोरजन के लिये आप नोविल पढते है, यात्रा-विवरण भी पढते है। आजकल तो बच्चे ही क्या, पढी-लिखी बालिकाए भी नोविल पढती है। उनको धर्मग्रन्थ पढने का मौका नही मिलता है। धर्म-ग्रन्थो के बारे मे उनकी शिकायत है – "प्राकृत और सस्कृत भाषा मे होने के कारण समझ मे नही आते। इसलिए उपन्यास पढती हूँ और कुछ सचित्र मासिक पत्र-पत्रिकाएँ आती है, उनको भी पढती हू।" बडे-बडे घरो मे धार्मिक पत्र-पत्रिकाए तो भले ही नही आती हो पर सचित्र मासिक पत्र-पत्रिकाए अवश्य आती है, जिनको बालक-बालिकाएँ पढती हैं। लेकिन जिनकी धर्म-बुद्धि जागृत है और पढने की इच्छा है, वे अधर्म की तरफ ले जाने वाली ये पुस्तके नही पढेगे। आजकल बहुत सा धार्मिक साहित्य निकल रहा है, उसको पढने का इन्हे मौका मिले तो उससे दिमाग मे विचार जमेगे, धर्म की तरफ रुचि बढेगी और तभी श्रद्धा तथा धर्म की इमारत टिक पायेगी। इसलिए बालक-बालिकाओ को गलत तरीके के उपन्यास जैसे – जासूसी, प्रेम-प्रधान, काम वासना के भाव पैदा करने वाले उत्तेजक उपन्यास नही पढने चाहिए तथा अपने समय का सदुपयोग धार्मिक साहित्य के स्वाध्याय मे करना चाहिये। ऐसे उपन्यास पढने से हल्का मनोरजन होने के अलावा और किसी तरह का लाभ नही है। हाँ, कतिपय विशिष्ट लेखनी से लिखे हुए चन्द उपन्यासो को आप अपवादस्वरूप निकाल दे, यह अलग चीज है, वरना शृगाररस से सम्बन्धित उपन्यास, जासूसी उपन्यास, हास्यरस के उपन्यास नही पढने चाहिए। इस तरह के निकम्मे उपन्यास पढने से दिमाग पर उल्टा असर पडता है। रवीन्द्रनाथ जैसे लेखको के साहित्य या महान् लोगो के जीवनचरित्र आदि पढने वाले विरले ही लोग होते है। ज्यादा उपयोग किसका होता है? हमारे बालक और तरुण गहराई से सोचे। इससे कितना समय और शक्ति का

अपव्यय होता है ? उपन्यास पढकर किसी मे श्रद्धा-भाव आया हो या विनय-भाव आया हो, ऐसा नमूना देखने को नही मिलता। जिस चीज मे नफा कम हो और नुकसान ज्यादा हो, वह लेने लायक नही होती है। उपन्यास के बारे मे आप विचार करेंगे तो इसमे नफा कम है और टोटा ज्यादा है, यह मानकर चलना चाहिये। इसके बजाय यदि आप आध्यात्मिक साहित्य पढेंगे, धार्मिक ग्रन्थ पढेंगे सद् ग्रन्थ पढेंगे अथवा महापुरुषो के जीवन चरित्र पढेंगे तो उनसे केवल मुनाफा ही मुनाफा होगा और घाटा कुछ नही होगा।

आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि जर्मन विद्वान् और अमेरिकन विद्वान् जैन-धर्म के ग्रन्थ पढते है। नही समझ मे आवे तो भी कोशिश करते है। उनके पढने के लिए और चीजे नही है क्या ? वे जैन-धर्म के आध्यात्मिक ग्रन्थो का अनुवाद करवा कर भी उनको पढने मे अपना समय क्यो देते है ? इसलिए कि वे उनसे ज्ञान प्राप्त करने की उत्कण्ठा रखते है। आश्चर्य तो इस बात का है कि आप घर की चीज की कीमत नही करते, उसका मूल्य नही समझते हैं। बाहर के विद्वान् तो लदन मे ऋषभ लाइब्रेरी खोल रहे हैं क्योकि वे जैन-धर्म की कद्र करते है। हमारे पुराने ग्रन्थो का सग्रह कर रहे है। वे लोग यह समझते हैं कि भारत मे जैन साहित्य और बौद्ध साहित्य का अमूल्य खजाना है, जो उनके वहाँ नही मिलता। उनके वहाँ ज्ञान का उदय हुआ है जबकि भारत मे ज्ञान का उदय और विकास दोनो हुए है। इस तरह से वे लोग हमारे साहित्य की उपयोगिता समझते हैं। लेकिन हम अपने घर मे निधि होते हुए भी यदि उसकी उपयोगिता नही समझ पायेंगे तो ध्यान रखने की बात है कि विदेशियो के सम्मुख अपने को गर्दन नीची करनी पडेगी। मान लीजिये कि आप मे से कोई व्यवसाय के कारण विलायत चले गये या घूमने के लिए अमेरिका अथवा जर्मनी चले गये। आप विदेशी से मिले, उनसे हाथ मिलाया तथा किसी तरह से उसको मालूम हो गया कि आप जैन है और वे आप से पूछ बैठे कि जैन-धर्म मे क्या खूबी है, साधना क्या है ? तत्त्व क्या है ? इन सब के बारे मे वे आपसे १५ मिनट के लिए जानकारी चाहेगे तो क्या आप उनको जानकारी दे सकेंगे ? यदि आप स्वय जानकारी नही रखते तो

आपको गर्दन नीची करनी पडेगी और आप कहेगे कि धर्म की वाते समझने का काम तो महाराज का है । क्या आप ऐसा कह कर गौरव का अनुभव करेंगे ? इसलिए जरा सोचिए, आप मनोरजन के लिए उपन्यास पढते है, यात्रा विवरण पढते हैं अथवा और तरह की किताबे पढते है, इस तरह की किताबें पढने के लिए तो आपके पास समय है, लेकिन स्वाध्याय करने के लिए समय नही है, ऐसा कोई कारण नही। अत स्वाध्याय के लिए भी रुचि उत्पन्न कीजिये, समय निकालिये ।

मै आपको महागिरि के समय की वात बता रहा था। समय के अभाव मे वह प्रसग आगे कभी बताया जाएगा। सत्सग और स्वाध्याय जीवन को ऊँचा उठाते हैं। आप भी जीवन के परम तत्त्व को समझ कर ज्ञान और स्वाध्याय का महत्त्व घर-घर मे, मोहल्ले-मोहल्ले मे, गाँव-गाँव मे फैलाकर ज्ञान का विकास करेंगे, जन-मन को जागृत करेंगे तो अज्ञान का अधकार दूर होगा ।

मानव मन, क्रोध, मान, माया, लोभ और तीव्र कषायो से घिरा हुआ है। स्वाध्याय से ज्ञान की उपासना बढेगी और ज्ञान की उपासना बढेगी तो समाज मे शान्ति होगी, राष्ट्र मे शान्ति होगी, विश्व मे शान्ति होगी। ऐसा समझ कर ज्ञान के मार्ग पर जो व्यक्ति अग्रसर होगा, उसका इहलोक और परलोक मे कल्याण होगा ।

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति

राजकुमार भी आये थे, राजकुमारियाँ भी आई थी, श्रेष्ठिपुत्र भी आये होगे, दूसरे छोटे-मोटे जमीदार भी आये होगे। लेकिन गौतम की नजर सुबाहु पर क्यो ठहरी ? सुबाहु की योग्यता उसकी आधिकारिक भावना, बाहर का रग-रूप, मोहकता – ये सारी बाते सुबाहु मे थी, क्या इसलिये गौतम की निगाह उस पर ठहर गई ? ऐसा समझना ठीक नही होगा। सुबाहु की जो विशेषता गौतम ने देखी थी, वह आन्तरिक थी। साधारण आदमी भले ही कह सकता है कि सुबाहु का रूप और आकर्षण देखकर जरूर गौतम स्वामी प्रभावित हुए होगे। लेकिन हम गहराई से सोचेगे तो समझ पायेगे कि सुबाहु का बाह्य-शारीरिक रूप देखकर नही अपितु उसका आन्तरिक स्वरूप देखकर ही गौतम स्वामी उससे प्रभावित हुए थे। वस्तु को देखकर अलग-अलग तरह की जानकारी होती है। उसके वास्तविक आभ्यतर रूप को देखने के लिए अन्त करण मे ज्ञान का प्रकाश प्रकट होना चाहिये।

भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान का अन्तर

मोक्ष-मार्ग के रूप मे जो ज्ञान बताया गया है, वह जीव, अजीव, आदि तत्त्वो के वास्तविक एव आभ्यतर रूप को देखने वाला आभ्यतर ज्ञान है। साधारण भौतिक पदार्थ जिससे हम देखते है, जानते है, उस देखने-जानने वाले ज्ञान का मोक्ष-मार्ग के भीतर समावेश नही किया गया है। मोक्ष-मार्ग के ज्ञान का और भौतिक दृष्टि से किसी वस्तु को देखने, जानने वाले ज्ञान का स्वरूप कैसा होता है, इन दोनो मे क्या अन्तर है, तथा वस्तु के साथ जानने योग्य तीन चीजें क्या-क्या है, इस विषय पर थोडा-सा विचार आपके सामने किया जा रहा है।

ज्ञातव्य तत्त्व

ज्ञातव्य तत्त्व तीन है, द्रव्य, गुण और पर्याय। इनके लक्षण इस प्रकार बताये गए है –

> गुणाणमासओ दव्व, एगदव्वस्सिया गुणा।
> लक्खण पज्जवाण तु, उभओ अस्सिआ भवे ॥

एक द्रव्य के अन्दर रहने वाले अनेक गुण, स्वभाव क्या कहलाते है, एक छोटा सा उदाहरण देकर बताया जाता है। जैसे मिश्री मे

मिठास है, वह उसका रस गुण है। उस मिश्री मे रग गुण भी है या नही ? उसमे श्वेत रग है, वह उसका रग गुण है। मीठापन रसगुण है। यदि मिश्री को पानी मे डाला जाय तो उसका मोहक रूप-गुण, गध-गुण और स्पर्श-गुण – सब पानी मे घुल जायेगे। यदि पानी मे नही डाले तो देखने मे पासे के समान सुन्दर दिखेगी, स्पर्श भी उसका कठोर होगा, यदि हाथ से तोडने की कोशिश करेगे तो कभी-कभी खून भी आ सकता है। तो उसका आकार भी है, सफेद रग भी है, स्पर्श भी है, मिठास भी है। एक मिश्री द्रव्य मे वर्ण, गध, स्पर्श, आकार, ये सब क्या हुए ? गुण यानि स्वभाव। हमे जड-धर्म की अपेक्षा चेतन धर्म पर ही अधिक बात करनी है। यह तो वस्तु का स्वरूप समझाने हेतु आपके सामने उदाहरण रखा गया है। द्रव्य, गुण और पर्याय क्या है ?

गुण और द्रव्य की बदलती अवस्था का नाम पर्याय है। इस प्रकार गुण, द्रव्य और पर्याय – ये तीन चीजे याद रखिये। द्रव्य क्या है ? आत्मा और अनात्मा अर्थात् चेतन और जड – ये दो मुख्य भेद है द्रव्य के। आत्मा का गुण चेतना, जानना, समझना, बोध करना, सुख-दुख का अनुभव करना, सोचना है, ये सारी चेतना की शक्तियाँ है। इन गुणो की बदलती हुई दशा पर्याय है। चेतन कभी खुश नजर आता है, कभी नाखुश नजर आता है, कभी उसमे ज्ञान का भाव नजर आता है, कभी अज्ञान-भाव, कभी प्रसन्नता का भाव नजर आता है, कभी चेहरा दमक रहा है, कभी कुन्द हो गया। सुबह चेहरा कैसा था, मध्याह्न मे चेहरे की रगत बदल गयी। यह सब पर्याय हैं। जैसे तन की दशा बदलती है, वैसे ही मन की दशा बदलती है। इस बदलती हुई दशा का नाम पर्याय रखा है।

ज्ञाते तत्त्वे क· ससार :

कविवर विनयचन्द जी ने स्वर्ण तथा विविध स्वर्णाभूषणो के दृष्टात से द्रव्य, गुण, पर्याय के स्वरूप अर्थात् पदार्थ के उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य स्वभाव को बडे ही सुन्दर रूप मे समझाया है। द्रव्य, गुण एव पर्याय का बोध हो जाने पर अर्थात् जड और चेतन का वास्तविक स्वरूप ज्ञात हो जाने पर मानव का मन चचलता, हर्ष और शोक के चक्कर मे नही पडेगा। हर्ष और शोक के चक्कर से

बचने के लिए वास्तव मे सम्यक् ज्ञान की आवश्यकता बताई है। तत्त्वो के वास्तविक स्वरूप को समीचीनतया समझ लेने का नाम ही सम्यग्ज्ञान है। कमाने, खाने, पीने, पहनने, राज करने, ग्राहक पटाने के ज्ञान का नाम सम्यग्ज्ञान नही। अधिकार प्राप्त करना, बिगाडना, अनुकूल करना, यह सब सम्यग्ज्ञान नही, यह तो व्यावहारिक ज्ञान है। सासारिक व्यवहार मे व्यवहार ज्ञान का उपयोग होता है। पर सम्यग्ज्ञान का उपयोग मोक्ष-मार्ग के साधन के रूप मे है। स्व – पर कल्याण के लिये जिस ज्ञान की उपयोगिता है, वह सम्यक् ज्ञान है। द्रव्य, गुण और पर्याय की सही स्थिति काव्य की भाषा मे इस प्रकार कही गई है –

एक द्रव्य मे गुण अनन्त होते है।
पर्यायो मे परिवर्तन चलते है।।
द्रव्य दृष्टि से नित्य वस्तु को जाना।
पर्यायो मे प्रतिपल नाश पहिचाना।।
जग रचना मे कोई नही नवाई।
भव-भव सचित होता कर्म विलाई।।
मोक्षार्थी जन सुनो एक चित्त लाई।

कोई मानव शोक तब करता है, जब द्रव्य को भुलाकर पर्याय मे उलझता है। पर्याय की निशानी द्रव्य का बदलता हुआ स्वभाव है। हमारी नजर चाहती है कि सदा एक तरह की सुखद स्थिति रहे। जैसी अवस्था आज है, वैसी ही सदा बनी रहे। जैसा एक बच्चा व्यवहार करता है वैसा करता रहे। जैसा शरीर है वैसा बना रहे, आज जैसा है, वैसा सदा रहे। लेकिन पर्याय कहता है कि जैसा एक क्षण मे हूँ वैसा दूसरे क्षण मे रहने वाला नही। पर्याय बदलने वाली दशा है लेकिन आप टिकने वाली दशा चाहते हैं। कविवर विनयचन्द जी ने भगवान् महावीर की स्तुति करते हुए द्रव्य, गुण, पर्याय के स्वरूप का स्पष्ट और सुन्दर रूप मे दिग्दर्शन कराया है –

श्री महावीर नमो वर नाणी।
शासन जेहनो जाण रे प्राणी।।

ज्यू कचन तिहु काल कहीजे।
भूषण नाम अनेक रे प्राणी।।

त्यू जग जीव चराचर जोनी।
हे चेतन गुण एक रे प्राणी – श्री महावीर०

कविराज विनयचन्द्र जी भगवान् महावीर को नमन कर अपने मन की बात कह रहे है – "ज्ञान वालो को नमन करो।" ज्ञान वाले कैसे ? तो कहा – वरनाणी अर्थात् उत्तम ज्ञान वाले। अच्छा ज्ञान तो साधारण सम्यग्ज्ञानी का भी होता है। पर महावीर का ज्ञान सर्व श्रेष्ठ है – पूर्ण है। ऐसे श्रेष्ठ ज्ञानी महावीर को नमस्कार।

अविनाशी आत्मदेव

विविध दशाओ मे जिस प्रकार कचन तीनो काल मे मूलत समान रूप मे विद्यमान रहता है, उसी प्रकार आत्मदेव भी विविध योनियो मे जन्म-मरण के अनादिक्रम के उपरान्त भी अपने शाश्वत् अविनाशी स्वरूप मे विद्यमान रहता है। सोना अनेक दागीनो के रूप मे वदलता हुआ, चक्कर काटता हुआ भी शुद्ध सोना हैं। पिता, पितामह के समय के पुराने दागीनो को तोडकर, गलाकर नया वना लिया। दादी के हाथ का या दादाजी के हाथ का दागीना गला दिया, नया वना लिया फिर भी आपको इसका रज नही होता।

दादाजी, परदादाजी जिस मकान मे रह रहे थे, उस पत्थर के मकान को गिराकर वहाँ उसके स्थान पर नयी कोठी वना ली। दादाजी पुराने मकान मे रहते थे और उस जगह पिताजी का जन्म हुआ था, उस मकान का रूप वदल गया। वे पुराने कमरे तुडवा दिये गये, दीवारे तडवा दी गई और उस जगह नई कोठी वना ली गई तो क्या इससे आपके वच्चे नाराज होगे ? नही। इस प्रकार यदि आपने रहवास का पुराना मकान वदल कर सुन्दर कोठी वना ली तो नाराज क्यो नही होते ? जरा सोचिये। आप यह अच्छी तरह जानते है कि जिस प्रकार पुराने जेवर को तुडवाने और उससे नया जेवर घडवाने मे सोना अपने वास्तविक रूप मे विद्यमान रहता है, उसी प्रकार एक प्राणी की मृत्यु के पश्चात् भी अविनाशी आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप मे विद्यमान रहता है। ऐसी स्थिति मे यदि अपने सामने एक वच्चा, मित्र, साथी, अथवा परिवार का कोई व्यक्ति शरीर छोडकर दूसरे नये शरीर मे, नयी कोठी मे चला गया तो इसमे रज किस वात का, दु ख किस वात का ? पर वस्तुस्थिति यह

है कि अपने प्रियजन के मरने पर लोग रज करते है, दु ख क
सुवह, शाम, रात, दिन, हाय-हाय करते है, रोते है बिल
क्योकि उन्होने पर्याय को पकड रखा है। यह भूल गये ि
मात्र नित्य है। आत्म-द्रव्य भी नित्य है, लेकिन वह शरीर क
से प्रतिपल वदल रहा है, मद गति से। और फिर शरीर छोड
उस समय तीव्र गति से वदलता है। मन्द गति से होने वाला नि
का परिवर्तन दु खद नही होता। धीरे-धीरे अवस्था चढती है,
ढलती है, वूढे होते है और बुढापे के बाद धीरे-धीरे एक दिन
जाते है। पर एक ३० वर्ष के नौजवान के दाँत गिर जाय, इ
से दिखना वन्द हो जाय, वाल पक जाय तो ? दु ख होता
परिवर्तन होना निश्चित है लेकिन एक परिवर्तन होता है धीरे-धी
५०-६० वर्ष की उम्र होने पर घुटनो मे दर्द होता है।

एक तो आप हम मे से कोई ७५-८० वर्ष की आयु के है उन
घुटनो मे दर्द होता है, वह तो अपेक्षित है। यदि ३०-४० वर्ष की आ
वाले के घुटने दुखने लगे या दात गिर जावे तो थोडा विचार आएगा
कि यह क्या हो गया ? लेकिन भगवान् कहते है कि मानव द्रव्य की
वदलने वाली पर्यायो का बोध कर ले और यह समझ ले कि वस्तु
की पर्याय प्रतिपल वदलती है, वदलती रहेगी। इन वदलती हुई
पर्यायो को रोकने वाला इन्द्र, महेन्द्र भी नही है। "ज्यो कचन तिहु काल
कहीजे भूषण नाम अनेक रे प्राणी।" अनेक प्रकार के दागीनो का
रूप वदलने पर भी सोना वर्तमान, भूत और भविष्यत् इन तीनो
काल मे सोना ही कहलाता है। पहले दागीनो के रूप मे था। आज
उसको तोडकर पासा वना लिया। फिर उसको गलाकर नया दागीना
हार, कडा, कठी, अगूठी, बना ली। किसी भी रूप मे ढाल दिया, तव
भी सोना जैसा पहले था वैसा ही अव भी है। जैसे सोने के वदलते हुए
रूप को देखकर मनुष्य अफसोस नही करता, उसी तरह ज्ञानी ससार
मे जीवन की नित्य परिवर्तित होती हुई दशा को देखकर, वदलती हुई
दशा को देखकर कोई रज-शोक नही करता। यह समझ कर शोक नही
करता कि पर्याय वदलने वाला था और वदलेगा, इसमे शक नही।
पर्यायो के वदलते रहने पर भी द्रव्य के नित्यत्व का वोध मानव मे
वना रहा तो शोक नही होगा। कडा तोडने मे यह भाव रहा कि

सोना तो मौजूद है, बराबर तोल है, जितना कारीगर को दिया था उतना माल है, तो रज नही होगा ।

आप जवाहरात के नगीने बनाते है, कटिग कराते है, रूप बदलवाते है लेकिन आपको कभी रज होता है क्या ? इसका रूप बदला है, इस पर अस्त्र चला है, शस्त्र चला है, काटा गया है फिर भी आपको रज नही होता । लेकिन यदि आपने देखा कि १०० केरेट या ५० केरेट वजन था उसके बदले मे अब ४० केरेट माल आया है, लेते वक्त वह वजन ४० केरेट उतरेगा तो जरूर मन मे अफसोस होगा।

आत्म गुण न घटने पावे

तो आपने रूप बदलने का अफसोस नही किया । अफसोस किया है माल घटने का । इसी तरह हमे शरीर बदलने का अफसोस नही होना चाहिए । अफसोस इस बात पर होना चाहिए कि ज्ञान गुण घट गया, श्रद्धा घट गई । इस बदली हुई दशा पर मन मे पश्चात्ताप अथवा स्वय पर आक्रोश होना चाहिये । सोने का रूप बदला तो रज नही हुआ लेकिन सोने का वजन घट गया तो रज हुआ । इसी तरह शरीर का रूप बदल गया, दुबलापन आ गया तो सभाला जा सकता है । आपके किसी बच्चे का कपडा बढिया था और फट गया तो विशेप रज की बात नही होगी । लेकिन कपडा फटने के बजाय मन फट गया तो ? मन फट जाने पर तो बडा गहरा दु ख होगा । परिवार मे धर्म के प्रति निष्ठा थी, देव, गुरु व धर्म पर श्रद्धा थी, स्वाध्याय की तरफ लगन थी, वह घट गयी तो ? किस पर्याय के बदलने पर अफसोस होना चाहिये ? मन फटने पर जिस तरह से अफसोस हुआ उसी तरह धर्म पर श्रद्धा घटने पर भी अफसोस होना चाहिये । द्रव्य, गुण और पर्याय का यथार्थ रूप समझ मे आ जाय तो जान लेना चाहिये कि धर्म पर श्रद्धा घटने की दशा मे अफसोस अवश्य होगा ।

सम्यक् ज्ञान मन मे यह ज्योति जगाता है । यदि अश्रद्धा की पर्याय घट जाय, वह दशा बदल जाय, छूट जाय, निकल जाय तो कोई अफसोस की जरूरत नही है । आत्मा का जो मूल गुण है, वह है ज्ञान, दर्शन, चारित्र और अनन्त शक्ति । अनन्त शक्ति वाला आत्मा का स्वभाव और गुण बदलने लगे, श्रद्धा के प्रति अधोमुखी प्रवृत्ति

हो तो यह खेद की बात है। इसलिये यह प्रयास करेगे, पुरुषार्थ करेगे कि हमारे वदलते हुए पर्यायो मे आत्मा द्रव्य की शुद्धता नित्य हो, शाश्वत हो, ध्रुव हो, अटल हो, निर्मल हो। इसकी निर्मलता मे, गुण और स्वभाव मे कोई फर्क आए तो उस जगह सचेत होकर आत्म-गुणो की रक्षा करे, उन पर आने वाले आवरणो को दूर करे और आत्म-गुणो को विकसित करने का प्रबल प्रयास करें।

परिणमनशील पर्यायो से शिक्षा

गुण के पर्याय बदलने पर भी, पहले कह चुका हूँ, सोने का रूपान्तर भले ही हो जाय फिर भी परमाणु रूप से पुद्गल रूप से वह नित्य है। नैयायिक और वैदिक परम्परा ने ससार का आदि रूप माना है –

"पृथ्वी परमाणुरूपा नित्या"

एक प्रकार से पृथ्वी अनित्य मानी गई है। फिर भी आचार्यो के कहा –

परमाणु रूप से पृथ्वी नित्य है।

पृथ्वी का रूप निरन्तर बदलता है। पहले जहाँ जगल थे वहाँ आज भव्य भवन है, कालोनियाँ बस गई है। जिस जगह झोपडियाँ थी, वहाँ भव्य भवन बन गये है। नये जगल घिर रहे है, पुराने ढह रहे है, लेकिन ससार की इस बदलती दशा मे यदि आदमी पर्याय को ही देखता रहे तो वह रोते-रोते ही मर जाय। द्रव्यो की बदलती दशा को देखकर हमे शिक्षा लेनी चाहिये। बदलती हुई दशा अच्छी स्थिति मे बदलती है तो आदमी घमण्ड करने लगता है और उसके चेहरे का रूप बदल जाता है। बगला, सोना, चाँदी, हीरे, जवाहरात बढने पर खुशी होगी। पुद्गलो का पर्याय बदलने वाला है, उन पर तो चेतन खुशी मनाता है, अकडता है। मन मे इस सब का आदर करता है, लेकिन आत्मा के निज रूप को नही पहचानता यह दु खजनक है। धन की बदलती हुई पर्याय का रूप इतना उभर चुका है कि ससार मे, शादी-विवाह मे, मित्रजनो से मिलने जुलने मे, मेहमानो की खातिरदारी मे, वेष-भूषा मे यह बदला हुआ रूप स्पष्ट नजर आता है।

धर्म क्रिया पर भी धन की छाया

धर्म क्रिया पर भी इसकी नजर पड गई है। धर्म स्थान पर अठाई या मासखमण का पचक्खाण करते है। आत्म गुण को पकडने के लिए धर्म साधना करते है। तप की क्रिया आत्म-गुण को जगाने के लिए है। पर आत्म-गुण को जगाने के प्रसग पर भी वढिया से वढिया वेश निकाले जा रहे है। आज बाईजी पचक्खाण करने जा रही है, तो नये-नये आभूपण, हीरे की चूडियाँ निकाली जा रही है। अब सोने की वजाय परिवर्तन हुआ है तो जहाँ पहले वडे-वडे गोखरू पहने जाते थे, अब उनकी जगह हीरे जवाहरात की चूडियो ने ले ली है। एक एक चूडी ५-१० हजार की कीमत की होगी, पहन कर पचक्खाण करने चल रही है, अठाई का पच्चक्खाण मासखमण का पच्चक्खाण करने जा रही है। महीने भर तक अन्न का त्याग किया। तप की साधना रखी जीवन को आगे वढाने के लिए। लेकिन आकाक्षा इस वात की करती है कि नये-नये दागीने निकाले जाय, हीरे की नई चूडियाँ बनाई है वे निकाली जाय, पहन लू तव महाराज के वहाँ पच्चक्खाण करने जाऊ। एक रिवाज सा हो गया है। पच्चक्खाण करने आयेगी तो वढिया से वढिया पोशाक होगी, ऊपर से भारी ठोस दागीने। वहिनो के मन मे यह प्रमोद होगा कि दो-चार और पहिन लू तो अच्छा।

यह धर्म प्रभावना है या धन का प्रदर्शन

पचक्खाण और तपस्या का रूप कैसा होता जा रहा है? तपस्या की, और उस समय ऐसा नही करे तो धर्म प्रभावना कम तो नही हो जायगी? लेकिन आज के समय मे इसको धर्म-प्रभावना समझा जा रहा है। वस्तुत इसे धर्म-प्रभावना समझना विल्कुल गलत है। आज तो यदि मैं यह कहूँ कि यह प्रभावना नही वल्कि अप्रभावना है तो भी अनुचित नही होगा। अप्रभावना क्यो? आज जिस समय हजारो-लाखो लोगो को भर पेट रोटी मुश्किल से मिले और इतनी कमरतोड मँहगाई मे लोगो का जीवन निर्वाह मुश्किल से हो, उस समय हमारी माताएँ, वहिने धर्म-प्रभावना के लिये हजारो लोगो मे प्रदर्शन करती हुई वाजार से निकले तो लोगो की नजरो मे शीतलता पैदा करेंगी या आग? लोगो के मन मे प्यार पैदा करेंगी या खार? इस प्रकार के

वातावरण मे तपस्या की साधना के, तप के प्रसग मे इस तरह का प्रदर्शन करना, भेद-भाव को बढाने वाला होगा या आत्म-भाव को जगाने वाला ?

युग प्रतिकूल प्रदर्शन

थोडा शान्त मन से बहिने सोचे समझे, खयाल करे तो समझ मे आ जायेगा कि आज की प्रभावना का रूप भी नया होना चाहिये। पुराने जमाने मे इस प्रकार की प्रभावना इसलिए थी कि उससे अन्य लोगो को मालूम होता था कि धर्म-साधना करने वाले लोगो मे इतने बडे-बडे आदमी है, बडे घर की औरते धर्म करती है। यह समझ कर किसी जमाने के लोगो पर इसका असर पडता था। लेकिन आज इस प्रकार के प्रदर्शन को देख कर लोगो के मन मे आता है कि ये धर्म का ढोग करने वाले गरीबो का रक्त चूस कर करोडपति बने है। पाप करके धनवान् बने है और यहाँ प्रदर्शन कर रहे है। लोग आपको घृणा की दृष्टि से देखेगे तो क्या अर्थ निकला आपके इस दिखावे का ? तपस्या करने वाली देवियो के मन मे तो यह होता होगा कि प्रदर्शन के कारण सब आकर उन्हे देखे। लेकिन आपके घर मे कोई बीमार हो, तकलीफ मे हो, खतरनाक स्थिति मे बैठा हो, उस समय आप शृ गार करके सज-धज कर निकलो और बीमार के सामने जाओ तो उसको कैसा लगेगा ? इसी तरह जब देश मे आज सकट की स्थिति चल रही है, अधिकाश देशवासी आज अभाव अभियोग के कारण पीडित है, इस प्रकार की दु खपूर्ण स्थिति मे अपनी समृद्धि का यह भद्दा प्रदर्शन कहाँ तक उचित होगा ? आज जो लोग है, उनको भी वक्त पर अधिकाश खाने-पीने की वस्तुएँ कठिनाई से उपलब्ध होती है। अनेक बार चोरी छिपे भी आवश्यक खाद्य सामग्री लानी पडती होगी। यह सब पेट भरने के लिये करना पडता है, मजबूरी है, न करे तो भूखो मरे। लेकिन जो थोडे बहुत दु ख के कारण बचाये जा सकते है, उनको बचाया जावे तो अच्छा है।

धर्म-प्रभावना का सही मार्ग

आप जो प्रदर्शन मे, दिखावे मे, खर्चा करते है, वही यदि कमजोर भाई-बहिनो की सहायतार्थ खर्च करे तो अधिक अच्छा रहेगा। जिनके

खाने की व्यवस्था नही है, ऐसे लोगो की व्यथा दूर की जाय तो लाभ का कारण है। आपने तपस्या की है इसलिए आपको भूख की व्यथा का कष्ट मालूम है। तपस्या वाले को अनुभव है कि दो दिन का भूखा ज्ञान के अभाव से किस तरह कष्ट मे समय गुजारता है। यदि कोई भाई-वहिन उनके कष्ट निवारणार्थ इस तरह द्रव्य का वितरण कर दान करे, गरीबो की मदद कर अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग करे तो विशेष प्रभावना का कारण हो सकता है। लेकिन आज लोगो की प्रभावना की नजर बदली हुई है। समय वदलता है, उसके साथ ही प्रभावना के इस कार्य की गति को भी बदलना आवश्यक वन जाता है। एक जमाना था जब वरघोडा या जुलूस आवश्यक समझे जाते थे, इससे प्रभावना होती थी, लेकिन इस समय उसका और रूप होना चाहिये। बाजे-गाने के बदले सगीत मण्डली या समाज के भाई वहनो के साथ मगल-गीत गाते भी निकल सकते है। साधर्मिओ की सेवा मे थोडी भी शक्ति लग सके तो समझा जायगा कि तपस्या करने वाली वाइयो ने सच्ची प्रभावना कर अपनी तपस्या सफल वना ली है।

गाधीजी राष्ट्र नेता होकर भी अपने जूलूस वडी सादगी से सम्पन्न करते थे। विना किसी वाजे के उनकी प्रभात फेरियाँ निकलती थी, राष्ट्रीय नारे लगाते हुए वे जिस गली से निकल जाते, लोगो की नजर उन पर पडती। इसी तरह आप भी सात्विक प्रदर्शन करते हुए अपनी मनोभावनाओ का परितोष कर सकते हैं। वैंड के बजाय १००-२०० कुटुम्व के भाई-वहिन साथ रहकर कुछ भजन गावे, और इसमे सतोष माने तो क्या धर्मप्रभावना नही होगी ? यदि आपके मन मे यह है कि लोगो को मालूम पडना चाहिये तो वह भी हो जाएगा और धन की वचत भी हो जायेगी। हजारो रुपये वैंड वगैरह मे, जीमनवार मे खर्च होते हैं, वे उधर से वचाकर समाज सेवा मे लगाये जाय तो उस धन का अति सुन्दर सदुपयोग हो सकता है।

वात इतनी सी है कि सत लोगो का काम तो उचितानुचित का ध्यान दिला कर रोशनी पहुँचाना, सर्चलाइट दिखाना, मार्ग वताना है। लेकिन उस मार्ग पर चलना तो आपके अधीन है। अव मैं मूल प्रकरण पर आता हूँ।

भविष्य-निर्माण कैसे किया जाय

जब द्रव्य गुण, पर्याय का सही ज्ञान होगा तो बदलते हुए पर्यायो मे से कौनसा पर्याय शुभ है, कौनसा अशुभ है, कौनसा आत्मगुणो को अभिवृद्ध करने वाला है, कौन सा आत्मगुणो की हानि करने वाला है, किस तरह का जीवन मूल मे कायम रहना चाहिये। इन सब बातो को परखने का विवेक उत्पन्न होगा। इस प्रकार के विवेक के उत्पन्न होने पर जिन पर्यायो से आत्मा के मूल गुण सुरक्षित रहते है, अभिवृद्ध होते है, उन पर्यायो को अपने दैनिक आचरण मे ढालने का और जिन पर्यायो से आत्म-गुणो की हानि होती है, उन पर्यायो से पूर्णत बचने का प्रयास किया जायगा तो परम सुन्दर भविष्य का, सुन्दर आध्यात्मिक जीवन का निर्माण होगा। और इस प्रकार अन्ततोगत्त्वा चरम लक्ष्य की प्राप्ति हो सकेगी। महापुरुषो ने यही बात कही कि जीवन मे पदार्थो के पर्याय बदलते-बदलते एक दिन शरीर का, जीवन का ह्रास सुनिश्चित है। जीवन, शरीर और पदार्थमात्र – ये सब परिणामनशील है, नश्वर है। तो ऐसी बदलती स्थिति मे जब तक शरीर चलता है, तब तक क्यो न यथाशक्ति कुछ न कुछ साधना का काम करले।

जीवन-निर्माण का एक ऐतिहासिक प्रतीक उदाहरण

आचार्य महागिरि ने द्रव्य, गुण, पर्याय और उनके स्वरूप को समझा और समझ कर सम्यक्ज्ञान द्वारा अपने जीवन के बदलते हुए पर्यायो की स्थिति मे कैसा लाभ उठाया, इस बारे मे कवि ने कहा है –

गिरि ने मन मे साधना करनी ठानी, गणनायक सुहस्ती को बनवाया।
पाटलिपुत्र मे दोनो मुनि चल आये, वसुभूति के घर उपदेश दिलाये।
भिक्षा हित गिरि भी आये उस बारी, लेकर शरणा तिरे अमित नरनारी।

सम्यक् ज्ञानी महागिरि ने अपनी १०० वर्ष की आयु के ३० वर्ष ससार मे बिताये और ७० वर्ष का समय सयम मे लगाया। यही नही सुख-भोग के योग्य वय मे ससार के रस, रूप, गध, स्पर्श इन पदार्थो की ओर से अपने मन मे आकर्षण बिल्कुल समाप्त कर दिया। क्योकि उन्होने सोचा कि भौतिक पदार्थ सडने, गलने और विनाश

को प्राप्त होने वाले है। अत उनसे प्राप्त सुख भी नश्वर है। ३० वर्ष की आयु मे दीक्षित हो ४० वर्ष तक साधारण-श्रमण-पर्याय मे रहकर आर्य महागिरि वीर निर्वाण सवत् २१५ मे जब आचार्य स्थूलभद्र, स्वर्गवासी हुए, तब उनके पद पर विराजे। स्थूलभद्र के स्वर्गवास के पश्चात् आर्य महागिरि वी नि स २१५ से २४५ तक आचार्य रहे। ७० वर्ष के अपने सयम-साधनापूर्ण जीवन मे उन्होने सम्पूर्ण श्रमण-सघ के हजारो साधुओ तथा समस्त साध्वी-सघ को गहन, गभीर आगमिक ज्ञान की दिव्य ज्योति से जगमगाते हुए उनके जीवन को मुक्ति-पथ पर अग्रसर किया। चतुर्विध सघ के प्रत्येक सदस्य को साधना पथ पर उत्तरोत्तर अग्रसर करते रहना, बस यही उनके जीवन का प्रारम्भ से अन्त तक लक्ष्य रहा। साधु बनने के पश्चात् क्षण भर भी साधना के लिए उनका मन निश्चिन्त नही था। उन्होने सदा यही सोचा कि जीवन के दिन निकल रहे है, कही ऐसा न हो कि साधना मे किसी प्रकार की कोई कमी रह जाय। आवश्यकता है हर साधक के लिए वस्तुत यही सोचते रहने की।

साधनापथ मे प्रगति का लेखा जोखा परमावश्यक

आप गृहस्थ है और हम साधु है। आपको भी यह सोचना है और हम भी यह सोचते है कि गत वर्ष हम कहॉ थे और इस वर्ष हमने धर्म मे क्या तरक्की की है। यह सोचना हमारा फर्ज है। जिस प्रकार कि आप भी व्यवहार मे अपने नफे-नुकसान का खयाल वरावर रखते है। क्या आता है, क्या जाता है, क्या आया है और क्या गया है, इसका ठिकाना जो नही रखेगा, वह गृहस्थ कभी न कभी अवश्य धोखा खायेगा। प्रत्येक व्यक्ति जो कि अपनी तरक्की चाहता है उसके लिए यह वहुत आसान रास्ता है तरक्की करने का। जो उन्नति के पथ पर अग्रसर होना चाहता है, वह सदा इस वात का ध्यान रखे कि गत वर्ष मैं कहॉ था और इस वर्ष कहाँ खडा हूँ। गत वर्ष कितना समय धर्म-साधना मे लगा और इस वर्ष कितना आगे वढा – त्याग, तप, ध्यान मे, ज्ञान, दर्शन, चारित्र मे कषायो की विजय और इन्द्रियो को वश मे करने मे ? आप और हम कितने आगे वढे, यदि यह हिसाव-किताव आपके - हमारे सामने है, पूरा लेखा जोखा है, तो हम कभी धोखा नही खायेगे। लेकिन आज वहुतो को पता ही नही रहता कि

वे कहाँ है । २५ वर्ष पहले की वात पूछी जाय तो कहेगे "वाप जी ! सामायिक तो वरावर चल रही है, पर हम कहाँ पर है, इसका कोई पता नही ।" ५० वर्षो से वरावर सामायिक चल रही है, धर्म के प्रति श्रद्धा है, गाडी चलती है लेकिन लेखा-वही मे वढोतरी है या नही, क्या यह वात देखने की जरूरत नही है ? यदि आप जैसे बुजुर्ग लोग भी इस वात को नही देखेगे तो आपके वाल-वच्चे क्या हिसाव चेकिंग करेगे ?

वाल-वच्चे १० वर्ष के थे तब तक तो नवकार मत्र पढते थे, साधुजी के पास जाते थे लेकिन २० वर्ष के हो गये तो जाना वन्द हो गया, ऐसा कितना हिसाव मिलेगा ? जिस घर के बेटे-पोते वचपन से धर्म-स्थान मे आते थे, वे जवान हुए, काम मे पडे और उनका धर्म से नाता छूट गया, ऐसी सख्या अधिक मिलेगी । लेकिन होना क्या चाहिये ? आप मे से जो भाई हजारपति है, वे ज्यादा धर्म करते है, सत्सग करते है, स्वधर्मियो से प्रेम करते है । लखपति जो है उनको उनसे भी ज्यादा करना चाहिये, सवाया धर्म-कार्य करना चाहिये । त्याग-तप मे, साधु- सेवा मे, साधर्मी भाइयो की सेवा मे आपका कदम आगे रहना चाहिये । और यदि लखपति से करोडपति वन गये तो और भी ज्यादा धर्म-कार्य करना चाहिये । यदि ज्यादा करते है तो समझना चाहिये वस्तुत प्रगति की है लेकिन इससे विपरीत हो गये तो रुपये वढे, काम वढा लेकिन तप घटा । तप घटा तो धर्म मे रुचि और श्रद्धा घटी और अन्तरग साधना मे जो एकाग्रता पहले रहती थी, वह भी नही रहती । तो फिर हिसाव किताव क्या हुआ ? पहले सामायिक मे वैठते थे तव घडी भर मन लगता था, शान्ति थी , लेकिन अव वैठते तो जरूर है, परन्तु मन लगता नही । तीन चार पेढियाँ चल रही है, लाखो करोडो की सम्पत्ति पाई है लेकिन वहुत धोखे मे रहे । साधना मे एकाग्रता नही रही तो फिर हिसाव क्या रहा ? प्रगति की वात तो दूर, यह तो अध पतन हो गया । यदि हिसाव देखते रहेगे तो वरावर प्रगति करते रहेगे । यदि कभी कमी नजर आयेगी तो हिसाव देखते रहने पर समय रहते ठीक तरह से सभाला जा सकेगा । लेकिन यदि देखेगे ही नही, लेखा-जोखा ही नही रखेगे, तो कल ध्यान मे इतना ज्यादा मन लगता था आज उतना क्यो नही लगता, इसके कारण का पता नही चलेगा ?

इसीलिये जीवन मे श्रद्धा और धार्मिक कार्यो की तरफ निरन्तर देखते रहने, सोचते रहने तथा लेखा-जोखा करते रहने की बडी आवश्यकता है।

महागिरि ने देखा–"पाच महाव्रतो की साधना कर रहा हूँ, १०-२० वाचनाए भी चल रही है लेकिन मुझे अपनी आत्म-साधना को निर्विकार रूप से चलाने के लिये अवकाश ज्यादा लेना चाहिये।" साधु जीवन मे और श्रावक जीवन मे फर्क है। आपको व्यावहारिक काम भी देखने होते है और साधु जीवन मे उपदेश देना, पठन-पाठन करना, शिष्यो को समझाना, पढाना-लिखाना, सघ-सेवा मे व्यस्त रहना आदि कितने ही महत्वपूर्ण कर्त्तव्य आचार्य के होते हैं। भिक्षुओ को शिक्षा देने तथा उनकी सयम-साधना को सुचारु रूप से चलाने की व्यवस्था का काम भी करना होता है। इस तरह से वे शासन की सेवा करते है। अपनी आत्मिक लगन से काम करते है। ऐसा काम कौन कर रहे थे ? महागिरि। लेकिन इतना काम करते हुए भी उनके मन मे सतोष नही था। उनके मन मे यह था कि दूसरो का काम तो कर रहा हूँ लेकिन अपना आत्म-कल्याण पूरी तरह नही कर पा रहा हूँ। हम आपके सामने घण्टा भर उपदेश देते है यह सापेक्ष है। यदि एक-एक को अलग-अलग धर्म-प्रेरणा दे, साधुओ को शिक्षण दे, सुवह शाम आने-जाने वालो को धर्मोपदेश दे तो हमारा पूरा समय इसी मे चला जायेगा। महागिरि ने सोचा–"मै यदि दुनियाँ का हिसाव साफ करने मे ही लगा रहा तो अपना हिसाव भूल जाऊँगा। मुझे अपना काम भी तो करना चाहिये। दूसरो को तारने के साथ-साथ अपने-आपको सभालना भी जरूरी है।" खुद फिसल जाय तो दूसरो को सभालना सभव नही हो सकता। जव सघ, समाज, और स्वधर्मी वन्धुओ मे धर्म प्रसारण की आन्तरिक लगन है, दर्द है तो उससे अपनी साधना मे विक्षेप भी होता है और वह सहने योग्य होता है। लेकिन इस विक्षेप के साथ यह नजर आ जाय कि मैं तो केवल दूसरो के लाभ के कार्य मे ही लग रहा हूँ, स्वय अपने उद्धार के लिए आवश्यक साधना नही कर पा रहा हूँ तो साधक साधु को अपनी साधना का भी ध्यान रखना आवश्यक हो जाता है। आपके जीवन मे दिन भर १८ पाप लगे हुए हैं। आपकी वात क्या कहूँ, तपस्या करने वाले भाई-वहिनो का जीवन

भी फसा हुआ रहता है। प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, सासारिक चिन्ता, क्रोध, मान, माया, राग, द्वेष, रति, अरति ऐसे १८ पाप हैं, वे चलते रहते है, तो भी अन्न का सेवन नही किया, इस त्याग मे अन्तर गुणो का होता है। इसलिये १८ पाप जिस गृहस्थ मे प्रतिदिन प्रतिपल चलते है, वहाँ आत्मा भारी होने लगती है। उस पाप के भारीपन को हल्का करने की फिक्र प्रत्येक गृहस्थ को करनी चाहिये। मैं समझता हूँ अभी आप इसको भारी नही मानते। बहिनो का उदाहरण आपके सामने है, तप करते हुए भी उनको दुगुना जेवर पहना दो तो भी उसका भार नही मानती। २० तोला और पहना दो तो भी कोई बात नही। इसी तरह आपको भी पाप का भार सभवत भार रूप लगता नही है। १८ पाप आप रोज करते रहते है, ये कैसे है, इसके बारे मे फिर अवसर आने पर सोचेगे।

हाँ, तो महागिरि के मन मे यह खयाल आया – "मैं क्यो नही अपनी साधना मे ज्यादा समय लगाऊँ।" उन्होने यह निश्चय किया – "साधु-समाज की व्यवस्था का काम तो सुहस्ती को सौप दूँ, वाचना देने का काम मैं करूँ और बचे हुए समय को अपनी आत्म-साधना मे लगाऊँ।" आपके लडके जब बाहर के, भीतर के आपके व्यवसाय को सभालने लायक हो जाते है तो आपके मन मे यह भाव आएगा कि अब ये लोग काम सभालने लायक हो गये हैं, इसलिये इनको व्यवसाय का काम सम्हला दूँ और मैं अपना जीवन धर्म-साधना मे लगाऊँ। ऊपर की देख-रेख जरूर करता रहूँ। यह जीवन ही कितने दिन का है, हवा कितने दिन रहेगी, इसका क्या ठिकाना। सोचने की बात है, जिनके पीछे काम सभालने वाला न हो, वह श्रावक भी यदि सम्यक् दृष्टि है तो सब कुछ छोडकर अलग हो सकता है। यदि छोटा सभालने वाला हो तो बडे को अलग हो जाना चाहिये। लेकिन धन की भूख आसानी से जाती नही, वृद्ध हो जाने पर भी तृष्णा मानव का पिण्ड नही छोडती और वह दिन-रात उसके पीछे भागता रहता है। ससार का प्राणी आरम्भ, परिग्रह मे फसा रहता है और यही चाहता है कि दिन और भी बडा होने लगे तो वह चार घण्टे और काम कर ले। तृष्णावश सदा उसकी यही मशा रहती है। इस प्रकार यदि वह आरभ, परिग्रह के परिमाण को हल्का करने को तैयार नही होगा तो आत्म कल्याण कैसे होगा ? इसलिए बुद्धिमान

आदमी वस्तुस्थिति को सोचे, समझे, विचारे और आत्मा को हल्का करने के लिये साधना करे।

महागिरि अपने जीवन मे साधना-मार्ग पर अग्रसर होते हुए पाटलीपुत्र पहुँचे। आर्य सुहस्ती भी साथ मे थे। महामुनि सुहस्ती के उपदेश से वसुभूति जैन बन गया। उसने सोचा – "मैं तो जैन बन गया हूँ लेकिन अपने सारे परिवार को जैन बना सकू तो उत्तम रहेगा।" उसने आर्य सुहस्ती से प्रार्थना की "भगवन्! एक दिन मेरे घर पर पधार कर दर्शन दे। आपके उपदेश से मेरे बच्चो मे धर्म-भावना जागृत होगी तो मेरी आत्मा प्रसन्न होगी।" वसुभूति की प्रार्थना स्वीकार कर आर्य सुहस्ती उसके कुटुम्बीजनो को उपदेश देने वसुभूति के घर गये। उन्होने वसुभूति के परिवार के लोगो को धर्म का – वीतराग-मार्ग का उपदेश देना प्रारम्भ किया।

इस प्रकार आर्य महागिरि आत्म-साधना मे लीन रहने लगे और आर्य सुहस्ती धर्म-प्रचार मे लीन रहते हुए सघ की व्यवस्था करने लगे। साधना के पथ पर आगे वढने के लिए मन मे दृढ धारणा होनी चाहिये। यदि मन मे दृढ धारणा होगी तो आत्म-परिणति बदलते देर नही लगेगी। आप श्रावक हैं – आपको श्रावक-धर्म पालन करते हुए आगे वढने की चिन्ता है तो जीवन निराबाध रूप मे आगे बढेगा और आपका कल्याण होगा, आपको शान्ति मिलेगी।

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति

साधना के ातव्य सूत्र

—०○:○:○○—

प्रार्थना

बन्धुओ !

अभी आप सुख विपाक सूत्र मे गौतम स्वामी द्वारा साधना मार्ग पर प्रशस्त ध्यान के साथ विचरण करने का प्रकरण सुन रहे थे। गणधर गौतम धर्म ध्यान के एक उच्च स्तर पर पहुँचे हुए महापुरुष थे।

अन्तर्लक्ष्यी ध्यान

यो तो धर्म-ध्यान आपका भी होता है, हमारा भी होता है, लेकिन भिन्न-भिन्न कोटि के व्यक्तियो के धर्म-ध्यान के स्तर और उसकी साधना मे परस्पर वडा गहरा अन्तर रहता है। कषाय के तीव्र भाव क्रमश जितने अधिक कम होते जायेगे और ज्यो-ज्यो साधक वीतराग भाव के अधिकाधिक नजदीक वढता जाएगा, त्यो-त्यो धर्म-ध्यान उत्तरोत्तर उतना ही उच्च से उच्चतर बनता जायगा और अन्ततोगत्वा वही धर्म-ध्यान शुद्धतम बनकर शुक्ल ध्यान के रूप मे परिणत हो जायगा। वस्तुत इसी प्रकार का ध्यान आत्मा का अन्तर्लक्ष्यी ध्यान होता है।

इस प्रकार का अन्तर्लक्ष्यी ध्यान सर्वसाधारण मे क्यो नही होता और हम इस ध्यान की महिमा को जानकर भी इस परम शक्ति को, इस परम प्रकाश को क्यो नही पाते ? यदि इसके कारणो पर विचार किया जाय तो इसका मुख्य कारण अज्ञान की प्रवलता ही स्पष्टत' प्रतीत होता है।

वह अज्ञान है धर्म का अज्ञान, व्यवहार का अज्ञान। मिथ्यात्वी एकान्तवाद को मानने वाला भी ध्यान की साधना करता हुआ दिखाई देता है, सुना जाता है और दीर्घकाल तक वाहरी सतोप प्राप्त

कर वह अपना समाधिस्थ रूप भी ससार के समक्ष प्रस्तुत करता है। धर्म ध्यान के सम्बन्ध मे जैन दर्शन की मान्यता यह है कि जव तक किसी प्राणी के अन्तर के अज्ञान की, तीव्र मिथ्यात्त्व की, मोह की उपशान्ति नही होती एव सम्यक् ज्ञान की ज्योति नही जग पाती तब तक उस प्राणी को धर्म ध्यान का अधिकारी नही कहा जा सकता।

आर्त्त रौद्रादि ध्यान

गुणस्थान की दृष्टि से भी ध्यान पर शास्त्रो मे विचार किया गया है। किस गुणस्थान मे कौनसा ध्यान होगा, इस सम्बन्ध मे शास्त्रो मे पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। आर्त्तध्यान आपके मोह कर्म के उदय भाव से होने वाला ध्यान है। और मोह कर्म के उदय से आर्त्त-ध्यान के उत्पन्न होने पर मोह कर्म के उदय का आश्रय पाकर प्रकट हुए क्रोध-कपाय के तीव्र भावो मे रौद्र ध्यान का आविर्भाव होता है। जव तक हम आर्त्त ध्यान के आश्रित होगे तव तक रौद्र कषायो के भाव आते रहेगे, क्योकि कपायो के प्रावल्य मे किसी भी समय रौद्र ध्यान उत्पन्न हो सकता है। मन मे राग-द्वेष-क्रोधादि भावो का प्रावल्य होने पर धन, धरा, धामादि के प्रश्न को लेकर वात-वात पर मित्रो, सगे-सम्वन्धियो एव अन्यान्य लोगो के साथ लडाई-झगडा करना, दूसरो का बुरा सोचना, दूसरे लोगो के धन, जन, एव प्राणो को हानि पहुँचाने का विचार करना यह रौद्र-ध्यान है। धन, धरा, धाम इत्यादि आर्त्तध्यान के निमित्त है। आर्त्त-ध्यान रागाश्रित है और रौद्र ध्यान द्वेष-प्रधान है। रागादि दोषो की आत्यन्तिकी मन्दता होने पर ही शुक्ल ध्यान की आराधना हो सकती है। इसलिये ध्यान को उन्नत बनाये रखने तथा उत्तरोत्तर उन्नत करने का साधन है सम्यक् ज्ञान को निर्मल, निर्मलतर और निर्मलतम वनाना।

सम्यग्ज्ञान किसका ? लोक का

मोक्ष मार्ग के प्रसग को लेकर अभी आपके समक्ष ध्यान के सम्वन्ध मे विचार चल रहा है। अभी यह वताया गया कि ध्यान को उन्नत वनाने के लिये सम्यग्ज्ञान को निर्मल वनाये रखने की अनि-वार्य आवश्यकता है। तो यहा सहज ही यह प्रश्न उत्पन्न होगा कि वह सम्यग्ज्ञान किसका हो। वह सम्यग्ज्ञान वस्तुत लोक का अर्थात् द्रव्य, गुण और पर्याय का होना चाहिये। आपके इस प्रश्न का

समीचीनतया समाधान करने के लिए द्रव्य, गुण और पर्याय – इन तीनो के लक्षण भेद आदि के सम्बन्ध मे सक्षेप से समझाया जायगा।

द्रव्य छ प्रकार का है—धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल, जीव और काल। काल को छोडकर इनमे से प्रत्येक के साथ अस्तिकाय लगता है तब पूरा नाम बनता है। जैसे कि धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, और जीवास्तिकाय। काल के साथ अस्तिकाय नही लगता क्योकि काल मे प्रदेशो का समूह नही होता, वह केवल वर्तमान हो सकता है, इसलिये इसको अस्तिकाय नही कहते। इस प्रकार धर्मास्तिकाय से लेकर काल तक छ द्रव्य हो गये। इन छ द्रव्यो मे एक जीव हो गया और शेप पाच अजीव।

लोक छः द्रव्यो का सघात (समूह)

इन छहो द्रव्यो के समूह को लोक माना गया है।

जैसा कि शास्त्र मे कहा है "एस लोगोत्ति पन्नत्तो"।

लोक के इन छ द्रव्यो मे ससार के सभी अनन्त-अनन्त पदार्थो का समावेश हो जाता है। इन छ द्रव्यो मे से दो द्रव्य-प्रमुख है।

उन दो का परिचय हम आसानी से पा सकते है। ये है जीव और अजीव यानि पुद्गल।

धर्म-द्रव्य जीव और अजीव–इन दोनो को गति करने मे सहायता करता है। जीव गति करता है और अजीव यानि पुद्गल भी गति करता है। गति करने वाले जीव और अजीव को गति करने मे किसी के सहारे की अपेक्षा होती है। बिना सहारे के जीव अजीव या पुद्गल गति नही कर सकता। जैसे किसी जलाशय मे मछली है, वह जल मे तैरती है, गति करती है। यदि जलाशय का पानी सूख जाय तो मछली गति नही कर सकती। यदि मछली को जमीन पर छोड दिया जाय तो वह खत्म हो जाएगी। यदि आसमान मे किसी चिडिया की तरह मछली को उछाल दिया जाय तो वह आकाश मे गति नही कर सकती। किसी कबूतर को, चिडिया को, परिन्दे को आसमान मे छोड दिया जाय तो वह उड जाएगा। पक्षी की गति है आकाश मे और मछली की गति है पानी मे। इसी तरह हरिण की गति भूमि पर है। भूमि पर दौडता हुआ हरिण आपकी पकड मे मुश्किल से

आयेगा। लेकिन यदि हरिण को पानी मे छोड दिया जाय तो अधिक समय तक उसमे नही रह पायेगा, आगे नही वढ पायेगा। इसका मतलब यह हुआ कि हरिण की पानी मे गति नही है। चलने वाला हरिण भूमि पर चलता है, उडने वाला पक्षी आकाश मे उडता है और तैरने वाली मछली पानी मे तैरती है। तीनो ही जगहो मे तीन उदाहरण दिये। जल जतुओ मे मछली, आकाश के लिए कवूतर, और भूमि के लिए हरिण। तो चलने वाले कौन है ? हरिन, पक्षी और मछली। आकाश, भूमि और जल चलने वाले नही है। लेकिन यदि इन तीनो चीजो का आधार या सहयोग हटा दिया जाय अर्थात् हरिण से भूमि छीन ली जाय, मछली को पानी से निकाल दिया जाय और पक्षी को आकाश से हटा लिया जाय, तो तीनो की गति अवरुद्ध हो जायेगी।

गति एव अवस्थिति के सहायक द्रव्य

इसी तरह जीव मे चलने की ताकत है लेकिन चलने के लिए धर्म द्रव्य का सहयोग अथवा आधार होना चाहिये। विना धर्म द्रव्य के सहयोग के जीव अथवा अजीव-पुद्गल गति नही कर सकता। जिस प्रकार कि मछली भूमि पर नही चल सकती।

इससे निष्कर्ष निकला कि ससार के जीव दौडते है, स्थिर होते हैं तो इसमे उनके साथ धर्म और अधर्म द्रव्य सहायक कारण होते हैं। जहाँ धर्म द्रव्य गति करने मे सहायक होता है वहाँ अधर्म द्रव्य स्थिर होने मे सहायक होता है।

इनको उदासीन या निमित्त कारण के नाम से भी अभीहित किया जाता है। कारण दो प्रकार के होते है एक प्रेरक और दूसरा उदासीन। घर मे घडी लगी हुई है और उसमे ८ ३० वज गये तो व्याख्यान मे जाने का समय हो गया। घडी व्याख्यान के समय की याद दिलाने मे कारण हुई। एक घर मे माताजी, पिताजी या पुत्र ने कहा—"अभी तक तैयार नही हुए हो, मालूम भी है कि साढे आठ वज गये हैं। जल्दी करो। व्याख्यान मे जाना नही है क्या ?" दोनो मे-घडी एव घर वालो मे क्या अन्तर हुआ ? एक कारण तो हुई घडी, घडी ने वताया कि साढे आठ वज कर पॉच मिनिट ऊपर

हो गये तो व्याख्यान मे जाने के इच्छुक व्यक्ति को लगेगा कि जल्दी करूँ अन्यथा लेट हो जाऊँगा। घडी व्याख्यान सुनने के लिए प्रेरणा देने का कारण बनी है। माता-पिता आदि घर के सदस्य भी व्याख्यान मे जाने की प्रेरणा देने के कारण बने है। दोनो मे क्या अतर हुआ? घडी टाइम बताती है लेकिन प्रेरणा नही करती। साढे ही नही पौने नौ अथवा साढे नौ भी बज जाय तो भी घडी आवाज लगाकर प्रेरणा नही कर सकती, ताकीद नही कर सकती। लेकिन घर के सदस्य एक-एक कर आवाज लगाते हैं और प्रेरणा करते है कि बाबू साहब! अभी तक आप तैयार नही हुए, ९ बजने वाले हैं, आप कैसे लेट हो रहे है? यह कौन कहता है? घर के सदस्य। और वे व्याख्यान मे भेजने के कारण है। घडी भी कारण है, लेकिन घडी का काम टाइम बताना मात्र है अत यह उदासीन कारण बना, और घर के सदस्य प्रेरक कारण बन गये। व्याख्यान मे आने वाला कौन है, प्रेरणा करने वाला आता है या सुनने वाला? आना किसके अधीन है? सुनने वाले के। लेकिन प्रेरणा देने वाला विद्यमान है तो फर्क पडता है। मान लीजिये कभी घडी बन्द हो गई तो उससे जो व्याख्यान मे जाने के समय का ठीक पता चलता था, वह नही चल सकेगा। घडी के बन्द हो जाने की स्थिति मे साढे आठ अथवा ९ का समय हो जाने पर भी "अभी तक तो आठ ही बजे है"—इस प्रकार की गलतफहमी होना सभव है।

जिस प्रकार व्याख्यान मे जाने के लिए घडी निमित्त कारण बनती है, उसी तरह ससार के जीवो और पुद्गलो को गति करने मे धर्मास्तिकाय सहायक होता है। धर्मास्तिकाय हाथ पकडकर चलने को नही कहता। वस्तुत धर्मास्तिकाय न स्वय चलता है और न जीव अथवा अजीव पुद्गल को चलने के लिये कहता अथवा प्रेरणा ही करता है। वह तो जीव एव अजीव पुद्गल को गति करने मे सहायता मात्र करता है। उदाहरण के रूप मे समझ लीजिये—आप व्याख्यान सुनने आये। व्याख्यान समाप्त होते ही आपका लडका, मित्र, भाई अथवा ड्राइवर आपके पास आकर कहता है—"श्रीमन्! चलिये, नीचे गाडी तैयार खडी है।" ये लोग आपको बुलाने आते है अथवा होर्न बजाते है, पर गाडी तो आपको नही कहती कि चलिये।

गाडी चलने को तैयार खडी है, उसको यदि स्टार्ट करोगे तो चल पडेगी। गाडी चलने मे सहायक होती है। यह उदासीन सहकारी कारण है। चलते-चलते किसी मित्र पर आपकी दृष्टि पडी, और उससे बात करना चाहते हो तो गाडी को रोकना पडेगा। गाडी को रोकने का सहकारी कारण वना – ब्रेक। ब्रेक न हो तो गाडी जहाँ चाहो वही तत्काल रुक सकती है क्या ? नही। तो गाडी को गति देने का कारण तो वना इजिन, जिससे गाडी ने स्पीड पकडी एव चल पडी और ब्रेक गाडी को ठहराने का कारण वना।

लोक मे धर्मास्तिकाय के अस्तित्व का प्रमाण

इसी तरह समझ लीजिये जीव और पुद्गल को। ससार के समस्त जीव अजीव तत्त्वो को चलने—गति करने मे जो सहायक बने, उस द्रव्य का नाम है धर्मास्तिकाय और इन्हे एक स्थान पर रुकने—स्थिर होने मे जो सहायक वने वह है अधर्मास्तिकाय। लेकिन यह कैसे समझावे कि धर्मास्तिकाय है। केवल लाखो, करोडो, अरवो, खरवो ही नही, अपितु अनन्त पदार्थ चल रहे है, गति कर रहे है। यदि गति करने मे कोई सहायक नही हो तो जीव चलते-चलते अलोक मे घुस जाने चाहिये। सिद्ध आत्मा उर्ध्व गति वाली है। ससार छोडते ही वह एक सैकिण्ड से भी कम समय मे १४ रज्जू प्रमाण लोक को लाँघ लेती है लेकिन लोक का अन्त आते ही रुक जाती है। आगे क्यो नही जाती ? अलोक मे आकाश है, जगह है, फिर भी जीव वहाँ जाता क्यो नही ? इसीलिए नही जाता कि वहाँ उसे गति करने मे सहायक वनने वाला धर्मास्तिकाय नही है। लोक के आकाश तक ही धर्मास्तिकाय है, अलोक मे नही। इसीलिये सिद्धात्मा अलोक मे गति नही करती। पानी मे मछली एक किनारे से दूसरे किनारे और दूसरे किनारे से तीसरे किनारे तक वडी तेजी से दौडती है लेकिन किनारे के वाहर क्यो नही आती ? इसीलिये कि आगे पानी नही है। ठीक इसी प्रकार जीव लोक के वाहर इसीलिये नही जाता कि वहाँ गति करने मे सहायक तत्त्व धर्मास्तिकाय नही है। इस प्रकार जीव और पुद्गल को गति करने मे सहायक होने वाले द्रव्य का नाम हुआ धर्मास्तिकाय और स्थिति मे सहायक होने वाला है अधर्मास्तिकाय। मैं समझता हूँ अव आप

इन दोनो द्रव्यो के सम्बन्ध मे अच्छी तरह समझ गये होगे। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि पाचो कायो का भगवती सूत्र मे प्रसग-प्रसग पर अनेक जगह वर्णन किया गया है।

सैद्धान्तिक ज्ञान को समृद्ध बनाने का उपाय

पुराने समय के श्रावक बडे ज्ञान रसिक होते थे। उनका सैद्धान्तिक ज्ञान इतना समृद्ध होता था कि वे अन्य लोगो के तर्क को निरस्त करने मे सदा सक्षम–समर्थ रहते थे। श्रावक आप भी है। आपको अभी-अभी धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय की बात बताई गई है। पर कदाचित् १० दिन बाद कोई जैनेतर बन्धु आपको यह पूछ ले कि जैन धर्म मे अस्तिकाय का वर्णन है, वह समझ मे नही आता। धर्मास्तिकाय क्या है, अधर्मास्तिकाय क्या है ? वे कैसे माने जाते है, उनका क्या प्रमाण है, क्या सबूत है, यह आप हमको समझा दीजिए। तो क्या १० दिन वाद आप उनको यह सव कुछ अच्छी तरह समझा सकेगे ?

आप जवाव नही दे सकेंगे, इसका कारण यह है कि आपने स्वत स्वाध्याय करने की, स्वय चिन्तन करने की प्रवृत्ति को छोड रखा है। यही कारण है कि जो वाते आपको वतलाई गई हैं, उन्हे आप याद नही रख सकेगे। हमने अपनी ओर से यथा-सभव खुलकर समझाने की कोशिश की है। अव भी आप भूल जाय तो यह वडे खेद का विषय होगा। किस पद्धति से आपको याद करावे ? मेरे खयाल से स्वाध्याय के अतिरिक्त इसका दूसरा कोई तरीका नही है। अत अपने धार्मिक ज्ञान को सैद्धान्तिक ज्ञान को समृद्ध वनाये रखने के लिए हमारे सम्यक्दृष्टि श्रावक-श्राविकाओ का कर्त्तव्य हो जाता है कि वे नियमित स्वाध्याय द्वारा अपने आप मे इस प्रकार का ज्ञान-वल जगावे। ज्ञान-वल-निर्मल होगा तो दर्शन और चारित्र-वल अधिक मजवूती के साथ वढेगा। फिर आपके यहाँ तो ज्ञान-वल का वातावरण भी है। अनार्य मुल्को मे रहने वाले भाइयो को तो यह वातावरण मुश्किल से मिलता है। महाराष्ट्र और दक्षिण मे जिन गाँवो और नगरो मे साधु-महात्मा नही पहुँच पाते है, उनको वीतराग वाणी सुनने का अवसर नही मिलता इसलिये वे लोग भूल जावे तो आश्चर्य नही, क्योकि उनके सामने सैद्धान्तिक

ज्ञान को बनाये रखने का निमित्त नही है। लेकिन आप लोगो को तो साधुओ का, सतियो का निमित्त मिलता ही रहता है, जो श्रुत-धर्म और चारित्र-धर्म की बाते निरन्तर आपके सामने प्रस्तुत करते रहते है। ऐसे निमित्त के होते हुए भी आप न जगे तो यह खेद का विषय होगा, दुर्भाग्य का विपय होगा।

कोरो रह्यो रे सींधडा, सदा तेल के सग

वावाजी सुजानमलजी महाराज जिनके दर्शन आपमे से बहुतो ने किये होगे। वे कहा करते थे –

"कुसगत मे विगडिया नही व्हारो वडो सुभाग"

कुसगत पाकर भी जो विगडे नही उनका भाग्य वहुत अच्छा गिना जायगा लेकिन जो

"सुसगत मे सुधरिया नही, व्हारो वडो अभाग"

साधु-साध्वियो का सयोग पाकर भी न सुधरे तो उनका कितना वडा दुर्भाग्य है, यह शब्दो द्वारा अभिव्यक्त नही किया जा सकता। जिनको निमित्त नही मिले उनकी वात अलग है। कई गावो के लोगो को साल मे पाच दिन भी साधु सतो की वाणी सुनने का सयोग नही मिलता, वे किसी वडे आचार्य के पास वैठ कर चारित्र और ज्ञान को कैसे वढावे और अपने जीवन का विकास कैसे करे ? लेकिन जिन नगरवासियो को रात-दिन साधु-साध्वियो का सयोग मिलता है, प्रति वर्ष सतो के चौमासे जिनके यहाँ होते हैं, सदैव जिन्हे साधु-साध्वियो से धर्मशास्त्र सुनने को मिलते हैं, वे यदि कुछ भी प्राप्त न करे तो कहा जायगा—

"कोरो रह्यो रे सीधडा सदा तेल के सग"

मारवाड मे पुराने समय मे तेल जमा रखने के लिए चमडे का कूडिया होता था। उसमे निरन्तर रात-दिन तेल भरा रहता था। देशी जूती यदि करडी हो जाती है तो उस पर तेल लगा देने से वह नर्म पड जाती है। जूती का चमडा तो तेल लगाने से नर्म पड जाता है परन्तु कूडिये का चमडा इतना कठोर होता है कि उसमे निरन्तर तेल भरा रहने पर भी वह नर्म नही पडता। इसी तरह रात-दिन सत्सग का सुअवसर पाकर भी और शास्त्रो मे वर्णित गम्भीर आध्यात्मिक

विवेचनो को अहर्निश सुनते रहने पर भी किस प्रकार
हृदय कोमल नही बनेगा – यह तो आप स्वय ही मन मे
है । मिथ्यात्वी का मन कोमल नही बने तो और बात है
दृष्टि श्रावक का हृदय कोमल नही बनने का क्या कारण है
गहराई से सोचकर अन्तर्मन से आध्यात्मिक रसास्वादन
श्यकता है । किसका निमित्त पाकर जीवन मे परिवर्तन हो
इतिहास की कडिया देख ले । निमित्त मे बडा निमित्त है
इससे छोटा निमित्त है साधर्मी भाई । दो चार जानकार
निमित्त हो तो इस निमित्त से भी आने वालो के स्वभाव
पडता है ।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

महागिरि के समय की बात चल रही थी । कल बताया
कि पाटलीपुत्र मे वसुभूति को सुहस्ती का निमित्त मिला
जैन धर्म का भक्त श्रावक बन गया । जब मन मे लौ लग जा
स्वय जगने वाला भी अँधेरे मे नही रहता और दूसरो को भी
से उजाले मे लाने का प्रयास करता है । दीपक दूसरो के लि
उजाला करता है और स्वय को भी प्रकाशित करता है । एक
को देखने के लिए दूसरा दीपक जलाने की आवश्यकता न
पडती । जिस प्रकार दीपक स्वय के लिये भी और दूसरो के लि
प्रकाश करता है, उसी प्रकार आपका ज्ञान-दीपक आपके
जलेगा तो आपको उद्बुद्ध करता हुआ आपके अन्तर को भी प्रक
करेगा और दूसरे बाहरी तत्त्वो पर भी प्रभाव डालेगा । अन्य
को भी प्रकाशित करेगा । वसु-भूति ने सोचा कि सुहस्ती पध
तो उसके परिवार वालो को भी उनके सत्सग का लाभ मि
चाहिए । यह विचार कर जैसा कि कल बताया था, वसुभुति ने
सुहस्ती से प्रार्थना की कि वे उसके घर को पवित्र कर उसके परि
वालो को भी धर्मोपदेश देने की कृपा करे ।

आपका किसीकेसाथ एक सीमातक प्रेम-होना ठीक है । आप
प्रेम हमारे प्रति असीम है तो वह आपके लिये लाभ का कारण है
साधु-साध्वी का श्रावक श्राविकाओ की भक्ति पर अनुराग हो जा
जीवन को आगे बढाने मे सहायक बनता है, लेकिन वह अनुरा

सीमा तक रहे तभी स्वय साधक की साधना निर्मल रखने के साथ साथ सामने वाले को भी उठा सकेगा। गृहस्थ का त्यागी वर्ग के प्रति धर्म राग, प्रेम या अनुराग जितना अधिक होगा, उतना ही आरम्भ परिग्रह से गृहस्थ को दूर हटा सकेगा और शान्ति के नजदीक रख सकेगा। किन्तु साधु का आपसे ज्यादा राग हो जाय, ज्यादा निकट बढने लगे, तो उचित नही होगा।

अत साधु के अनुराग की सीमा है। हमारा आपके साथ अनुराग सीमातीत होगा तो हमारी सयम मर्यादा को वह गौण कर देगा। परन्तु आपकी हमारे प्रति अनुराग की सीमा नही होनी चाहिये। वह असीम होना चाहिये।

वसूभुति के प्रति आ० सुहस्ति के मनमे अनुराग था। साधु का श्रावक के प्रति अनुराग हो तो भी सावधान रहे, असावधान न हो। यदि राग सीमा से बाहर चला गया तो ससार का कल्याण करने मे वह असमर्थ बन जाएगा। आदमी कभी अपनी साधना की सीमा को भूल भी सकता है। वसुभूति आया क्यो ? आर्य सुहस्ती के प्रति अनुराग था, उनके प्रति उसका प्रेम था।

श्रमण संस्कृति के आदर्श महासन्त

एक दिन वसुभूति के यहाँ उसके पारिवारिक जनो को आचार्य सुहस्ती उपदेश दे रहे थे कि उस समय आचार्य महागिरि वहाँ भिक्षार्थ पधार गये। स्वय भिक्षार्थ भ्रमण कर अपने लिये भिक्षा लाना—यह आर्य महागिरि का प्रण था। जैसा कि पहले बताया जा चुका है आर्य महागिरि सैकडो साधुओ के महान सघ के गणनायक आचार्य थे। उनका अपने साधना मार्ग मे अत्युच्च कोटि का भाव होने के कारण उन्होने यह कठोर प्रण कर लिया था कि श्रमण सघ को वाचना देने के अतिरिक्त मुझे अनवरत साधना मे, आत्म-चिन्तन मे अधिकाधिक समय तक निरत रहते हुए अपने लिए एषणीय निर्वद्य आहार स्वय लाना है।

इसके पीछे उनका एक दृष्टिकोण था। जैन साधु देशविरति—गृहस्थ से सेवा नही लेता। अव्रती से तो सेवा लेने का प्रश्न ही उत्पन्न नही होता। जरा सा नीचे अपना रजोहरण रखा तो है, उसे लेने के लिए हमे स्वय को उतरना पडेगा। अगर आप झिला दो तो क्या

बात है ? मूलव्रत मे कोई बाधा है या उत्तरव्रत मे ? नही, आप नही झिला सकते । क्यो नही झिला सकते ? बात यह है कि जैन साधुओ ने सकल्प कर रखा है कि जीवन मे सदा स्वावलम्बी रहना, कभी परावलबी नही होना । बडी विचारणीय बात है । सर्वज्ञ सर्वदर्शी प्रभु ने पवित्र श्रमण जीवन के आचार मे कही किसी प्रकार के शैथिल्य के लिए किंचित्मात्र भी अवकाश नही रखा । यदि एक छोटी सी वस्तु को भी लेने के लिए आपका सहारा लिया तो क्या हमारा स्वावलबीपन बचा रहेगा ? नही । इसीलिये जैन श्रमण गृहस्थो से किंचित्मात्र भी किसी प्रकार की सेवा नही लेते । आर्य महागिरि भी इस भाव की उत्कर्षता को लेकर सैकडो साधुओ के होते हुए भी खुद की भिक्षा लाने हेतु स्वय ही वसुभूति के घर पहुचे । सयोग से वहा आर्य सुहस्ती विराजमान थे । वे निष्प्रयोजन वहा नही बैठे थे, वलिक वे प्रवचन कर रहे थे – वसुभूति के परिवार के लोगो के वीच मे । ऐसा करने का तात्पर्य उनका यह था कि उन लोगो को जैन धर्म का अनुयायी बनाया जावे । ज्यो ही महागिरि वहा पहुचे, महागिरि को देखते ही आर्य सुहस्ती तत्काल खडे हो गये । जिन शासन विनय प्रधान है । ढाई हजार वर्ष बीत जाने पर भी भगवान महावीर के धर्म सघ मे विनय का व्यवहार अभी चल रहा है । यदि किसी से हमारा मनमुटाव भी हो जाय तो विनय हमको मार्ग पर ला सकता है । जिन शासन की तेजस्विता मे कोई अतर नही आएगा । आचार्य सुहस्ती राजाओ के राजगुरु होते हुए भी विनयधर्म एव सत्य के बडे उपासक थे, अत महागिरि के सम्मान मे उन्होने खडे होने मे सकोच नही किया । वे तत्काल खडे हो गये । वसुभूति ने साश्चर्य सोचा कि इतने बडे आचार्य होते हुए भी आर्य सुहस्ती एक वडे साधु को आया देखकर खडे हो गये । ऐसा यह साधु कौन है ? इस वात की उसके मन मे जिज्ञासा होना स्वाभाविक ही था । वह मन ही मन ऊहापोह करते हुए सोचने लगा—"इस साधु के आने पर इतने वडे आचार्य सुहस्ती खडे हुए है तो यह कोई साधारण साधु प्रतीत नही होता । ऐसा लगता है कि सभवत यह मेरे गुरु आर्य सुहस्ती के भी गुरु हो ।"

अपनी जिज्ञासा को शान्त करने के लिये उसने आर्य सुहस्ती से पूछा—"आचार्य देव ! आप इन्हे देखते ही खडे क्यो हुए ? क्या

ये आपसे भी बडे है ?" आर्य सुहस्ती ने कहा—"हाँ, श्रेष्ठिमुख्य ! ये मेरे ज्ञान गुरु है। मेरे दीक्षा गुरु तो आर्य स्थूलभद्र थे, पर मेरे दीक्षित होने के एक दो वर्ष पश्चात् ही मेरे दीक्षा गुरु आर्य स्थूलभद्र स्वर्गस्थ हो गये। इन महामहिम आर्य महागिरि ने मुझे आगमो एव १० पूर्वो का ज्ञान-दान किया। अत आप मेरे ज्ञान गुरु भी है और बडे गुरु भाई भी।" आर्य सुहस्ती को ज्ञान किसने सिखाया ? आर्य महागिरि ने। आर्य महागिरि १० पूर्वों के ज्ञाता थे। आर्य सुहस्ती ने वसुभूति से पुन कहा—"ये मेरे ज्ञान गुरु बडे तपस्वी और उग्र-विहारी है। ये अपनी भिक्षा स्वय लाते है। साधुओ से भिक्षा मगवाने मे इनका मन आश्वस्त अथवा सन्तुष्ट नही होता। ये दूसरी वात यह भी सोचते है कि अपने आहार विहार के लिए दूसरो पर यदि मै आश्रित हो जाऊँ तो यह उचित नही रहेगा।"

आर्य सुहस्ती ने वसुभूति को अपने गुरु का परिचय देते हुए बताया कि ये ऐसी भिक्षा लाते है जिसे गृहस्थ ने अपने लिए अनुप-योगी समझ कर बाहर डाल देने के लिए रखा हो, जो काम आने वाली नही हो, केवल वाहर डालने लायक हो अथवा पशु पक्षियो को खिलाने लायक हो। ऐसी चीज महागिरि भिक्षा मे लेते हैं। इतनी कठोर जीवन चर्या सुनकर वसुभूति के मन मे महागिरि के प्रति बडी श्रद्धा और भक्ति जगी। उसके अन्तर्मन मे इस प्रकार के भाव उत्पन्न हुए कि वह भी महामुनि महागिरि को अपने यहाँ प्रतिलाभ देकर धन्य हो जाय।

महागिरि के चले जाने के पश्चात् वसुभूति ने अपने सेवको से कहा—"देखो यह महान् तपस्वी साधु परम वैरागी हैं। किसी भी गृहस्थ के यहाँ, उसके घर के सभी सदस्यो के भोजन कर लेने के पश्चात् घर मे जो भोजन सामग्री वच जाय और वह उस गृहस्थ के काम मे आने लायक नही रहे, उस भोजन को भिक्षा के रूप मे ये मुनि ग्रहण करते है।

सावधान ! धर्मानुराग पर कही राग का रग न चढ जाय

राग वश वहुत से व्यक्ति प्राय असत्य भाषण करने के लिये भी उद्यत हो जाते है। आज भी इस प्रकार के अनेक नमूने देखने मे आते है। उस समय भी इस प्रकार के नमूने मिलते थे। वस्तुत

श्रावक श्राविकाओ मे अनुराग की एक सीमा होनी चाहिये । उन्हे इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि उनका अनुराग किसी भी दशा मे धर्मानुराग की सीमा का उल्लघन न करने पाये । उन्हे साधुओ को भिक्षा देते समय सही स्थिति जता कर भिक्षा देनी चाहिये । चाहे महाराज ज्यादा लेवे अथवा न भी लेवे तो कोई बात नही । परन्तु उनको कभी अधेरे मे नही रखना चाहिये । कोई वस्तु अपने लिए बनाई या मुनि के लिये बनाई है या सूझती (निर्दोष) है या नही, यह सब भिक्षार्थ आये हुए मुनि को स्पष्ट रूप से बता देना श्रावक का फर्ज है । उन्हे अधेरे मे रखना अपने पुनीत कर्त्तव्य का उल्लघन करना है । विवेकशील श्रावक-श्राविकाओ को साधु-साध्वियो का चारित्र निर्मल रखने मे पूर्ण सहयोग देना चाहिये । श्रावक-श्राविकाओ मे यदि विवेक नही होगा तो साधु-साध्वियो का सयम भी उच्च और निर्मल नही रह सकेगा । इसलिए श्रावक-श्राविकाओ मे विवेक का होना तथा उनका अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरूक रहना परमावश्यक है ।

वसुभूति को महागिरि का परिचय दिया गया और वसुभूति के मन मे महागिरि के प्रति आदर हुआ । महागिरि के सम्बन्ध मे आगे का परिचय जैसा प्रसग होगा वैसा दिया जायगा । वसुभूति की तरह आप सब भी सत्सग के निमित्त का लाभ उठाकर धर्ममय जीवन का निर्माण करेंगे तो इहलोक और परलोक मे कल्याण एव शान्ति प्राप्त कर सकेंगे ।

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति

सिद्धि के साधन

प्रार्थना

वन्धुओ !

सुबाहुकुमार का अध्ययन चल रहा है। सुवाहुकुमार भगवान् महावीर के उपदेश से श्रावक वन गया था। साधक चाहे श्रावक हो अथवा साधु उसके लिये सर्वप्रथम अनिवार्यरूपेण सम्यग्दृष्टि होना परमावश्यक है। सम्यग्दृष्टि का सीधा-सादा अर्थ है जीव तथा अजीव अर्थात् चेतन और जड, ये जो ससार के मुख्य पदार्थ है उनका भेद समझना। जीवाजीव के भेद को समझने पर ही मनुष्य धर्म करने का, सयम पालन का, साधना करने का तथा दया पालन करने का अधिकारी होता है। प्रत्येक साधक के लिये सर्वप्रथम इस भेद को समझना अर्थात् सम्यग्दृष्टि होना अनिवार्य रूपेण आवश्यक है।

साधना का प्रथम सौपान सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान

जो प्राणी जीव को नही जानता और अजीव को भी नही जानता, वह सयम कैसे पालेगा ? जीव को जाने विना वह सयम को कैसे जानेगा ? इसीलिये कहा है – सम्यग्दर्शन को साधना का प्रथम सौपान, प्रथम सीढी। साधना की किसी उच्च श्रेणी पर आरूढ होना तो दूर, साधना के प्रथम द्वार मे प्रवेश पाने के लिए भी साधक मे सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन का होना परमावश्यक है। इसी सम्यग्ज्ञान को वताने के लिए मोक्ष मार्ग का प्रकरण चल रहा है। अव इस भूमिका मे न जाकर मूल प्रसग पर आता हूँ।

सम्यग्ज्ञान-दर्शन के विषय षडद्रव्य

यह तो भूमिका मात्र थी। जीव-अजीव को जानना प्रारम्भिक स्टेज है। मोक्ष मार्ग मे जो सम्यग्ज्ञान को स्थान दिया गया है, वह

पूर्णरूपेण उचित है, सही है। ज्ञान किसका किया जाता है ? अजीव द्रव्य और जीव का। पहले पहल द्रव्य आता है। ससार क्या है - लोक क्या है ? कल जो गाथा कही गई थी उसमे मैंने बताया था।

द्रव्य की पहचान

'एस लोगोत्ति पन्नत्तो'। लोक वह है जिसमे धर्म द्रव्य हो, अधर्म द्रव्य हो, आकाश द्रव्य हो, जीव द्रव्य हो, पुद्‌गल द्रव्य हो और काल हो। अब प्रश्न यह उठता है कि इन्हे पहचाने कैसे कि यह धर्मास्तिकाय है, अधर्मास्तिकाय है या आकाशास्तिकाय है ?

पहचानने के लिए कोई लक्षरण निशान चाहिये। जैसे पशुओ का एक टोला है, अमुक जाति के पशु मिल-जुल कर चल रहे है। उनमे से गाय को पहचानना है पर गाय के शरीर के लक्षरण नही जानेगे तो नही पहचान पायेगे। गाय कैसी होती है, भैस कैसी होती है, वकरी कैसी होती है ? जब तक इनके आकार प्रकार का ज्ञान नही होगा तब तक इन्हे नही पहचान सकेगे। गाय उसे कहते है जिसके गल कबल लटक रही हो, थुई हो, विशेष प्रकार के शृ ग हो। जिस प्रकार किसी पशु को जानने के लिए सासारिक लक्षरण होते है, उसी प्रकार धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यो की पहचान के भी लक्षरण है। अगली गाथा मे द्रव्यो की पहचान बताई गई है -

गई लक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठारण लक्खणो।
भायरण सव्व दव्वारण, नह ओगाह लक्खरण॥

उदासीन और प्रेरक कारण

इस गाथा मे तीन द्रव्यो के लक्षरण वताये गये है। पहले पहल गाथा के प्रथम चरण मे कहा है - "गइ लक्खणो उ धम्मो।" जीव और पुद्‌गल की गति मे सहायक होने के लिए जो उदासीन कारण होता है उसका नाम है धर्मास्तिकाय। कल आपको दो तरह के कारण वताये थे। शायद याद रहे होगे। एक उदासीन और दूसरा प्रेरक। उदासीन कारण उस कार्य से होने वाले लाभ या हानि को न तो जानता ही है और न उसमे भाग ही लेता है। अत जो उदासीन कारण होता है उसको वस्तुत न तो पाप ही होता है न पुण्य ही। जैसे पढने के लिए पोथी उदासीन कारण है। पोथी क्या

जाने कि वह ज्ञान मे सहायक निमित्त कारण बन गई है। जैसे कल बताया था समय जानने के लिए घडी का उपयोग उदासीन कारण क्यो बन गया ? मान लीजिये किसी को क्रोध आया, डडा उसके हाथ मे था। हाथ मे डडा होते हुए क्रोध आया तो झट से उसने दो डडे धर मारे। मारने मे निमित्त कौन बना ? डडा। डडा नही होता तो मारने की क्रिया नही होती। कभी-कभी किसी गृहस्थी मे बच्चे ऊधम मचा रहे हो तो गृहस्वामी इधर-उधर डडे की खोज मे देखता है। लेकिन डडे जैसी कोई चीज सामने नही होने से बच्चो को पीट नही सकता। उसे डडा मिले तब तक तो बच्चे इधर-उधर दौड जाते है। यदि कोई चीज उसी समय उसके सामने होती तो गुस्से मे न जाने क्या करता। तो गुस्सा क्या बना प्रेरक कारण। डडा या लाठी क्या बना ? प्रेरक नही पर उदासीन कारण और जो चलाने वाला है वह बन गया निमित्त।

कर्मबन्ध का भागीदार प्रेरक कारण

इसी तरह मान लीजिये कि दो भाइयो के बीच मे झगडा हो गया। दो मकान थे, एक तो गली मे था और दूसरा जौहरी बाजार मे। जौहरी बाजार वाले मकान पर दोनो भाइयो की नजर थी। लेकिन बडा भाई जौहरी बाजार वाले मकान को अपने कब्जे मे रखना चाहता था। गली वाला दूसरा मकान उसने छोटे भाई को दे दिया। मकान के निमित्त से झगडा पड गया। वह मकान झगडे मे उदासीन कारण बना। यदि मकान बीच मे नही होता तो शायद भाइयो के बीच झगडा नही होता। वह मकान अच्छी जगह था इसलिये उसकी अच्छी कीमत आ सकती थी। अच्छा किराया आ सकता था इसलिए दोनो भाइयो की नजर उस पर थी। एक का ममत्व बढ गया इसलिए दूसरे को भी झगडा करने का मौका मिल गया, कोर्ट तक जाने की नौबत आ गई। मकान के निमित्त झगडा हुआ लेकिन सजीव चीज नही होने के कारण मकान को कर्म बध नही हुआ। यदि कोई सजीव चीज हो जैसे घोडा, हाथी, गाय है उसके लिये झगडा हो जाय तो क्या गाय को भी कर्म बन्धन होगा ? नही। क्योकि वह उदासीन है। किसी को हानि-लाभ पहुँचाने मे वह सक्रिय भाग नही ले रही है। उसमे समझ नही है। दूसरी तरफ एक

पडौसी है, वह कहता है कि क्यो ठण्डे पड गये हो ? क्यो मकान हाथ से गवा रहे हो ? मालूम होता है खर्च से डर गये। इस तरह अन्याय के समक्ष दव जाओगे तो कमजोरी दिखेगी, इसलिए कोर्ट मे दावा दायर करना चाहिये। एक तरफ तो झगडे का कारण पडौसी बना, और दूसरा कारण मकान बना। इन दोनो मे क्या फर्क है ? एक कारण तो मकान है पर वह उदासीन है। वह सहायक कारण अवश्य है पर किसी को भी प्रेरणा नही देता। दूसरा कारण पडौसी है जो प्रेरणा देता है। इसलिए कर्मबन्धन प्रेरक को हुआ, यद्यपि वह लडा नही है, कोर्ट मे फरियाद वह नही कर रहा है। लडने की क्रिया कौन करता है ? गृहस्वामी। लेकिन पडौसी प्रेरक है इसलिए उसको कर्मबन्धन होगा। यह तो हो गई पाप-बन्धन की बात।

धर्म प्रेरणा से तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन

इसी तरह पुण्य बन्धन और धर्म की बात समझ लीजिए। कृष्ण ने सुना कि द्वारिका नगरी जलने वाली है, यह स्वर्णमयी नगरी जलकर राख होने वाली है। यह देखकर कृष्ण को वैराग्य हो आता है।

उदासीन जड कारण

जैसे नमिराज को चूडियो के घर्पणरव के सम्बन्ध मे विचार करने पर वैराग्य हुआ था, अन्य चूडियो के साथ सघर्ष के अभाव की स्थिति मे अकेली चूडी से शब्द नही होता यह देखकर नमिराज को वैराग्य उत्पन्न हुआ तो क्या चूडी को भी कुछ दलाली मिलेगी ? इतने वडे ज्ञान की उत्पत्ति चूडी के निमित्त से हुई। नमिराज का अग अग जल रहा था। शरीर को शीतलता पहुँचाने के लिए रानियाँ चन्दन का लेप कर रही थी। चन्दन घिसने मे और लेप करने मे रानियो की चूडियो की आवाज तेज हो रही थी और वह तेज आवाज नमिराज की बैचेनी को और वढा रही थी। रानियो ने देखा कि चूडियो की आवाज पति की पीडा का कारण है। पतिव्रता नारी अपना शृंगार दिखावे के लिए नही करती, सजावट और सुन्दर वस्त्र अपना मन राजी करने के लिए नही पहनती, बल्कि पति की प्रसन्नता के लिए पहनती है। यदि पति की प्रसन्नता मे इससे फर्क पडता है

या आत्म साधना मे फर्क पडता है तो वह श्रृंगार को श्रृंगार नही समझेगी। कैसी नारियाँ थी उस युग की ? उन्होने सारी चूडिया निकाल कर अलग कर दी। केवल एक-एक चूडी सुहाग चिन्ह स्वरूप रहने दी। आपके लिये तो पौषध मे भी किसी चीज को दूर करना मुश्किल होगा। खैर। पर उन रानियो ने केवल एक चूडी रखकर बाकी चूडियाँ उतार दी। नमिराज ने मत्री से पूछा – "क्या बात है, वातावरण शान्त कैसे हो रहा है ?" तब मत्री ने कहा कि रानियाँ चन्दन घिस रही थी तब चूडियो की आवाज हो रही थी। अब उन्होने अपने हाथो मे एक-एक चूडी रहने देकर शेष सब चूडिया उतार दी है। इसलिये चूडियो की आवाज नही आ रही है।

नमिराज ने सोचा कि इस आत्मा मे अशान्ति क्यो है ? राग द्वेप के कारण आत्मा विषय-कषाय, परिवार आदि मे उलझता है। इसी कारण दु ख उत्पन्न होता है। यदि आत्मा अपने आनन्दस्वरूप मे लीन हो जाय तो कभी कोई दुख हो ही नही।

शुभ कार्य के प्रेरक कारण बनो

तो नमिराज को ज्ञान किससे हुआ ? चूडी से। चूडी जड होने के साथ उदासीन कारण बनी अत वह किसी प्रकार के कर्मबन्ध की भागीदार नही। यदि आप किसी के धर्म-ध्यान के निमित्त बन जाए, जीवन भर धर्म-प्रेरणा देने का सकल्प करे तो आपको धर्म दलाली मिलेगी या जड चूडी की तरह लाभ से वचित रहेगे ? उस दशा मे प्रेरक हेतु होने के कारण आप निश्चित रूप से पुण्यलाभ के भागी बनेगे।

तो ध्यान दीजिये – एक कारण उदासीन कारण होता है वह शुभ का भी होता है और अशुभ का भी। लेकिन उदासीन कारण को कोई लाभ नही होता। लाभ कब होगा ? यदि आपको यहाँ बैठा देख कर किसी की भावना जग जाय, आप उसकी भावना जगाने मे निमित्त बने तो आपको लाभ होगा। लेकिन उदासीन निमित्त है तो उसको लाभ नही होगा।

अशुभ कार्य का प्रेरक कारण मत बनो

यदि एक आदमी किसी को धर्म मार्ग पर या भोग मार्ग पर ले

जाने का प्रेरक बने तो प्रेरक को बन्ध होगा। जैसे कोई आपको कहे कि श्रावण बीत रहा है, आमेर नही चलोगे क्या ? गोठ-गूगरी के लिये चलो, मँहगाई तो यो ही चलती रहेगी। एक आध मौका दे दो, फिर कब दोगे ? श्रावण तो बीत रहा है। भाई साहब के हाथ क्या आया ? वह प्रेरक कारण बने। आप हजार दो हजार रुपया लगा कर आरम्भ करके मिष्टान्न बनाकर तैयारी करके ले गये। गोठ की गई। चला कोई, ले गया कोई, खिलाया किसने और खाया किसने। पर वे भाई प्रेरक कारण बन कर्मबन्ध के भागी बन गये। ऐसे निमित्त आप कई बार बने होगे, बनते रहेगे। ऐसे माई के लाल कई होगे, जिनको इस प्रकार से कर्म बन्ध करने मे सकोच नही होता होगा। लेकिन धर्म की दलाली करने को कहे तो शर्म लगेगी। कहेगे "बापजी ! म्हारी कुण सुणे, म्हे तो धर्मरा आखर सुणणारो काम करा, ओ म्हारो काम नही।"

भाई, सोचने की बात है आपका जीवन उदासीन कारण की तरफ, शुभ-अशुभ निमित्त की तरफ प्रतिफल बढता जा रहा है। किसी बहिन के तन पर अच्छा गहना, कपडा, देखकर मन मे दुर्भावना पैदा हो जाय, मन मे क्लेश पैदा हो जाय, आपके कपडो के पहनावे वेश-भूषा, खर्च आदि को देखकर दूसरो के मन मे राग-द्वेष उत्पन्न हो जाय तो आपने तो उससे कुछ नही कहा तथापि आप उसकी पापवृत्ति के निमित्त बने, आपका खान-पान, आपका पहनना-ओढना, मकान बनाना आदि सारे दुनियाँ के व्यवहार प्रेरक बने, अशुभ निमित्त के लिए। इसलिये आप पाप के भागीदार बने। यदि आप आत्म-सुख के प्रेरक निमित्त बनेगे तो लाभ के भागीदार बनेगे।

कृष्ण ने कब दीक्षा ली, कितने सम्यक्व्रतो का पालन किया, कितनी सामायिक की, कितने पौषध किये ? एक बार भी नही किये। लेकिन एक बार कृष्ण ने सोचा – "मै कर्त्ता तो नही बन सकता, लेकिन मैं धर्म-मार्ग का प्रेरक क्यो नही बनू ? जो करता है उसका अनुमोदक क्यो नही बनू ?" जो लोग तन से मन से, वाणी से धर्म की दलाली करते है, खुद नही कर सके तो भी दूसरो को करने की प्रेरणा देते है, साधना मार्ग पर आगे बढने की प्रेरणा देते है, उनको उसकी दलाली अवश्य मिलती है।" कृष्ण ने सहायक प्रेरक, अनुमोदक

बनकर एकान्त पुण्य का खजाना इकट्ठा किया और वे तीर्थकर पद के अधिकारी बन गये। श्री कृष्ण का उदाहरण प्रेरक कारण का उदाहरण है।

इसके विपरीत उदासीन कारण के रूप मे चूडी और नमिराज का उदाहरण भी आपके सामने रखा है। धर्म की प्रेरणा करना प्रेरक निमित्त कारण है। आप और हम प्रेरक निमित्त कारण बने तो यह धर्मास्तिकाय की तरह उदासीन कारण नही है।

आप घर से चल कर धर्म-स्थान पर पुण्य काम के लिये आते है। धर्म-स्थान आपके लिये धर्मास्तिकाय की तरह उदासीन कारण बन गया। पर यहाँ पर मेरा बोलना धर्मास्तिकाय की तरह उदासीन कारण नही है। शरीर की जो क्रिया है, जैसे आँख टिमकाना, हिलना, चलना आदि है, वह सहकारी कारण है, लेकिन वह उदासीन के बजाय प्रेरक बने तो लाभ का कारण होता है और यदि अशुभ प्रेरक बने तो अशुभ, हानि का कारण बनता है। धर्मास्तिकाय की गति और लक्षण आपको बता दिये। आगे सूत्रकार कहते है –

अधर्मास्तिकाय का कार्य

"अहम्मो ठाण लक्खणो।" अर्थात् अधर्मास्तिकाय जड और चेतन द्रव्यो को एक स्थान पर स्थिर रहने मे सहायक होता है। अधर्मास्तिकाय के लक्षण बताते हुये कहते हैं कि धर्म मे आस्था रखने वाली आत्मा को अधर्म की ओर ले जाने मे सहायक बने अथवा धर्म की ओर जाते हुए को रोकने मे छाया की तरह उसके पीछे लगकर उसको इधर-उधर भटकाता रहे तो वह सहायक निमित्त कर्म – बन्धन का भागी बनता है। जैसे कि मान लीजिये आपकी धर्म मे आस्था है और आप धर्म चर्चा सुनने के लिए घर से निकले हैं यहाँ आने के लिए। लेकिन मार्ग मे आपको एक परिचित मिल जाय, वह आपको रोक ले और यह कहे कि मैं बम्बई जा रहा हूँ आप से कुछ काम की बात करने आया हूँ। यदि आप व्याख्यान मे जाएंगे तो काम होना मुश्किल हो जायेगा। आपको व्याख्यान मे न आने देकर उसने अधर्मास्तिकाय की तरह रोकने का काम किया। अधर्मास्तिकाय तो जीव और पुद्गल की गति को रोकने वाला उदासीन कारण बना और वह दूसरा व्यक्ति आपको व्याख्यान मे आने से रोककर

आपको व्याख्यान मे न आने देने का प्रेरक कारण बना, अत उसे कर्म-बध हुआ। इसी तरह एक आदमी व्याख्यान का लाभ लेने के लिए घरसे अथवा अपने व्यावसायिक प्रतिष्ठान से निकला लेकिन कुछ कारणवश उसकी मानसिक स्थिति ऐसी हुई कि वह रुक गया। इसमे सहायक कारण कौन हुआ और अधर्मास्तिकाय क्या हुआ, आप बता सकते है क्या ? व्याख्यान मे आते हुए आदमी की मन स्थिति को बदलने का यदि कोई व्यक्ति अनजान मे ही कारण बना है तो उसे कर्मबन्ध नही होगा क्योकि वह उदासीन निमित्त बना। लेकिन जिसने काम बताकर, प्रेरणा देकर उसे व्याख्यान मे आने से रोक दिया तो उसने प्रेरक निमित्त बन कर धर्म मे अतराय दी। इसलिए वह कर्म-बन्धन का भागी बना। इस तरह निमित्त को अलग ढग से समझाया जाय तो आपको ज्ञान का आनन्द मिलेगा और समझ मे आयेगा कि निमित्त मे किस तरह के भेद होते है। पहले उदाहरण मे उदासीन कारण निमित्त है उसमे कारण का कर्त्तृत्व नही है। उदासीन कारण जड भी होता है और चेतन भी होता है। दूसरे उदाहरण मे निमित्त कारण के कर्त्तृत्व का सद्भाव है।

सिद्धि प्राप्ति मे सहायक

किसी मोक्ष चाहने वाले साधक ने सिद्ध प्रभु की आराधना की तो इससे उसका कर्म कटा। हमारे कर्म कटने के, निर्जरा के और सिद्धि प्राप्ति के कौन-कौन से उपाय है। सिद्ध भगवान कर्म काटने के निमित्त है और साधुजी कर्म काटने के निमित्त है। दोनो मे क्या अन्तर है ? सिद्ध निमित्त बने, अक्रिय होकर और सन्त निमित्त बने सक्रिय होकर। साधु मे भी हमारी आत्मा को तारने की शक्ति है, तथा सिद्ध परमात्मा पूर्ण ज्ञानी, अक्रिय एव वीतराग है वे अक्रिय होकर भी हमारी आत्मा को तारते है और सत सक्रिय होकर तारते है। सत कैसे तारते हैं और सिद्ध परमात्मा कैसे तारते है, यह भेद आपकी समझ मे आ गया होगा।

क्या सिद्ध भगवान तारक हैं

जैन सिद्धान्त मे परमात्मा को अकर्त्ता मानते हुए भी उससे लाभ पाने की बात कही गयी है। अकर्त्ता ईश्वर से अपनी अन्तरात्मा का तार जोडकर, अपने अन्तर्मन को उस प्रभु मे लगाकर साधक तिर सकता

है। दोनो मे अन्तर यह है कि अकर्त्ता को निमित्त बनाया जाता है और कर्त्ता निमित्त बनता है, कर्त्ता प्रेरक है। सिद्ध परमात्मा अक्रिय है तो क्या अक्रिय परमात्मा किसी जीव को उपदेश देकर, प्रेरणा देकर या हाथ खीचकर अशुभ मार्ग से हटा कर पुण्य मार्ग पर लगायेगे ? परमात्मा ऐसा नही करते। परमात्मा किसी चोर को चोरी छुडा कर सन्मार्ग पर नही लाते, हिसक की हिसा छुडाकर उसको अहिसा के मार्ग पर चलने को नही कहते, असत्यवादी को सत्य के रास्ते पर नही लाते और न कुसगत छुडाकर किसी को सुसगत की ओर ही लगाते है। इस तरह परमात्मा किसी जीव के लिए प्रेरणा करके निमित्त बनने वाले नही है।

इस पर सहज ही सवाल उठता है कि जब निमित्त नही है तो आपके लिए उसका गुणगान करना, उसकी महिमा गाना, उसको याद करना आदि सारी की सारी चीजे बेकार हैं। गुण-गानादि इन सब क्रियाओ का क्या मतलब है ? गुण-गान उसका करना चाहिये जिससे कुछ मिलता हो। यह प्रश्न सहज ही उठता जायगा। एक सत ने इस तर्क को लेकर विचार किया है कि परमात्मा जब हमारे जीव को ऊँचा उठाने मे सहायक नही, हमे तारने मे सहायक नही, हमारी पतित आत्मा को ऊपर उठाने मे कुछ भी योगदान नही करता, कुछ भी मदद नही करता, तो फिर उसको हम क्यो याद करते है ? एक कवि ने हिन्दी भाषा मे इस तरह कहा –

शरणे तिरणे आयोजी !
तारक है प्रभु कि नही,
लोक यो तर्क उठायो जी ।।

जो प्रभु तारक होवे तो, क्यो जगत डुबोयो जी।

तारक नही तो नाम त्रिलोकीनाथ लजायो जी – शरणे ०

यह गहरी बात है। समय कम है, इसलिये सक्षेप मे कहना होगा। उदासीन ज्ञान का थोडा प्रसग आया इसलिये कह रहा हूँ।

भगवान हमारे तिरने के निमित्त कारण है, गुरु भी निमित्त कारण है तथा स्वधर्मी बधु भी। ध्यान की साधना मे, दर्शन और चारित्र की साधना मे ये सभी हमारे तिरने मे निमित्त है। लेकिन

निमित्त भी दो तरह के होते हैं। एक निमित्त मूक होता है और दूसरा निमित्त वाचाल। मूक अक्रिय होता है और दूसरा सक्रिय होता है। तब प्रश्न होता है कि भगवान कैसे निमित्त है ? कौन भगवान् के चरणो मे, पुष्पाजलि अर्पित करता है—शरणे तिरणे आया, शरण मे तिरने आया तो वह तिर गया क्या ? आगे तर्क करते है कि भगवान तारता नही है। कुछ ने कहा कि भगवान तारता है। दोनो प्रकार की बाते सुनकर भक्त उलझ गया कि वास्तविक बात क्या है—भगवान को भजे या नही ? इसलिये भगवान के चरणो मे प्रार्थना करता है – "शरणे तिरणे आयो जी, तारक है प्रभु कि नही, लोक यो तर्क उठायो जी" प्रभो ! 'तुम तारक हो या नहीं' – यह फैसला सुनना चाहता हूँ। कहता है – "लोग तरह तरह के तर्क उठाते है। कुछ लोग कहते है कि यदि भगवान् तारक है, दयालु है, तो सब जीवो पर दया करके उनको क्यो नही तारते ? अनन्तशक्ति वाले है तो फिर देर क्यो लगी ? एक-एक, दो-दो को तारने की बात सर्वशक्तिमान प्रभु के लिए तर्क सगत प्रतीत नही होती क्योकि वे तो अनन्तशक्ति सम्पन्न और समदर्शी है, अत ससार के समस्त प्राणियो को एक साथ एक ही समय मे तार सकते है। वे एक साथ सबके तारक बन जाय, तो लम्बी मुद्दत लगने की जरूरत नही है। भगवान यदि तारक है तो फिर जगत पाप-कर्म मे डूबे ही क्यो और क्यो उसे विभिन्न प्रकार की परेशानियाँ ही उठानी पडे ? भगवान तारता होता तो ससार के लोग बीमार क्यो होते, उन्हे तरह तरह के सकट क्यो उठाने पडते ? जो दुराचारी है वे भी भगवान की कृपा से तिर जावे तो ससार इनसे खाली हो जावे।"

इसलिये यह तर्क उठाया गया कि भगवान यदि तारक होते और उनका वश चलता तो वे ससार के सभी प्राणियो को एक साथ ही तार देते। इसके साथ ही दूसरा तर्क यह उठाया गया कि यदि भगवान तारक नही है तो फिर भगवद् भक्तो ने जो उनको तारक आदि नाम दिये है, वे सारे गलत हो जाते है। अब क्या फैसला करना ?

अब इस जगह वीतराग-विज्ञान की बात आती है। मै भौतिक विज्ञान की बात नही कह रहा हूँ। वीतराग-विज्ञान मे भगवान तारते है लेकिन क्रिया करके नही। वे तारने मे निमित्त बनते है।

कैसे निमित्त वनते है यह एक उदाहरण देकर वताता हूँ। दो व्यक्ति नदी मे डूव रहे है। पानी गहरा है अचानक वहाव मे वह गये। डूवने की स्थिति समझ कर एक ने किनारे पर जो तूवी की वेल थी उसमे से एक तूवा तोड लिया और कमर के वाध लिया। अव क्या वह व्यक्ति पानी मे डूव जायेगा ? नही। तूवी की वेल नदी के किनारे थी उस वेल से उसने तूबी ले ली एव उस तूबी को अपनी कमर मे वाध ली और इस प्रकार वह डूबने से वच गया। उसका जो दूसरा साथी था उसने कहा "तूवी तो स्वय तिराने वाली है, वह खुद ही आकर मेरे से चिपक क्यो नही जाती मै तो तूबी को नही तोड़ूगा।" एक ने तो तूवी तोडकर डोरे से कमर मे लटका ली लेकिन दूसरा भाई तूबी-भक्त तो था पर उसने तूवी को कमर मे लटकाई नही। अव इन दोनो मे से कौन तिरेगा और कौन डूवेगा इसका फैसला आप स्वय कर ले। कौन तिरेगा ? जिसने तूबी को वाध लिया है वह नही डूवेगा। लेकिन तूबी दूसरे व्यक्ति के सामने है, हाथ से उसने छू भी लिया किन्तु वह उसे कमर मे वाधता नही है तो वह डूवेगा। वह व्यक्ति तूवी को क्या कहेगा, तारनेवाली या डुवानेवाली ? वात समझ मे आयी या नही ? तूवी को तारक कहा जाएगा लेकिन तूबी का तारकपना उदासीन कारण है तारने का। यदि व्यक्ति तिरना चाहे, तूवी को पकडे तो निश्चित ही वह पार हो सकता है। यदि कोई व्यक्ति तूबी को पकडकर, उसका सहारा लेकर तैरना नही चाहता तो तूवी तारक होते हुए भी उसे तार नही सकती।

इसी तरह भवसागर पार करने के लिए भक्त ने प्रभु का मन मे ध्यान किया, प्रभु का नाम भजा है लेकिन यदि प्रभु के सम्मुख होते हुए भी वह उनका ध्यान पकडेगा नही, तो वह पार नही उतरेगा। यदि भवसागर की अथाह जलराशि मे नाव डूवू-डूवू कर रही है, उस समय डूवते हुए व्यक्ति का ध्यान परिवार मे है, सोने मे है, भगवान की तरफ ध्यान नही है, और वह प्रभु के तारक नाम रूपी तूवी के वजाय सोने की पेटी पकड ले तो सोने सहित सागर मे तत्काल डूव जायगा।

डुवोने वाली चीज छोड़ो तिराने वाली को पकडो

यदि सोना डुवाता है तो फिर चतुर लोग सोने को पकडते क्यो

है छोडते क्यो नही ? मैं समझता हूँ चादी और सोना तो तारने वाले नही होने चाहिये। अब भाई-साहब आज तक पैसे की तलाश मे थे। पैसे से सोने की सिल्लयाँ बनवाई। उनको पास मे रखेगे तो शरीर को भारी करेंगे और डूबने का हिसाब होगा इसलिये इनको पहले ही वोसरा दो। जिस तरह से एक व्यक्ति तो तूबी को पकडकर पार हो गया और दूसरे ने देखा कि १२ वर्ष तक दिसावर मे बडी मेहनत से कमा कर लाया हूँ, यह २०० तोला सोना कमाकर लाया हूँ, इसे फेकना नही है कमर मे बाध लेता हूँ। सोना कमर के बाधने के बाद नदी मे उतरने पर देख लोजिये क्या हालत होगी ? डूबेगा या तिरेगा ? तूबी तारे और सोने की सिल्ली डुबावे। जब सोना ससार में नदी के पानी की धारा मे भी डुबा देता है तो सागर मे डुबायेगा या तारेगा, इसको भी जरा गभीरता से सोचिये। ये दोनो उदासीन कारण है सोना भी और तूबी भी। तूबी तारने मे उदासीन कारण है और सोना डुबाने मे उदासीन कारण है। सोना तो जड पदार्थ है इसलिए उसको कर्म बन्धन नही होगा लेकिन हजारपति लखपति बनना चाहता है और लखपति करोडपति बनना चाहता है इसलिए सोने की प्राप्ति के लिये जो चक्र चल रहा है, उससे आपका कर्म बन्धन होगा। उदासीन कारण से भी यदि अशुभ को शुभ की ओर मोड कर लाभ लेना चाहे तो ले सकते हैं। इसके लिये आपको सावधान होना चाहिये।

आपको बताया गया कि भगवान तारक है लेकिन वे अक्रिय है। क्रिया किस को करनी है ? हमे। हम क्रिया करे, भगवान के तेजस्वी स्वरूप को अपने ध्यान मे ले तो हमारी आत्मा का पाप हल्का हो जाएगा और भव सागर से पार उतर जायेगे। भगवान का कर्त्तापन औपचारिक है। वीतराग-विज्ञान मे परमात्मा क्रिया करके किसी को तारते नही हैं। लेकिन जिस तरह सूर्य जीवनदाता है, हवा जीवनदाता है और एक डॉक्टर भी जीवनदाता है लेकिन डॉक्टर मे और हवा मे अन्तर है। डॉक्टर रोगी की बीमारी को ठीक करता है और हवा भी बीमारी को ठीक करती है। लेकिन दोनो मे कुछ फर्क है। डॉक्टर रोगी को प्रेरणा देकर उसे दवा पिलाता है,

प्रेरक है। हवा से भी हजारो आदमी अच्छे हुए है। क्षय रोग भी हवा से किसी प्रकार ठीक हो जाता है। इसका मतलब यह है कि आवहवा रोग को दूर करने मे सहायक होती है और डॉक्टर भी रोग को दूर करने मे सहायक होता है लेकिन जैसे वीतराग-विज्ञान के अनुसार परमात्मा अक्रिय तारक है – उसी तरह आवहवा भी अक्रिय तारक है। अच्छी आबोहवा के लिए रोगी को पहाड अथवा अन्य ऐसे स्थानो पर जाना होगा, अच्छी आवहवा उसके पास चलाकर नही आवेगी। लेकिन सत सक्रिय होने के कारण धर्म से विमुख आत्मा को खोजकर प्रेरणा देता है, कुमार्ग से उसे सुमार्ग की ओर ले जाता है, मिथ्यात्व से हटाकर धार्मिकता की ओर मोडता है, नास्तिक को आस्तिक बनाता है। इसलिये सतो का तारकपन सक्रिय है और भगवान का तारकपन अक्रिय है। भगवद्भक्ति से भी अनन्त जीव तिर गये है। वीतराग के शुद्ध स्वरूप का ध्यान करके उनके उपदेशो के अनुसार सयम पालन करके अनन्त जीव तिर गये है। अनन्त जीव भगवान की भक्ति से तिर गये है फिर भी भगवान अक्रिय निमित्त कहलाते है।

तारक : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

सतो के उपदेश से प्रेरणा पाकर भी कितने ही आदमी तिर गये। यदि उनकी गिनती लगाना हो तो गिनती नही कर सकते। इतिहास उदाहरणो से भरा पडा है। वसुभूति जैसे महात्मा और सप्रति जैसे महान् आत्मा किसके सहारे से तिरे है? सतो के निमित्त के सहारे। महागिरि जैसे सत के सहारे, जिनके जीवन के बारे मे आपके सामने विचार चल रहा है, उन्होने अपना जीवन सवके निमित्त लगाया। जव महागिरि और सुहस्ती दोनो मुनि विचरण करते हुए कौशाम्वी पधारे, महागिरि के समय मे भी वडे भयकर दुष्कालो का मौका आया है। पुराने समय के दुष्काल इस समय के दुष्कालो से अधिक भयकर होते थे। इसका कारण यह था कि उस समय एक जगह से दूसरी जगह जाने आने तथा लाने ले जाने के लिये आवागमन के साधन, यातायात के साधन आज की तरह सुलभ नही थे। आज तो यदि एक प्रान्त मे सूखा पड गया और दूसरे प्रान्त मे उत्पादन अच्छा हुआ है तो अच्छी उपज वाले प्रान्त से दुष्काल वाले प्रान्त मे

अन्न सुगमता से पहुँचाया जा सकता है। यदि कच्छ की रण भूमि मे सूखा पड गया तो उत्पादन वाले दूसरे क्षेत्रो से वहाँ के लोगो के लिये तत्काल खाद्य सामग्री आज के समय मे पहुँचाई जा सकती है। लेकिन वह समय ऐसा था जब कि यातायात बडा कठिन और श्रम एव समय साध्य था। साधु लोगो को भी एक गाँव से दूसरे गाँव या दुष्काल प्रदेश से दूसरे सुकाल प्रदेश मे जाने की योजना बनानी पडती थी। ऐसे कठिन समय मे कुछ सतो ने तो सथारे कर लिये। निर्दोष भिक्षा नही मिल रही थी, वे सदोष जीवन जीना नही चाहते थे, इसलिये उन्होने सथारा करना अच्छा समझा। कुछ सत सकट से बचने के लिये देशान्तर चले गये। ऐसा मौका सुहस्ती के समक्ष भी आया। भिक्षु सघ के सघाटक भिन्न-भिन्न स्थानो मे चले गए। गृहस्थो के खुद के खाने के लिए भी कमी पड रही थी। लेकिन भक्ति-भाव वाले गृहस्थ अपनी परवाह न कर सतो को पहले दे दिया करते थे। आर्य सुहस्ती के दो सत भिक्षा लेकर आ रहे थे उस समय एक भिखारी ने देखा और उसका मन मचला। वह सोचने लगा मुझे तो रोने पर भी भिक्षा नही मिलती और इन सतो को मिल गयी है इसलिये क्यो नही इनके पास से मैं ले लू। यह सोचकर उसने उन साधुओ का पीछा किया और उसने उनसे खाने के लिये कुछ देने को कहा। साधुओ ने कहा – "हम नही दे सकते। तुम आचार्य के पास जाओ।" वह भिखारी आचार्य के पास गया और उनसे कहा "मैं बहुत दिनो से भूखो मर रहा हूँ, मुझे खाने के लिये दीजिये वरना महाराज ! मै आपको खाने नही दूँगा।" सयमी का जीवन भी निराला होता है, उसकी मर्यादाए भी निराली होती हैं। सयमी दयालु अवश्य होता है लेकिन उसमे द्रव्य-दया की अपेक्षा भाव-दया का बाहुल्य होता है। भिखारी ने कहा – "महाराज ! पहले मुझे खाने के लिये दो।" सुहस्ती ने उस व्यक्ति को देखा और उससे कहा – "एक रास्ता है, हम दे सकते है। यदि तुम साधु बन जाओ तो पहले हम तुमको देगे और फिर हम खायेंगे।" उसको सुमति आई। उसने सोचा- "मै बिलख बिलख कर मर रहा हूँ। ऐसे मरने की अपेक्षा साधु बनना बुरा नही है।" उस जमाने के लोग आज के जमाने के लोगो जैसे नही हुआ करते थे। आज तो कुछ ऐसे भी लोग देखने को मिलेगे जो कर्जदार हैं और सोचते हैं कि जहर खाकर मर जाय। उन्हे भले

ही जहर खाकर मरना पडे लेकिन ऐसी स्थिति आने पर भी उनको वैराग्य नही आता। कुछ तो आत्म हत्या कर मर जाते है। कुछ दूसरे ढग से मर जाते है, कुछ डूब कर मर जाते है। कुछ चल-चित्र वालो के और दूसरो के ऐसे भी नमूने मिलते है, जिन्होने लाखो रुपयो का कर्जा किया और दूसरे हिस्सेदारो को चकमा देकर अपना हिस्सा निकाल देते है और पत्नी अथवा वच्चो के नाम कर देते है। ऐसे नमूने भी हैं। इतना दु ख सह लेगे लेकिन धर्म-मार्ग की ओर चलने को तैयार नही होगे। इन आरम्भ, परिग्रह, विषय, कषाय आदि को छोडकर भगवत् चरणो मे जाने के लिये कोई सहज मे तैयार नही होता।

उस भिखारी ने सोचा कि भूखो मरने के वजाय साधु वनने मे कोई हर्ज नही है। तपस्या करायेंगे या गाँव-गाव घुमायेंगे तो घूम लूगा, तपस्या कर लू गा। आज भी बिना इच्छा के भूखो मर रहा हूँ, इससे तो अच्छा है कि साधु बन जाऊँ।

तपस्या करने वाले आज भी कई है ८ दिन, १० दिन, २० दिन, २७ दिन की तपस्या एक बहिन कर रही है। २७ दिन का उपवास होते हुए भी उनके मन मे खुशी है, सतोप है कि अव तो गाडी किनारे लग गयी है, अब तो ३ दिन बाद मास पूरा हो जायेगा। हमारे मन की निकल गई। कितना उल्लास है उनके मन मे। तप का उल्लास वहुत सुखद होता है।

वह भिखारी साधु वन गया, उसने सयम स्वीकार कर लिया। सामायिक स्वीकार कर ली, सर्वविरति सामायिक। मुनिराज ने कहा कि पहले खाना देगे पर कई दिनो की इच्छा के कारण, कई दिनो की भूख के कारण यदि एक ग्रास भी ज्यादा खायगा तो परिणाम सुन्दर नहीं रहेगा और पेट मे दर्द हो जायगा। आखिर हुआ भी ऐसा ही, अधिक खा लेने से नवदीक्षित द्रमुक के उदर मे भयकर पीडा उत्पन्न हुई। दूसरे सतो ने सोचा कि हमारे सघ का सदस्य वन गया है अत हमे इसकी सेवा करनी चाहिये। सतो ने उसकी खूब अच्छी तरह सेवा की। सतो का उच्च आध्यात्मिक भाव देखकर उसके मन मे भी आध्यात्मिक भाव उत्पन्न हुआ और अन्त समय तक वना रहा। सतो ने जिस प्रेम और तत्परता से उसकी सेवा की उससे उसे परम

सतोप का अनुभव हुआ। सन्तो के प्रति उसके मन मे प्रगाढ श्रद्धा और गहरा आदर उत्पन्न हुआ। अन्तिम समय तक धर्म के प्रति उसका आदर वना रहा और वह अपनी जीवन लीला समाप्त करने के पश्चात् राजा अशोक के पुत्र कुणाल के यहाँ पुत्र रूप मे उत्पन्न हुआ।

उस भिखारी को एक निमित्त मिला और निमित्त के कारण उसका उद्धार हुआ। यदि वह भिक्षुओ के पीछे नही गया होता और साधु होना स्वीकार नही किया होता तो उसके अन्तर्मन मे इस प्रकार के शुद्ध परिणाम नही आते। शुभ परिणामो का सुफल यह हुआ कि जहाँ वह अनन्त संसार मे भटकने से वच गया, वहाँ उसकी आत्मा भी असयमी से सयमी वन गई और मरने के वाद राजघराने मे उत्पन्न हुआ।

उन महापुरुषो और सतो के जीवन से प्रेरणा लेकर हमारा जीवन भी असयम से सयम की ओर लगे तो हम भी अशुभ कर्मो — बुरे कर्मो से वचकर सवर निर्जरा की आराधना द्वारा आत्म-कल्याण कर सकते है। आगे सप्रति और सुहस्ती का समिलन होगा। सप्रति सुहस्ती से कैसे मिलेंगे, यह सव प्रसग आगे वताया जायगा।

इसी तरह आप भी अपने जीवन मे सत्य, असत्य का ध्यान रखते हुए क्रिया मे लगे रहकर साधना को आगे वढायेगे तो आपका इहलोक और परलोक मे कल्याण होगा।

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति

काल की लीला

प्रार्थना

वन्धुओ !

अभी सुवाहु कुमार की साधना की वात चल रही है। ऐश्वर्य और सभी प्रकार की भौतिक सम्पदाओ से समृद्ध राजकुमार होते हुए भी सुवाहु कुमार ने भगवान् महावीर की चरण सेवा मे पहुँच कर सद्धर्म की शिक्षा और दीक्षा ग्रहण की।

दीक्षा . चरम लक्ष्य की प्राप्ति का साधन

दीक्षा, शासन भक्ति के लिये किये जाने वाले कार्य की इति श्री नही है, वह तो वस्तुत साधक के लिये चरम लक्ष्य की प्राप्ति का साधन है। उसके द्वारा साधक आगे वढने का परीक्षण करता है। जिस मार्ग पर उसे जाना है, उस मार्ग पर चलने की अपनी शक्ति का साधक दीक्षा ग्रहण कर परीक्षण करता है। दीक्षा को अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति का साधन जानकर सुवाहु कुमार को उस पर श्रद्धा उत्पन्न हुई। साधना, तपस्या और श्रद्धा को उसने प्रथम उपदेश से ही प्राप्त कर लिया। चौथा नम्वर फर्सना और सेवा का है। फर्सना श्रावक और साधु के जीवन का एक अन्दर का रूप है।

श्रमण तथा श्रावक के भेद मे अभेद

सम्यक्दर्शन की दृष्टि से स्वधर्मी होते हुए भी साधु और श्रावक का भेद स्वधर्म-चारित्र की दृष्टि से है क्योकि श्रावक देश विरत अर्थात् देशव्रती है और मुनि सर्व विरत अर्थात् महाव्रती इस दृष्टि से, चारित्र धर्म अथवा व्रतो की अपेक्षा को लेकर श्रावक श्राविका परस्पर स्वधर्मी हैं। इसी प्रकार चारित्र अथवा पच महा

की अपेक्षा से साधु-साध्वी भी स्वधर्मी है। सम्यक्दर्शन और सम्यक्-ज्ञान को लेकर साधु और श्रावक दोनो स्वधर्मी है, यदि यह सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन का पाया मजबूत हो तो कभी दूर रहने वाला भी नजदीक आएगा।

श्रमण एव श्रावक धर्म की आधारभित्ति : सम्यक् तत्त्व बोध

सुबाहु मिथ्यादृष्टि से सम्यक्दृष्टि बना, सम्यग्दृष्टि से देश-विरति बना और देश-विरति से सर्व-विरति धर्म को ग्रहण करने की तरफ उसके कदम आगे कैसे बढे ? उसके अत करण मे वस्तु तत्त्व का बोध हो गया इसलिये उसके चरण आगे की ओर बढे।

तत्त्वज्ञ गृहस्थ की मन. स्थिति

वस्तु-तत्त्व का बोध पाकर आरम्भ मे यदि चिंतन की स्थिति मे भी साधक यह समझ रहा है कि वस्तुतः सच्चा कल्याण-मार्ग कौनसा है, तो वह आरम्भ और परिग्रह के बीच मे रहता हुआ भी उसे हेय समझेगा। हेय समझ लिया तो उसकी आरम्भ परिग्रह की ओर प्रवृत्ति वैसी ही होगी जैसी कि किसी स्वातन्त्र्य प्रेमी भृत्य की मनोदशा भृत्यकर्म करते समय रहती है। स्वातन्त्र्य प्रेमी भृत्य स्वतन्त्र रहने का विचार करता है, वह चाहता है कि वह खाली रहे, विश्राम करे, भृत्यकर्म से अवकाश ग्रहण करे लेकिन पराधीनता-तावेदारी के कारण चाहते हुए भी उसे अवकाश नही मिलता सम्यक्त्व का बोध होने पर श्रावक की परिणति भी ऐसी हो जाती है। वह अपने आप मे अनुभव करता है कि मै पराधीन हूँ – कुटुम्ब के, परिवार के। समाज के प्रति जो दायित्व है उसमे फसता जा रहा हूँ। पराधीनता है इसलिये मुझे आरम्भ, परिग्रह की प्रवृत्तियाँ करनी पडती है। यदि अवसर मिले और अनुकूल स्थिति हो तो मैं उस दिन को अपने लिये अधिक उत्तम और कल्याणकारी मानू गा, जिस दिन इन सब बधनो को काटकर अपना जीवन आगे ऊँचा उठाने मे समर्थ होऊँगा। सम्यक्दृष्टि की गृहस्थ जीवन मे रहते हुए भी यह मान्यता, यह आन्तरिक धारणा बनी रहती है कि वह आरम्भ – परिग्रह का त्याग करे। यह इस बात का प्रमाण है कि उसे वस्तु-तत्त्व का ज्ञान हो गया है।

ज्ञान से तत्त्व बोध, आत्म बोध और निवृत्ति

"ज्ञान क्या है ?" "ज्ञान किसका" ? इस विषय मे सक्षेपत मोक्ष मार्ग के अध्याय मे विचार किया गया और तत्त्व बोध की दृष्टि से ज्ञान को पहला पाया बताया गया। ज्ञान द्वारा षट् द्रव्यो और नौ पदार्थो का, उनके हेय, ज्ञेय, उपादेय स्वरूप का बोध हो जाता है। हेय, ज्ञेय, उपादेय का बोध होने पर मानव आत्मस्वरूप को समझ लेगा और पदार्थो के हेय, ज्ञेय, उपादेय स्वरूप को समझ लेने के पश्चात् वह आरम्भ परिग्रह मे गति नही करेगा। इनका बोध होने पर साधक पहले आत्मस्वरूप को समझ लेगा। आत्म स्वरूप को समझ लेने के पश्चात् अर्थात् सवर, निर्जरा, रूपी उपादेय आत्मगुणो को समझ लेने के पश्चात् उद्‌बुद्ध भव्यात्मा आरम्भ, परिग्रह, रति, अरति एव काम क्रोधादि १८ पापकर्मो से निवृत्त होने का प्रयास करेगा।

आकाश का लक्षण

पहले द्रव्य, गुण और पर्याय का स्वरूप सक्षेप मे समझाया गया। धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय इन दो द्रव्यो के लक्षण के सम्बन्ध मे भी पहले बता दिया गया है। अब तीसरा द्रव्य आता है आकाश। आकाश द्रव्य का लक्षण सूत्रकार ने बताया है :—

> गई लक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाण लक्खणो।
> भायण सव्वदव्वाण, नह ओगाहलक्खण ॥

धर्मद्रव्य गति लक्षण वाला है, अधर्म-द्रव्य स्थिति लक्षणवाला और आकाश द्रव्य अवकाश लक्षण वाला है। आकाश-द्रव्य अवकाश लक्षण वाला होने के साथ ही सब द्रव्यो के रहने का स्थान भी है।

आकाश द्रव्यो का भाजन

जड अथवा चेतन जितने भी द्रव्य है उन सब के लिये रहने मे आकाश सहकारी कारण है। इसीलिये आकाश को द्रव्यो का भाजन कहा है। बिना भाजन कोई भी द्रव्य टिक नही सकता, चाहे वह द्रव्य द्रवीभूत हो अथवा सघन हो। पानी, तेल जैसा द्रव द्रव्य हो, अथवा, फल, फूल, धन, धान्य, धातु किवा पत्थर की तरह ठोस द्रव्य हो, दोनो तरह के द्रव्यो को अवकाश देने का काम आकाश का है।

आकाश के कारण ही जीव ठहरा हुआ है। लोक मे अनन्त पुद्गल भरे हुए है, उन सबको अवकाश देने वाला कौन है ? आकाश। एक द्रव्य जहाँ है वहाँ उसके साथ दूसरे द्रव्य भी होगे।

लोक जीव और पुद्गलो से ओतप्रोत

सम्पूर्ण लोक पुद्गलो से, जीवो से ठसाठस, पूरी तरह भरा पडा है। इसमे हवा भी है, परमाणु भी है, जीव भी है। इसमे पृथ्वीकाय के जीव है, अपकाय के जीव है, तेजस्काय के जीव है, वनस्पतिकाय के जीव भी है, वायुकाय के जीव भी भरे है। आप कहेगे कहाँ है बताइये। दो तरह के जीव होते हैं एक तो सूक्ष्म और दूसरे बादर।

सम्पूर्ण लोक मे अनन्तानन्त सूक्ष्म जीव सर्वत्र भरे पडे है। अनन्त बादर जीव भी लोक मे व्याप्त है। पृथ्वी पर भी आपको बादर जीव दिखाई देते है। जल के बादर जीव और पृथ्वीकाय के बादर जीव भी आपको दिखाई देते है, वनस्पतिकाय के बादर जीव भी आपको दिखाई देते है।

आकाश मे अवकाश की संगति

सम्पूर्ण लोक अथवा लोकाकाश मे एक सूई की नोक के बराबर स्थान भी ऐसा नही है, जो जीव एव पुद्गलो से रिक्त हो। अब प्रश्न यह उठता है कि लोकाकाश मे पृथ्वीकाय, वनस्पतिकाय, पशु-पक्षी आदि सभी प्रकार के जीव भरे है और कही किञ्चितमात्र भी जगह खाली नही है तो नये-नये जीवो की उत्पत्ति होने पर वे सब एक ही जगह मे कैसे रहेगे ?

इसके समाधान के लिये एक उदाहरण दूध का है। जैसे दूध है उसमे शक्कर अथवा पताशे डालेगे तो वे दूध मे घुल जायेगे, मिल जायेगे, पताशे अथवा शक्कर के लिये अलग जगह की आवश्यकता नही रहेगी। यदि दूध को गर्म किया तो ऊष्ण हो जायेगा। पुद्गलो मे जो उष्णता है वह उस दूध मे मिल गई तो उष्णता वाले पुद्गलो को अलग जगह की जरूरत नही पडेगी। कदाचित् दूध अधिक गर्म है तो उसे ठण्डा करके पीना होगा। गर्म दूध के बर्तन को बर्फ पर रख देगे तो दूध ठण्डा हो जायेगा। दूध को गर्म करने से उष्णता के

परमाणुओ को उष्णता के पुद्गलो को दूध मे जगह मिल गई। इससे यह सिद्ध हो गया कि आकाश मे जगह देने की एक शक्ति है, यह उसका गुण है। जहाँ जगह नही दिखती उस जगह भी सूक्ष्म पदार्थो को गु जाइश मिलती है और उसमे वे समा जाते है। एक समान सूक्ष्म होने के कारण एक से दूसरा टकराता नही है। जहाँ पृथ्वीकाय भरा है, वहाँ अपकाय, वायुकाय, तेजस्काय, वनस्पतिकाय, धर्मास्तिकाय, एव अधर्मास्तिकाय के असख्य प्रदेश भी भरे हैं। लोक के प्रत्येक प्रदेश पर धर्मास्तिकाय के प्रदेश भी है, अधर्मास्तिकाय के प्रदेश भी हैं और जीव प्रदेश भी है। लोक-प्रदेश मे ये सब भरे पडे है। इन सबको-तीनो को एक जगह कैसे मिली, इसको समझना चाहिये।

अपने सारे शरीर मे भी आकाश है या नही ? आकाश है। यदि आकाश न हो तो जिन-जिन अगो उपागो से जीव खुराक लेता है, स्वास बाहर निकालता है वे सारे के सारे कार्यक्रम कैसे सभव हो ? यदि आकाश न हो तो हवा कहाॅ रहे, स्वास कहाँ समावे। इससे प्रमाणित होता है कि हमारे शरीर मे भी आकाश है। और तो और हमारी इस हड्डी मे भी आकाश है। जब कभी डॉक्टर शल्य-क्रिया करके एक हड्डी मे कील ठोक कर हड्डियो को जोडता है, उस समय जब कील हड्डी मे समावेगी तो समझा जाएगा कि हड्डी मे जगह है। इसी प्रकार लोक मे सर्वत्र आकाश है, ऐसा कोई स्थान नही है, ऐसी कोई जगह नही है जहाँ पर आकाश नही हो। आकाश का काम है जगह देना और उसके द्वारा जगह मिलना। आकाश के इस गुण से आकाश का अस्तित्व प्रमाणित हो जाता है।

इस प्रकार धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, और आकाशास्तिकाय का स्वरूप आपके सम्मुख रखा गया।

काल का लक्षण

अब आप काल का लक्षण समझ ले।

वत्तणालक्खणो कालो, जीवो उवओगलक्खणो।
नाणेण दसणेण य सुहेण य दुहेण य॥

काल वर्तना लक्षण वाला है। इसका तात्पर्य यह है कि वस्तु अथवा पदार्थ की वर्तना जाननी हो तो वह काल के द्वारा जानी जा

सकती है। "यह वस्तु है", "यह वस्तु थी", "यह वस्तु होगी" – आदि शब्दो के प्रयोग काल के कारण ही हो सकते है। काल क्या है? कही दिख रहा है क्या? दिखता नही है, क्योकि काल अरूपी है। लेकिन काल का काम तो स्पष्टत दृष्टिगोचर होता है। जैसे आपने आज नवीन वस्त्र धारण किया, ज्यो-ज्यो अहोरात्र, सप्ताह, पक्ष मासादि व्यतीत होते है त्यो-त्यो उस वस्त्र पर निरन्तर चलते हुए कालचक्र का पडता हुआ प्रभाव क्रमश स्पष्ट से स्पष्टतर दृष्टिगोचर होता है। नवीन वस्त्र आज धारण किया, उसे धारण करने के कुछ क्षण अनन्तर ही उसकी निर्मलता मे, आव मे फरक पडना प्रारम्भ हो जायगा और १० दिन के पश्चात् तो उस वस्त्र की रगत ही बदल जायगी। यह फर्क कैसे पडा? फर्क पडने का उदासीन निमित्त कारण काल है। हम प्राय प्रतिदिन छोटे मोटे प्राणियो के जन्म एव क्रमिक विकास को देखते रहते है। जन्म के समय अनेक प्राणियो की आखे बन्द रहती है किन्तु २० दिन बाद उनकी आखे खुल गई और वे हलचल करने लगे जैसे कुत्ते और बिल्ली के बच्चे। १० दिनो मे उनके शारीरिक गठन एव उनके क्रिया-कलाप मे, उनकी चहल-पहल मे पर्याप्त प्रगति हो जाती है, और वे दौडने-फिरने लग जाते है। उनमे यह फर्क क्यो पडा? इसलिये पडा कि जो काल बीत गया वह कुछ काम कर गया। यह बता रहा है कि काल-प्रभाव से द्रव्य की पर्याय निश्चित समय मे बदल गई।

काल के भेद-प्रभेद

काल समय भर है, वर्तमान है किन्तु व्यवहार मे काल को भी सीमाओ मे, विभेद मे आबद्ध किया गया, उसको बाधा गया। सेकिन्ड, मिनिट, पल, घडी, मुहूर्त, घटा, दिन, रात, सप्ताह, पक्ष, महीना, वर्ष, आदि-आदि सीमाओ मे काल को भी बाध दिया गया।

आपने पुराने जमाने की पानी की और रेत की घडी देखी होगी। उसमे 'मिनिट' के समय को जानने का साधन नही है कि अब एक मिनिट निकल गया और अब दूसरा मिनिट आया। पानी और रेत की इन घडियो मे सेकिण्ड की बात तो दूर मिनिट के समय का भी कोई पता नही चलता। मनुष्य ने अपनी बुद्धिमानी का चक्र चलाया और सोचा कि इस टाइम को भी कैसे बाधा जाय। काच के दो बर्तन

जोडे और बीच मे छोटा सा छेद रखा। ऊपर वाले बर्तन मे रेत भर दी और वह उस छेद से धीरे-धीरे सरक कर नीचे वाले मे गिरने लगी। यह अन्दाज लगा लिया कि कितनी देर मे वह रेत खाली हो जाती है और उस हिसाब से ४८ मिनिट की या ६० मिनिट की सीमा बाध ली। आपने ४८ मिनिट वाली और ६० मिनिट वाली रेत की घडिया देखी होगी। छेद मे से एक क्षण मे कितनी रेत गिरती है, उसको देखकर रेत से काल को बाध लिया। इसी तरह सेकिण्ड, मिनिट, घण्टे, दिन, रात, वगैरह-वगैरह से काल को बाध लिया।

नाडी की धडकन को कुछ सेकिण्ड तक अथवा एक मिनिट तक गिनकर डॉक्टर, वैद्य या हकीम वताता है कि इतने सैकिण्ड मे अथवा एक मिनिट मे नाडी की गति क्या रही। इस तरह से काल को सीमा मे वाध लिया। लेकिन यह काल का व्यावहारिक रूप है कि घडी भर समय वीता या दो घडी का समय बीता। इस व्यवहार से काल का रूप भी बदला। नक्षत्रो की दृष्टि से भी महीने का समय होता है। कोई महीना २७-२८ दिन का होता है तो कोई पूरे ३० दिन का लेकिन अभिवर्द्धन का महीना ३१ दिन का होता है।

जैन दर्शन की यह खूबी है कि अनेकान्त दृष्टि से विश्वस्त होकर 'महीना' शब्द को कबूल करेंगे। २७ दिन का महीना कौनसा हो गया ? नक्षत्रो का। नक्षत्रो के हिसाब से, एक-एक दिन मे एक-एक नक्षत्र अपनी गति करके जितना समय पूरा कर गया वह नक्षत्र मास २७ दिन का हो गया। फिर चन्द्रमा ने अपनी गति पूरी की तो २६ दिन का महीना हो गया और सूर्य की गति के हिसाब से महीना ३० दिन का हो जायेगा। इसमे आदित्यमास भी होता है। हमारे यहा शास्त्रो मे ५ तरह के महीने और ४ तरह के वर्ष वताये गये हैं और ५ वर्ष का जैन युग कहा जाता है। लौकिक युग १२ वर्ष का कहलाता है लेकिन जैन युग ५ वर्ष का होता है। नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य ऋतु के अनुसार समय को वाधा गया है। अभिवर्ग ऋतु से १३ महीनो का अभिवर्ग वर्ष हो जाता है।

मेरे कहने का तात्पर्य इतना ही है कि उपचार से काल का वचन हो गया इसलिये यद्यपि निश्चय मे तो काल एक माना है लेकिन व्यवहार मे अनेक मान लिया गया है। जैसे मैंने अभिवर्द्धन वर्ष कहा

वैसे ही विज्ञान ने प्रकाश वर्ष कहा। नक्षत्र से प्रकाश भूमि तक जितने समय मे पहुँचता है, उस दृष्टि से उन्होने वर्ष का ज्ञान लिया है। प्रकाश के जमीन पर पहुँचने के हिसाब से दिन मे फर्क पडेगा। जो फर्क पड गया वह प्रकाश या ऋतु की अपेक्षा से है। इस तरह से काल अपना स्वतन्त्र रूप नही रखता है। काल का रूप किस पर निर्भर है ? पदार्थो के परिवर्तन पर।

और पदार्थो का परिवर्तन किस पर आश्रित है ? काल पर। तो ये दोनो परस्पर सापेक्ष है। इसलिये कहा "वत्तणा लक्खणो कालो"। काल स्थिर नही रहता, निरन्तर गति करता है।

काल को गति के साथ हमारी भी गति प्रगति को ओर हो

काल तो गति कर गया और यदि हम गति नही करेंगे तो ? काल की गति के साथ हमारी गति चलती रही तब तो हम पीछे नही रहेगे वरना पीछे रह जायेगे। दो चीजे है। एक तो गति करता है और दूसरा स्थितिमान रहता है। मान लीजिये दो-चार साथियो ने चलने का विचार किया। जो गतिमान साथी है वे तो धीमे-धीमे चलते हुए भी मीलो मार्ग तय कर लेगे और जो गतिहीन है वे जगह की जगह ही पडे रहेगे। इस स्थिति मे काल का सदुपयोग करने की दृष्टि है तो उसको ध्यान मे रखकर काल का लाभ उठाया जा सकता है। सूत्रकार कहते है कि अविकल रूप से चलने वाला काल यदि हाथ से निकल गया और बाद मे सावधान बने तो फिर तुम्हारे वश की कोई बात नही रहेगी। क्योकि काल तुम से बधा नही है बल्कि तुम काल से बधे हो। आपको स्वय को काल के साथ चलना है। काल आपके साथ की अपेक्षा कभी नही करेगा। बिना किसी के साथ की अपेक्षा किये वह तो अपनी गति से अविकल रूपेण चलता ही रहेगा। यदि आप सजग एव अप्रमत्त नही रहे और निरन्तर प्रवाही काल आपके हाथ से निकल गया तो अवसर चूक जाने के कारण आपको अन्त मे हाथ मल-मलकर पछताना पडेगा। जैसा कि सूत्रकार ने कहा है –

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिणियट्टइ।
अहम्म कुणमाणस्स, अफला जति राइओ।।

अर्थात् जो-जो रात्रियाँ बीत चुकी है वे बीती हुई राते फिर से आती नही है। निकल गई सो निकल गई और उनके निकल जाने के पश्चात् जो अधर्म करने वाले जीव है, उनके वे क्षण, मुहूर्त, वे राते अफला अर्थात् निष्फल जाती है। वे सुकृत के स्वादु फल से वचित रह दुष्कृत के दारुण दुष्फल के भागी होते है। जो दिन जो रात्रियाँ चली गई वे तो चली ही गई। अब जाने वाले समय को सफल कैसे करना, यह सोचना है। यात्रिक लोग घडी का टाइम बाध गये कि सूइये अमुक रीति से घूमेगी। हम मे भी टाइम को बाधने की कला है तो अवश्य। कला आपके, हमारे पास है लेकिन उस कला का यदि उपयोग करना आ जाय तभी कार्यसिद्धि सभव है। समय चाहे थोडा ही क्यो न हो, पर यदि उसका उपयोग करना आ जाय तो थोडे समय मे भी साधक उसे अपने लिये लाभदायक बना अपने लक्ष्य की प्राप्ति मे सफल हो सकता है। धर्म की साधना मे पल-पल, क्षण-क्षण तक के समय का सदुपयोग करने वाले जागरुक साधक के सम्बन्ध मे सूत्रकार ने कहा है –

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिणियट्टइ।
धम्म च कुणमाणस्स, सफला जति राइओ॥

अर्थात् बीती हुई रात्रियाँ फिर नही लौटती। अहर्निश धर्म की साधना मे निरत रहने वाले व्यक्ति की रात्रियाँ ही वस्तुत सफल होती है।

सद्गुरु की प्रेरणा एव अपनी आन्तरिक लगन से एक-एक क्षण का धर्म साधना मे सदुपयोग कर एक अत्यल्प वयस्क साधक स्वल्पतर समय मे ही किस प्रकार आत्म कल्याण कर लेता है, इस सम्बन्ध मे बालक मुनि मणक का एक बडा ही प्रेरणा प्रदायी प्राचीन उदाहरण उपलब्ध होता है।

जैन इतिहास मे इस प्रकार का उल्लेख आता है –

आर्य जम्बू स्वामी के निर्वाण के कतिपय वर्ष पश्चात् प्रभु महावीर के तृतीय पट्टधर आर्य प्रभव एकदा रात्रि की वेला मे योगसमाधि लगाये ध्यान मे मग्न थे। मध्य रात्रि के अनन्तर ध्यान का पारण कर लेने पर आर्य प्रभव के मन मे एक विचार उठा कि उनके पश्चात् प्रभु महावीर के अति विशाल धर्म सघ का अच्छी

तरह सचालन एव सवर्द्धन करने वाला सुयोग्य व्यक्ति कौन हो सकता है। अपने सुयोग्य उत्तराधिकारी के चयन के दृष्टिकोण से अपने पास ही निद्रा मे सोये हुए तथा विभिन्न क्षेत्रो मे विचरण करने वाले अपने शिष्य परिवार के प्रत्येक सदस्य की योग्यता का मूल्याकन करना प्रारम्भ किया। जब उन्हे अपने श्रमण सघ मे कोई भी श्रमण अपनी कल्पना के अनुरूप महान् प्रभावक, असाधारण प्रतिभा सम्पन्न एव सभी दृष्टियो से सुयोग्यतम पट्टधर के रूप मे नही जँचा तो अपने श्रमण समूह से अपना ध्यान हटाकर अन्य किसी व्यक्ति की खोज के लिये उन्होने श्रुतज्ञान का उपयोग लगाया।

चतुर्दश पूर्वधर श्रुतकेवली आचार्य प्रभव को अपनी इच्छा के अनुरूप अपने पट्टधर पद के योग्य व्यक्ति को खोजने मे तत्काल सफलता मिल गई। उन्होने ज्ञान बल से देखा कि राजगृह नगर निवासी शय्यभव भट्ट नामक वत्स गोत्रीय ब्राह्मण यदि श्रमण धर्म मे दीक्षित हो जाय तो वह कालान्तर मे उनके पश्चात् प्रभु महावीर के सुविशाल धर्मसघ का समीचीनतया सचालन एव सवर्द्धन कर सकता है। यथाशीघ्र राजगृह पहुँचकर शय्यभव भट्ट को प्रतिवोध देने का आचार्य प्रभव ने उसी समय निश्चय किया।

दूसरे दिन प्रात काल आर्य प्रभव उस स्थान से विहार कर अपने कतिपय शिष्यो के साथ राजगृह नगर पहुँचे। महान् गणनायक आर्य प्रभव के आने का सुखद सवाद सुनते ही जन समुद्र उनके दर्शनो के लिये उमड पडा। राजगृह नगर मे पहुँचते ही आर्य प्रभव ने अपने दो श्रमण शिष्यो को आदेश दिया – "श्रमणो ! इस समय शय्यभव भट्ट एक वडे यज्ञ का अनुष्ठान कर रहा है। तुम दोनो इसी समय भिक्षार्थ उसकी यज्ञशाला मे जाओ। वहाँ पर जब ब्राह्मण लोग तुम्हे भिक्षा देना अस्वीकार कर दे, तव तुम घनरव तुल्य गम्भीर उच्च स्वर मे – 'अहो कष्टमहो कष्ट, तत्व विज्ञायते न हि।' यह श्लोकार्द्ध सुना देना और तत्काल यहाँ लौट आना।

अपने आचार्य के आदेशानुसार दोनो साधु शय्यभव के विशाल यज्ञमण्डप मे पहुँचे और यज्ञशाला मे भिक्षार्थ खडे हो गये। वहाँ यज्ञशाला मे उपस्थित विद्वान् ब्राह्मणो ने उन दोनो साधुओ को यज्ञ के अन्न की भिक्षा देने से स्पष्ट शब्दो मे इन्कार कर दिया। इस पर

मुनि युगल ने उच्च गम्भीर स्वर मे – 'अहो कष्टमहो कष्ट, तत्व विज्ञायते न हि ।' यह श्लोकार्द्ध सुनाया और तत्काल जिस ओर से आये थे, उसी ओर लौट पडे ।

जव पास ही वैठे हुए, यज्ञानुष्ठान-रत शय्यभव भट्ट ने मुनि-द्वय द्वारा उच्चारण किये गये श्लोकार्द्ध को सुना तो वह ईहापोह मे उलझ कर विचार करने लगा – "सर्वथा सत्यवादी श्रमण कभी किसी भी दशा मे असत्य भाषण नही करते । मैंने सारभूत तत्त्व को नही समझा अत उन साधुओ को दु ख हो रहा है । यदि साधु मेरे लिये दु खी है, मेरे कारण साधुओ को दु ख हो रहा है तो इसका स्पष्ट अर्थ यही है कि निश्चित रूप से मेरा अकल्याण हो रहा है ।"

तत्वज्ञान के विषय मे उसका अन्तर आन्दोलित हो उठा । उसके अन्तर मे एक साथ अनेक प्रकार की शकाए उठने लगी । उसके मानस मे उठे सशयो के तूफान ने जव उसके अन्तर को बुरी तरह झकझोरना प्रारम्भ किया तो उसने यज्ञानुष्ठान की क्रिया से विरत हो यज्ञ का अनुष्ठान कराने वाले उपाध्याय से प्रश्न किया – "पुरोहितजी ! वास्तविक तत्त्व क्या है ? आप मुझे तत्त्व का सही स्वरूप समझाइये ।"

उपाध्याय ने घुमा फिरा कर शय्यभव भट्ट के प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास किया । उसने कहा – "यजमान ! तत्त्व का सार यही है कि वेद धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को देने वाले है । तत्वद्रष्टाओ का यही कथन है कि वेदो से परे कोई तत्त्व नही ।"

तदनन्तर उपाध्याय ने फिर कहा – "यज्ञक्रिया ही सार तत्त्व है ।"

उपाध्याय के उत्तर से असतुष्ट एव अप्रसन्न हो शय्यभव ने क्रुद्ध स्वर मे कहा – "पुरोहितजी ! तुम्हे वहुत दिन हो गये मुझे भरमाते हुए । आज तुम्हे सच-सच वताना ही होगा कि तत्त्व क्या है ?"

शय्यभव जाति से तो व्राह्मण थे किन्तु राजवश के साथ उनका पीढियो से सम्पर्क था अत उनमे तेजस्विता आ गई और उन्होने तलवार म्यान से वाहर निकाल कर कडकते हुए कहा – "सही वात वताओ कि तत्त्व क्या है, अन्यथा मैं अभी तुम्हारी गर्दन उडा दूँगा ।"

अपने यजमान का काल के समान रौद्ररूप देखकर उपाध्याय थर्रा उठा। 'अब तो सच्ची बात बताये बिना प्राणरक्षा असभव है', यह सोचकर उसने कहा – "तत्त्व का सही ज्ञान जिनधर्म मे है, निर्ग्रन्थ श्रमण आचार्य प्रभव आज यहाँ आये है, सही तत्त्व का ज्ञान आपको उन्ही से प्राप्त हो सकेगा।"

उपाध्याय का उत्तर सुनकर शय्यभव का क्रोध शान्त हुआ। उसने तलवार एक ओर रखकर यज्ञोपकरण एव सम्पूर्ण यज्ञ सामग्री का उपाध्याय को दान कर दिया। वह तत्काल आचार्य प्रभव की धर्म सभा मे पहुँचा। वहाँ शय्यभव ने आचार्य प्रभव के चरणो मे मस्तक झुका कर सही तत्त्व का ज्ञान देने की उनसे प्रार्थना की।

सच्चे जिज्ञासु शय्यभव पर कृपा कर आर्य प्रभव ने सम्यक्त्व, मोक्षमार्ग, अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह-मूलक धर्म का स्वरूप समझाते हुए शय्यभव से कहा – "शय्यभव ! यही तत्त्व, यही सच्चा ज्ञान और यही स्वपर कल्याणकारी सच्चा धर्म है। वीतराग सर्वज्ञ-सर्वदर्शी प्रभु द्वारा प्ररूपित अवितथ तत्त्वज्ञान को हृदयगम कर उसको अपने आचरण मे उतारने वाला साधक अन्ततोगत्वा जन्म-जरा-मृत्यु के दारुण दु खो से सदा-सर्वदा के लिये छुटकारा पाकर मोक्ष के अव्याबाध अनन्त सुख को प्राप्त करने मे सफल काम होता है।"

आचार्य प्रभव के मुखारविन्द से प्रवाहित हुई त्रिविध ताप-हारिणी पीयूष धारा का पान कर शय्यभव प्रबुद्ध हुआ। उसके अन्तर मे सम्यक्त्व की दिव्य ज्योति प्रकट हुई। सच्चे सुख की प्राप्ति के लिये उसका अन्तर्मन लालायित हो उठा। मोह-ममत्व के प्रगाढ बन्धनो को एक ही झटके मे तोडकर उसने बिना क्षणमात्र का भी प्रमाद किये तत्काल आर्य प्रभव के पास सकल कलिमल, भवभय हारिणी, शाश्वत शिवसुख प्रदायिनी भागवती दीक्षा ग्रहण कर ली। अपनी पत्नी तक को नही पूछा और इस प्रकार सिंह के समान पराक्रमी शय्यभव भट्ट ने "ज्ञाते तत्त्वे क ससार"-की सूक्ति को चरितार्थ कर अमर कर दिया।

जिस समय आर्य शय्यभव भट्ट ने श्रमण धर्म की प्रव्रज्या अगीकार की, उस समय उनके परिवार मे उनकी पत्नी के अतिरिक्त

और कोई सदस्य नही था, कोई बच्चा नही था। उन्हे यह विदित था कि उनकी पत्नी गर्भवती है, पर उद्‌बुद्ध-शय्यभव का मन इस ममत्व के बन्धन मे भी नही उलझा। जिसे सही अर्थ मे वास्तविक तत्त्व का बोध हो जाता है वह मोह-ममत्व-स्नेह आदि सभी प्रकार के बन्धनो की डोर को काट डालता है। स्नेह की डोर कट जाने के पश्चात् प्रबुद्धचेता व्यक्ति कभी आगे-पीछे की बात नही सोचता। उसे अपने लक्ष्य के अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई नही देता। उसके चरण अभीष्ट पथ पर स्वत चल पडते है और वह निरन्तर अपने लक्ष्य की ओर बढता ही जाता है।

शय्यभव भट्ट के प्रव्रजित होने की वात सुनकर राजगृह नगर के नर-नारी अवाक् रह गये। जिसने भी यह सवाद सुना, उसने शय्यभव की पत्नी के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए खेदपूर्ण दीर्घ निश्वास के साथ यही कहा – "शय्यभव भट्ट जैसा वज्रहृदय न तो आज तक कभी देखा और न सुना ही, जो अपनी सती-सुन्दरी युवा पत्नी को असहाय-एकाकिनी छोडकर श्रमण वन गया। यदि एक पुत्र भी होता तो यह वाला उस आशावल्लरी के सहारे जैसे-तैसे अपना जीवन व्यतीत कर लेती।"

शय्यभव की पत्नी के पास सहानुभूति प्रकट करने हेतु आने वाली स्त्रियो का ताता सा लग गया। पडौस की उसकी दिल मिली समवयस्का सहेलियो ने बात ही वात मे भट्ट पत्नी से पूछा – "कहो सरले ! क्या तुम्हे आशा है कि भट्टवश का कुल प्रदीप तुम्हारी कुक्षि मे आ चुका है ?"

लज्जावनता भट्टपत्नी ने उस समय की अपनी वोल-चाल की भाषा मे केवल एक शब्द कहा – "मणग"। 'मणग' का सस्कृत रूप है 'मनाक्'। मनाक् का अर्थ है 'कुछ' अथवा 'थोडा'। भट्टपत्नी द्वारा उनके प्रश्न के उत्तर मे कहे गये "मणग" शब्द से उन युवतियो ने समझ लिया कि कुछ आशा है। उन युवतियो के माध्यम से वह सुखद सवाद उसी दिन नगर मे सर्वत्र फैल गया। सबको वडा हर्ष एव सतोष हुआ।

समय पर शय्यभव की पत्नी ने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। माता द्वारा 'मणग' शब्द के उच्चारण से ही लोगो को उस वालक

के आगमन की पूर्व सूचना प्राप्त हुई थी। अत' परिजनो एव पौरजनो ने उसका नाम 'मरणक' रखा। समय पर बालक मरणक को अध्ययनार्थ पाठशाला भेजा गया। शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की कलाओ के समान क्रमश अभिवृद्ध होते हुए मरणक ने अपनी आयु के सात वर्ष पूर्ण कर आठवें वर्ष मे प्रवेश किया। अध्ययन के साथ-साथ उसकी क्रीडा का क्रम भी चलता रहा। एक दिन समवयस्को के साथ बालक्रीडा करते समय मरणक की उसके साथियो से खेल ही खेल मे कुछ नोक-झोक हो गई। मरणक के भावुक मनोभावो पर मर्माघात करते हुए एक बालक ने कहा – "क्यो धौस जमाते हो ? बाप का तो ठिकाना ही नही है और चले हैं हम पर रौब गाठने।"

स्वाभिमानी मरणक के मन को गहरी चोट पहुँची। खेलना बन्द कर वह तत्काल अपने घर चला गया। उसने अपनी माता से पूछा – "सच-सच बताओ माँ ! मेरे पिताजी कहाँ है ? वे अपने घर क्यो नही आते ?"

बालक की गम्भीर एव म्लान मुख-मुद्रा देखते ही माता समझ गई कि दाल मे कुछ काला है। उसने अपने अन्तर मे उद्वेलित व्यथा सागर को आँखो की राह छलकने से रोकने का प्रयास करते हुए करुणार्द्र स्वर मे कहा – "वत्स ! जिस समय तुम गर्भ मे ही थे, उस समय तुम्हारे पिता ने मोह-माया के बधन तोडकर श्रमण धर्म अगीकार कर लिया। तुम्हे गर्व होना चाहिये कि तुम्हारे पिता विश्ववन्धु श्रमण भगवान् महावीर के धर्मसघ के महान् यशस्वी आचार्य है। तुम्हारे पिता का नाम शय्यभव भट्ट है। वे आचार्य शय्यभव के नाम से सर्वत्र विख्यात है।

अपने पिता के सम्बन्ध मे अपनी माता के मुख से यह सब वृत्तान्त सुनकर अपने पिता – यशस्वी आचार्य शय्यभव स्वामी के दर्शन के लिये बालक मरणक का मन मचल उठा। अपनी माता की अनुज्ञा प्राप्त कर एक दिन मरणक अपने पिता से मिलने के लिये अपने घर से निकल पडा। अनेक ग्राम-नगरो मे अपने पिता को खोजता हुआ मरणक एक दिन चम्पा नगरी के समीप पहुँचा। सहसा

उदित हुई। त्वरित गति से मुनि के पास पहुँचकर मणक ने विनयावनत हो उन्हे वन्दन किया। एक दूसरे को देखकर सहज ही दोनो के मनमानस तरगित हो उठे। वे मुनि कोई अन्य नही अपितु श्रमण भगवान् महावीर के स्वनामधन्य चतुर्थ पट्टधर स्वय आचार्य शय्यभव ही थे। आचार्य श्री ने एकाकी ही पथश्रमक्लान्त सौम्य बालक को करुणार्द्र दृष्टि से निहारते हुए स्नेहासिक्त स्वर मे पूछा – "वत्स ! तुम कहाँ के निवासी एव किसके पुत्र हो ? एकाकी ही तुम कहाँ से आये और कहाँ, किसके यहाँ जा रहे हो ?"

उत्तर मे मणक मधुर स्वर मे बोला – "भगवन् ! मै राजगृह-निवासी वत्सगोत्रीय द्विज श्रेष्ठ शय्यभव भट्ट का पुत्र हूँ। मेरा नाम मणक है। जिस समय मै अपनी ममतामूर्ति माँ के गर्भ मे था, उसी समय मेरे पिता घर द्वार सब कुछ छोड मेरी माता के प्रणय-पाश को तोड कर निर्ग्रन्थ श्रमण बन गये। मै अनेक ग्रामो एव नगरो मे अपने पिता को ढूढता हुआ राजगृह से यहाँ आया हूँ। मेरा अहोभाग्य है कि आपके दर्शन हुए। देव ! यदि आप मेरे पिता से परिचित हो तो कृपा कर मुझे बताइये कि मुझे उनके दर्शन कहाँ होगे। मेरी यह आन्तरिक अभिलाषा है कि यदि मुझे एक बार उनके दर्शन हो जायें तो मैं भी उनके पास प्रव्रजित हो सदा-सर्वदा उन्ही की चरण-शरण मे रहूँ।"

सागरवर-गम्भीर शय्यभव आचार्य ने अमित धैर्य के साथ स्नेहपूर्ण निगूढ भाषा मे कहा – "वत्स ! मैं तुम्हारे पिता को जानता हूँ। वे मेरे अभिन्न मित्र है। न केवल मन से ही अपितु तन से भी वे मुझ से अभिन्न है। उपाश्रय मे तुम उनका परिचय प्राप्त कर लोगे।" मणक उनके साथ हो लिया और वे दोनो उपाश्रय की ओर बढ गये।

मणक के साथ जब वे महामुनि उपाश्रय मे पहुँचे तो वहाँ उपस्थित सभी मुनियो ने विनयावनत हो "आचार्य भगवन्" के सम्मानास्पद सम्बोधन से सम्बोधित करते हुए प्रगाढ श्रद्धा-भक्ति पूर्वक उन्हे वन्दन-नमन-अभ्यर्थन आदि के पश्चात् उच्च आसन पर आसीन किया। यह सब देख कर कुशाग्र बुद्धि मणक को यह समझने मे देर नही लगी कि वस्तुत वे ही महामुनि उसके पिता आचार्य शय्यभव हैं।

के आगमन की पूर्व सूचना प्राप्त हुई थी। अतः परिजनो एव पौरजनो ने उसका नाम 'मणक' रखा। समय पर वालक मणक को अध्ययनार्थ पाठशाला भेजा गया। शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की कलाओ के समान क्रमश अभिवृद्ध होते हुए मणक ने अपनी आयु के सात वर्ष पूर्ण कर आठवे वर्ष मे प्रवेश किया। अध्ययन के साथ-साथ उसकी क्रीडा का क्रम भी चलता रहा। एक दिन समवयस्को के साथ बालक्रीडा करते समय मणक की उसके साथियो से खेल ही खेल मे कुछ नौक-झौक हो गई। मणक के भावुक मनोभावो पर मर्माघात करते हुए एक वालक ने कहा – "क्यो धौस जमाते हो ? वाप का तो ठिकाना ही नही है और चले हैं हम पर रौब गाठने।"

स्वाभिमानी मणक के मन को गहरी चोट पहुँची। खेलना बन्द कर वह तत्काल अपने घर चला गया। उसने अपनी माता से पूछा – "सच-सच बताओ माँ! मेरे पिताजी कहाँ है ? वे अपने घर क्यो नही आते ?"

वालक की गम्भीर एव म्लान मुख-मुद्रा देखते ही माता समझ गई कि दाल मे कुछ काला है। उसने अपने अन्तर मे उद्वेलित व्यथा सागर को आँखो की राह छलकने से रोकने का प्रयास करते हुए करुणार्द्र स्वर मे कहा – "वत्स! जिस समय तुम गर्भ मे ही थे, उस समय तुम्हारे पिता ने मोह-माया के वधन तोडकर श्रमण धर्म अगीकार कर लिया। तुम्हे गर्व होना चाहिये कि तुम्हारे पिता विश्ववन्धु श्रमण भगवान् महावीर के धर्मसघ के महान् यशस्वी आचार्य है। तुम्हारे पिता का नाम शय्यभव भट्ट है। वे आचार्य शय्यभव के नाम से सर्वत्र विख्यात है।

अपने पिता के सम्बन्ध मे अपनी माता के मुख से यह सब वृत्तान्त सुनकर अपने पिता – यशस्वी आचार्य शय्यभव स्वामी के दर्शन के लिये वालक मणक का मन मचल उठा। अपनी माता की अनुज्ञा प्राप्त कर एक दिन मणक अपने पिता से मिलने के लिये अपने घर से निकल पडा। अनेक ग्राम-नगरो मे अपने पिता को खोजता हुआ मणक एक दिन चम्पा नगरी के समीप पहुँचा। सहसा उसकी दृष्टि एक तेजस्वी मुनि पर पडी जो चम्पापुरी के वाहर शौचनिवृत्त्यर्थ आये हुए थे। मणक के मन मे आशा की किरण

उदित हुई । त्वरित गति से मुनि के पास पहुँचकर मरणक ने विनयावनत हो उन्हे वन्दन किया । एक दूसरे को देखकर सहज ही दोनो के मनमानस तरगित हो उठे । वे मुनि कोई अन्य नही अपितु श्रमरण भगवान् महावीर के स्वनामधन्य चतुर्थ पट्टधर स्वय आचार्य शय्यभव ही थे । आचार्य श्री ने एकाकी ही पथश्रमक्लान्त सौम्य बालक को करुणार्द्र दृष्टि से निहारते हुए स्नेहासिक्त स्वर मे पूछा – "वत्स ! तुम कहाँ के निवासी एव किसके पुत्र हो ? एकाकी ही तुम कहाँ से आये और कहाँ, किसके यहाँ जा रहे हो ?"

उत्तर मे मरणक मधुर स्वर मे बोला – "भगवन् ! मैं राजगृह-निवासी वत्सगोत्रीय द्विज श्रेष्ठ शय्यभव भट्ट का पुत्र हूँ । मेरा नाम मरणक है । जिस समय मै अपनी ममतामूर्ति माँ के गर्भ मे था, उसी समय मेरे पिता घर द्वार सब कुछ छोड मेरी माता के प्रणय-पाश को तोड कर निर्ग्रन्थ श्रमरण बन गये । मैं अनेक ग्रामो एव नगरो मे अपने पिता को ढूढता हुआ राजगृह से यहाँ आया हूँ । मेरा अहोभाग्य है कि आपके दर्शन हुए । देव ! यदि आप मेरे पिता से परिचित हो तो कृपा कर मुझे बताइये कि मुझे उनके दर्शन कहाँ होगे । मेरी यह आन्तरिक अभिलाषा है कि यदि मुझे एक बार उनके दर्शन हो जायें तो मैं भी उनके पास प्रव्रजित हो सदा-सर्वदा उन्ही की चरण-शरण मे रहूँ ।"

सागरवर-गम्भीर शय्यभव आचार्य ने अमित धैर्य के साथ स्नेहपूर्ण निगूढ भाषा मे कहा – "वत्स ! मैं तुम्हारे पिता को जानता हूँ । वे मेरे अभिन्न मित्र है । न केवल मन से ही अपितु तन से भी वे मुझ से अभिन्न है । उपाश्रय मे तुम उनका परिचय प्राप्त कर लोगे ।" मरणक उनके साथ हो लिया और वे दोनो उपाश्रय की ओर बढ गये ।

मरणक के साथ जब वे महामुनि उपाश्रय मे पहुँचे तो वहाँ उपस्थित सभी मुनियो ने विनयावनत हो "आचार्य भगवन्" के सम्मानास्पद सम्बोधन से सम्बोधित करते हुए प्रगाढ श्रद्धा-भक्ति पूर्वक उन्हे वन्दन-नमन-अभ्यर्थन आदि के पश्चात् उच्च आसन पर आसीन किया । यह सब देख कर कुशाग्र बुद्धि मरणक को यह समझने मे देर नही लगी कि वस्तुत वे ही महामुनि उसके पिता आच शय्यभव हैं ।

वह बडी अधीरता के साथ एकान्त की प्रतीक्षा करने लगा। अपने आचार्यदेव की विनय वैयावृत्य के पश्चात् जब अन्य सब मुनि पठन-पाठन-स्वाध्यायादि मे निरत हो गये तो बालक मणक भाव विभोर हो आचार्य शय्यभव के चरणो मे गिर पडा और फूट-फूट कर रोने लगा। उसने अपने नन्हे से हाथो से आर्य शय्यभव के दोनो चरणो को कस कर पकड लिया और उन पर अपने भाल को रगडते हुए गद्गद् स्वर मे बोला–"मेरे आराध्य पितृदेव ! आपने इतने दिनो तक अपने इस अभागे पुत्र को इन चरणो की शरण से दूर रख दिया पर अब मैं जीवन भर इन चरणो की शरण छोड एक क्षण के लिये भी अन्यत्र जाने वाला नही हूँ। कृपा कर आप मुझे इसी समय मुनिधर्म मे दीक्षित कर सदा के लिये अपनी शरण मे ले लीजिये।"

आचार्य शय्यभव ने देखा कि बालक मणक को स्नेह गर्भित अत्युत्कट वैराग्य हो गया है, जो किसी भी दशा मे कम होने वाला नही है। वैराग्य अनेक प्रकार का होता है। एक ज्ञानजन्य वैराग्य होता है, दु ख के कारण भी वैराग्य होता है। प्रेमातिरेक से स्नेह-गर्भित वैराग्य भी होता है। स्नेहगर्भित वैराग्य के उदाहरण अतीत के भी मिलते है, वर्तमान मे भी मिलते हैं और भविष्य मे भी मिलते रहेगे। चढ कर कभी न उतरने वाले वैराग्य को देख कर आचार्य शय्यभव ने बालक मणक को मुनिधर्म मे दीक्षित कर लिया।

काल थोडा हो अथवा अधिक, काल को कभी किञ्चित्मात्र भी घटाया अथवा बढाया नही जा सकता। लेकिन उस काल का लाभ अवश्य उठाया जा सकता है, यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शिक्षा आदर्श बालक-मुनि मणक के इस प्रकरण से ली जा सकती है।

बालक मणक जब मुनि बन गया तो उसके जीवन को कल्याण-कारी बनाने की चिन्ता आचार्य शय्यभव को हो गई। चिन्ता उसके तन की नही अपितु उसके चैतन्य देव के कल्याण की हुई।

आप अपने बच्चे की कैसी चिन्ता करेगे? यदि आपका बच्चा १६-१७ वर्ष का हो गया है तो आप उसकी शादी करने की उसे धधे पर लगाने की चिन्ता करेगे। अपने बच्चे के लिये इस प्रकार की चिन्ता करने वाले तो आप मे से सैकड़ो ही हैं

पर आप मे सभवत ऐसा एक परिवार भी मिलना कठिन है, जो यह चिन्ता करे कि वच्चा १८ वर्ष का हो गया है किन्तु अभी धर्म के प्रति उसकी अभिरुचि जागृत नही हुई है, आत्मकल्याण की अभी तक उसे कोई चिन्ता नही हुई है। अपने वच्चे के लिये इस प्रकार की चिन्ता तो आप मे से शायद कोई विरला ही माई का लाल करता होगा। दुकान पर लडका एक दिन आवे और दूसरे दिन नही आवे तो आपको फिक्र होगी, कि नही ? काम पर चार दिन वैठा और फिर दस दिन नही वैठा तो उससे आप अप्रसन्न होगे कि नही ? अवश्य होगे। सत्सग से जीवन वनता है, लेकिन धार्मिक सत्सग मे चार दिन आया, ज्ञान सीखा और दस दिन न आया तो आप उसे कुछ कहेगे क्या ? कुछ लोग गर्दन हिला रहे है। आप कह सकते है कि उन्हे अपने वच्चे के प्रति मोह नही है। आपकी यह वात उस दशा मे तो मान ली जाती जवकि आप अपने वच्चे के खाने पीने की, कपडो की फिक्र नही करते, कव सोया कव नही सोया, इस वात की आपको फिक्र नही होती। यदि आपकी नजर इन वातो की ओर नही जाती तव तो कहा जा सकता था कि आप निर्मोही है। किन्तु इन वातो की ओर तो सदा आपका ध्यान लगा रहता है, इससे यह सिद्ध होता है कि आप निर्मोही तो नही हैं। विना पूछे काम हो रहा है उसके लिये तो आप पूछते है, लेकिन जिस चीज के वारे मे पूछना जरूरी है, उसके वावत आप नही पूछते।

भावी पीढी की आध्यात्मिक प्रगति के वारे मे जिस घर के मा-वाप को भी परवाह नही होगी, उस घर के सदस्यो का, उस घर का और उस समाज का सुधार कैसे होगा ? अपने वच्चो की धार्मिक प्रवृत्ति, आध्यात्मिक प्रगति की फिक्र किये विना भावी पीढी का, समाज का भविष्य सुन्दर हो, उज्ज्वल हो, इसे असभव नही तो कठिन तो मै अवश्य कहूँगा। यदि आप समाज का, अपनी भावी पीढी का भविष्य उज्ज्वल वनाना चाहते है तो आपको अपने वच्चो मे धार्मिक सस्कार डालने की, उनकी आध्यात्मिक उन्नति की चिन्ता करनी होगी।

आचार्य शय्यभव ने सोचा कि मणक स्वय अपनी जिन्दगी का सुधार कैसे करे, आत्म कल्याण कैसे करे। सर्वप्रथम उन्होने यह

सोचा कि साधना करने के लिये समय की परम आवश्यकता है, तो देखे मणक की आयु कितनी है। जिनको पूर्व का ज्ञान होना है, वे चाहे तो अपने ज्ञान-बल द्वारा किसी भी व्यक्ति की आयु के सम्बन्ध मे पूर्ण विवरण जान सकते है। आचार्य शय्यभव ने अपने ज्ञान बल द्वारा देखा कि नवदीक्षित मुनि मणक की आयु केवल ६ महीना ही शेष रह गई है। नया चेला बनाया है। सासारिक पक्ष का पुत्र है उसके उपरान्त शिष्य भी बन गया है। इस प्रकार दोहरा सम्बन्ध हो गया। कभी-कभी किसी से आपका दोस्ती का नाता हो और फिर वह आपका सगा-सम्बन्धी भी निकल आए तो उसके साथ आपकी घनिष्ठता और भी गहरी हो जायेगी।

आचार्य शय्यभव ने देखा कि मणक की आयु अब केवल ६ महीना ही अवशिष्ट रही है। इतने थोडे से समय मे वह क्या तो सीखे, क्या तप करे, कैसे कर्म काटे और कैसे उसका आत्म कल्याण हो, थोडे समय मे ज्यादा काम कैसे हो सकता है, इस अति स्वल्प काल मे बालक मुनि ज्ञान और क्रिया दोनो ही की समीचीनतया आराधना द्वारा किस प्रकार अपना कल्याण करने मे समर्थ हो सकता है, इस विषय मे चिंतन करते-करते आचार्य शय्यभव को ध्यान आया कि चतुर्दशपूर्वो का पारगामी अथवा १० पूर्वधर मुनि विशेष कारण उपस्थित होने पर स्व-पर कल्याण के उद्देश्य से पूर्वश्रुत मे से ज्ञान का उद्धार कर सकता है। बालक मुनि मणक के कल्याण का अति महत्त्वपूर्ण कारण अपने समक्ष उपस्थित देख उन्होने पूर्वों मे से सार ग्रहण कर दश अध्ययनो वाले सूत्र की रचना की और सायकाल के विकाल मे सम्पन्न किये जाने के कारण उस सूत्र का नाम दशवैकालिक रखा।

आचार्य शय्यभव ने अनुभव किया कि यदि साधक आत्मा को वश मे कर सावधानी से साधना पथ पर अहर्निश अग्रसर हो तो थोडे समय मे भी अत्यधिक लाभ प्राप्त कर सकता है।

आप जानते है चौथे आरे के प्रारम्भ मे उम्र कितनी हुआ करती थी। करोड पूर्व की आयु चौथे आरे मे होती थी और घटते-घटते आखिर मे भगवान् महावीर के समय मे आयु १०० वर्ष ही रह गई। उससे भी कम होते-होते भगवान् महावीर की आयु ७२ वर्ष

की ही रह गई। करोड पूर्व की आयु वाले लोग अपने सुदीर्घ जीवन काल मे जितनी कल्याण साधना करते उतनी १०० वर्ष की आयु वाला कैसे कर सकता है ? करोड पूर्व की आयु वाला व्यक्ति यदि एक करोड वर्ष जैसे लम्बे समय तक भी साधना करके कर्म काटे तो कितने कर्म काट लेगा ? और उसके मुकाबले मे १०० वर्ष की आयु वाला कितने कर्म काटेगा ? वस्तुत उसे थोडे समय मे ज्यादा कार्य करना होगा। इस प्रकार की स्थिति मे साधक को अत्यधिक सावधान रहना होगा। आज वह समय आ गया है।

एक करोड वर्ष की आयु वाला एक साधक १ लाख वर्ष तक सयम पालन एव तपस्या द्वारा अपने कर्म काटकर केवल ज्ञान प्राप्त करे और दूसरा साधक ६०-७० वर्ष मे साधना करके मोक्ष प्राप्त करे इन दोनो की साधना मे क्या अतर है ? यह तो निश्चित है कि लम्बी आयुष्य वाला साधक लम्बे समय तक साधना कर सकता है लेकिन यदि साधक पूर्णत सावधान हो और अपने जीवन के एक-एक क्षण का साधना मे सदुपयोग करे तो वह साधक थोडे समय मे भी आत्म कल्याण कर सकता है, अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है। यदि साधक सावधान नही है तो बडा लम्बा समय मिलने पर भी वह कोरा का कोरा ही रह जायगा। वस्तुत साधना पथ मे साधक के लिए सावधानी का बहुत बडा महत्त्व है।

आचार्य शय्यभव ने मणक मुनि के कल्याण की कामना से पूर्वो मे से सार ग्रहण कर ७०० श्लोक परिमाण के छोटे से सूत्र 'दशवै-कालिक' का गुम्फन किया। इस छोटे से सूत्र मे आचार्य शय्यभव ने प्रभु महावीर द्वारा प्ररूपित, साधको के लिये परमोपयोगी ज्ञान का सकलन कर गागर मे सागर भर देने की कहावत चरितार्थ कर दी। साधु को सयम का पालन कैसे करना, क्या करना, कैसे भिक्षा लाना, कैसे बोलना, आचार-विचार कैसे रखना, इन सब बातो का साराश छोटे से सूत्र मे भर दिया।

स्वय आचार्य शय्यभव ने मुनि मणक को दशवैकालिक सूत्र का अध्ययन एव ध्यानादि का अभ्यास करवाया। मणक ने पूर्ण सावधानी और बडी लगन से इसकी साधना की और वह स्वल्प समय मे ही दशवैकालिक सूत्र का पारगामी तथा ज्ञान एव क्रिया का सम्यग्-

आराधक बन गया। अत्यल्प समय मे उसने साधक के लिये सीखने योग्य एक प्रकार से सब कुछ सीख लिया। यदि ११ अग सीखे तो छ महीने का समय उसके लिए किसी तरह पर्याप्त नही था। फिर बिना ज्ञान के क्रिया कैसे हो ? इसके लिये दशवैकालिक सूत्र को गम कर मुनि मणक ६ महीने मे ही ज्ञान एव क्रिया दोनो का हृदय-सम्यक् आराधक बन गया उसने अपने जीवन को उज्ज्वल बनाया, जीवन का विकास किया और ६ महीनो की सयम साधना के पश्चात् सम्यक् आलोचना एव समाधिपूर्वक काल कर दिव्य गति प्राप्त कर ली। उसका जन्म-मरण का चक्र घट गया, उसकी आत्मा कल्याण मार्ग पर लग गई।

आचार्य शय्यभव को, मणक की इहलीला समाप्त होने के पश्चात् विचार मग्न देखकर उनके पट्टशिष्य यशोभद्र सोचने लगे – "हमारे गुरुदेव आज इतने गभीर क्यो है, इनकी मुख-मुद्रा म्लान क्यो हो रही है।" उन्होने अपने गुरु से इसका कारण पूछा। आचार्य शय्यभव ने कहा – "यह बालक मुनि मणक, जिसने अपनी जीवन लीला समाप्त कर दी है, ससार पक्ष मे मेरा पुत्र था। यदि इसकी आयु थोडी अधिक होती तो यह अधिक साधना कर पाता और इस प्रकार इसकी आत्मा का यथेष्ठ कल्याण होता। इसने थोडे समय की सयम साधना के पश्चात् ही जीवन लीला समाप्त की, इस बात का मुझे खेद है। यद्यपि साधना के लिये इसकी साधना का यह ६ महीने का समय अति स्वल्प था तथापि पूर्ण सावधानी के साथ अनवरत रूपेण साधना मे लगे रह कर इसने अपनी आत्मा का पर्याप्त कल्याण कर लिया है। इसे थोडा अधिक समय मिलता तो यह अपनी आत्मा का और भी अधिक कल्याण कर सकता था, क्योकि यह सयम साधना मे पूर्ण सावधान था।"

वर्षाकाल मे ४ मास के समय तक जैन साधुओ का विहार नही होता। चार मास तक वे एक स्थान पर रहते है, और यदि आषाढ के शुरू मे आ जावे तो ५ माह तक रहते है। एक मास पहले आ गये तो गृहस्थ साधक को, श्रावक-श्राविकाओ को अधिक से अधिक ६ माह का समय जैन मुनि के सत्सग का मिल सकता है। किन्तु यह ६ महीने का काल तो बहुत अल्प है, इस फिक्र मे साधक यदि

सत्सग का प्रसाद लेने से वचित रह जाय तो उसका कल्याण कैसे हो सकता है ? थोडे दिनो मे भी करने वाला हो तो बहुत कुछ कर सकता है ।

आपके हमारे सामने यह स्थिति है। यद्यपि काल द्रव्य का स्वभाव है – वर्तना, चलते रहना, तथापि काल का उपयोग करने वाले व्यक्ति यदि सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक् चारित्र से सम्पन्न हो और अपने जीवन मे साधना की प्रशस्त ज्योति जगाकर आगे बढने का यत्न करे तो अल्प समय मे भी वे अपनी आत्मा का उद्धार कर सकते है ।

काल चाहे स्वल्प भी क्यो न हो, यदि साधक पूर्णत॰ सजग हो कर पूरी सावधानी के साथ उस स्वल्प काल के एक एक क्षण का एक एक पल का समीचीनतया साधना मे सदुपयोग करे तो वह साधक स्वल्पतर काल मे भी, सुदीर्घ काल तक साधना करने वाले साधारण साधक की अपेक्षा अपनी आत्मा का कई गुना अधिक उद्धार कर सकता है – यह महत्वपूर्ण तथ्य आपको हृदयगम कराने के लिये मैने आपके समक्ष आचार्य शय्यभव और महामुनि मणक का उदाहरण हमारे प्राचीन इतिहास की कडी के रूप मे रखा। इस उदाहरण से शिक्षा लेकर यदि आप समय के छोटे से छोटे भाग का सदुपयोग करेगे तो सुनिश्चित रूप से साधना पथ पर अग्रसर होगे ।

पिछले कतिपय दिनो से आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ती के समय के इतिहास पर प्रकाश डाला जा रहा था। आज समय हो चुका है अत इस सम्बन्ध मे और किसी दिन कहा जायगा। प्रतिक्षण सजग रहकर सावधानीपूर्वक काल के सदुपयोग के सम्बन्ध मे मैने जो बात आज कही है, उसे विलम्ब से आने वाले सज्जनो ने पूरे तौर पर नही सुना होगा। वे कही इसके लाभ से वचित न रह जाय, इसलिये सक्षेप मे काल के महत्व की बात उनके ध्यान मे ले आना चाहता हूँ। काल के महत्त्व को बताते हुए एक कवि ने कहा है –

जो काल करे सो आज ही कर, जो आज करे वह अब करले ।
जब चिडिया खेती चुग डारी, फिर पछताए क्या होवत है ॥

उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहाँ जो सोवत है।
जो जागत है वह पावत है, जो सोवत है वह खोवत है ।।
उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहाँ जो सोवत है –

तो काल प्रतिपल प्रवाही है। नदी की धारा का पानी यदि एक क्षण के लिये भी कही एक जगह ठहरे तो काल भी एक जगह ठहरे। नदी की धारा का पानी कभी कही एक जगह नही ठहरता। एक बार आपने बहती नदी मे हाथ धोया और उसके कुछ ही क्षण पश्चात दूसरी बार उस नदी मे हाथ धोया तो क्या दोनो बार वही पानी था ? नही। पहली बार हाथ धोया वह पानी वह कर चला गया। दूसरी बार जिस पानी मे हाथ धोया वह पहली बार वाला पानी नही था। वह पानी तो वहकर धारा मे आगे चला गया। दोनो बार जिस क्षण आपने हाथ डाला था उसी क्षण वह पानी तो वह कर आगे चला गया।

ठीक यही हाल काल का है। जो काल कल था वही आज है क्या ? जो काल एक पल पहले था, वही दूसरे पल मे है क्या ? नही। जो स्थिति कल थी वही आज है क्या ? नही। वह स्थिति आज नही है। प्रतिपल, प्रतिक्षण, प्रतिदिन काल आगे सरकता जा रहा है और आप पीछे सरकते जा रहे है। ध्यान देने की बात है, आप ध्यान देना जरा। आप पीछे सरकते जा रहे हैं। कल आपकी जिन्दगी के जितने दिन थे, उनमे से आज आपकी जिन्दगी का एक दिन कट गया। इसने आपकी जिन्दगी को पीछे की ओर सरकाया या आगे ? पीछे की ओर।

'इसीलिये सतो ने कहा कि काल मे दौडता हुआ जीवन क्या करे ? कल करे सो आज कर और आज करे सो अब। जब चिडियाँ खेती को चुग डालेगी, तब फिर पछताने से क्या होगा ? अभी तो कुछ समय है। खेत मे फसल के कुछ दाने बच गये है। उनको काट काट कर गाडियाँ भरलो, वरना जब चिडियाँ रहे सहे दानो को भी चुग लेगी, तो फिर कुछ भी हाथ नही आयेगा। कुछ दिन का समय है, यह सोच-समझ कर भी ओढ कर सो गये, दाने पकते गये और चिडियाँ चुगती रही। तब तो अन्त मे पछतावा ही रहेगा। चिडियाओ द्वारा पूरा का पूरा खेत चुग लिये जाने के पश्चात् फिर पश्चात्ताप

करने से कोई लाभ होने वाला नही है। करने के समय मे कुछ भी नही किया। समय आकर अपनी गति से चला गया।

महाराज ने कहा था कुछ करलो। नश्वर लीला है, समाप्त हो जाएगी, इसलिए कुछ करलो। लेकिन मौका चूक गये। साधना नही कर सके। यदि समय का सदुपयोग करके कुछ धर्म साधना की होती तो चिन्ता करने का मौका नही आता। यदि प्राणी अपने समय का सदुपयोग करके जीवन को साधना मार्ग पर लगाएगा तो उसका इहलोक भी कल्याणकारी होगा और परलोक भी आनन्द दायक, शान्तिपूर्ण एव कल्याणप्रद हो सकता है।

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति

रक्षणीय की रक्षा - रक्षाबन्धन

प्रार्थना

अविनाशी अविकार, परम रसधाम हे !
समाधान सर्वज्ञ, सहज अभिराम हे !
शुद्ध-बुद्ध अविरुद्ध, अनादि अनन्त हे !
जगत शिरोमणि सिद्ध, सदा जयवन्त हे !

बन्धुओ !

यह सिद्ध भगवान् की स्तुति है। भक्त कवि ने आध्यात्मिक आनन्द के अथाह सागर मे निमग्न एव आनन्द विभोर हो जगत शिरोमणि सिद्ध भगवान् के अविनाशी, अविकार, अनन्त सुख निधान, सर्वज्ञ, सहज अभिराम, शुद्ध-बुद्ध अनिर्वचनीय स्वरूप का ध्यान करते हुए उनकी स्तुति की है। निरजन निराकार सिद्ध भगवान् के अक्षय अव्याबाध-अनन्त सुख का वर्णन वाणी द्वारा नही किया जा सकता क्योकि वह अनिर्वचनीय है।

आत्मा मे सिद्ध पद-प्राप्त करने की शक्ति

प्रत्येक भव्य आत्मा मे सिद्ध पद प्राप्त करने की शक्ति विद्यमान है। यदि मुमुक्षु साधक साधना पथ पर अग्रसर हो निरन्तर प्रगति करता रहे तो उत्कट साधना द्वारा वह अपने समस्त कर्म समूह का समूल नाश कर अन्ततोगत्वा अनन्त शाश्वत सुखधाम सिद्धि पद को प्राप्त कर सकता है। मुक्ति, मोक्ष, निर्वाण, शिव और परम पद ये सब सिद्धि के ही पर्यायवाची शब्द है। यदि सक्षेप मे कहा जाय तो सब प्रकार के दु खो की समाप्ति और अनन्त अव्याबाध शाश्वत सुख रूप स्व स्वरूप की अवाप्ति का नाम ही मोक्ष, मुक्ति अथवा सिद्धि है। प्रत्येक प्राणी को सुख सदा अभीष्ट और दु ख पूर्णत अनभीष्ट है,

अत प्रत्येक प्रवुद्ध आत्मा के अन्तर मे मोक्ष-प्राप्ति की अभिलाषा का जागृत होना स्वाभाविक है। मोक्ष-प्राप्ति की अभिलाषा के अकुरित होते ही प्रत्येक मुमुक्षु के मन मे यह जानने की उत्कण्ठा उत्पन्न होगी कि वस्तुत मोक्ष प्राप्त करने का सही मार्ग कौनसा है।

सिद्ध पद-प्राप्ति के साधन ज्ञान और क्रिया

पिछले दिनो के व्याख्यानो मे आपको यह समझाने का प्रयास किया गया था कि मोक्षमार्ग क्या है, मोक्ष-मार्ग पर आरूढ होने के लिये, मोक्ष-मार्ग पर अग्रसर होने के लिये मुमुक्षु साधक को किन-किन वातो का ज्ञान करना आवश्यक है तथा मोक्ष-मार्ग पर निरन्तर प्रगति करते रहने के क्या-क्या साधन है। "ज्ञान क्रियाभ्या मोक्ष" - इस आप्तवचन के अनुसार मुमुक्षु को सर्वप्रथम ज्ञान प्राप्त करना परमावश्यक है।

ज्ञान किसका, षड्द्रव्यो का

वह ज्ञान किन-किन का किया जाय, इस सन्दर्भ मे आपको सक्षेपत यह समझाया गया था कि मुमुक्षु साधक को प्रथमत. षड् द्रव्यो का समीचीनतया ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। उन षड् द्रव्यो मे से धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल इन चार द्रव्यो के सम्बन्ध मे विवेचन आपके समक्ष प्रस्तुत किया जा चुका है। आज जीव का लक्षण वताने के साथ-साथ असयम से बचने और सयम मे प्रविष्ट होने आदि ज्ञातव्य तथ्यो की ओर आपका ध्यान आकर्षित किया जायगा। जीव के लक्षण को समझने के लिये आपको शास्त्रोक्त दो गाथाओ पर गहराई से विचार करना होगा, जिन मे प्रथम गाथा इस प्रकार है-

> वत्तणा लक्खणो कालो, जीवो उवओगलक्खणो।
> नाणेण दसणेण य, सुहेण य, दुहेण य ॥

काल और जीव

सूत्रकार ने इस एक ही गाथा मे काल और जीवास्तिकाय - इन दोनो द्रव्यो का लक्षण सक्षेपत वताया है। जड और चेतन इन दोनो प्रकार के द्रव्यो के पर्याय-परिवर्तन, पर्याय-परिणमन मे काल

सहकारी कारण बनता है । काल केवल ससारी जीवो के पर्याय परिणमन मे ही सहकारी कारण बनता हो, ऐसी बात नही है, वस्तुत काल प्रत्येक सूक्ष्म अथवा स्थूल जडपदार्थ के पर्याय परिणमन मे भी सहकारी कारण बनता है । अन्तर केवल इतना ही है कि पुद्गल अर्थात् जड-द्रव्य काल के वर्तन-परिवर्तन अथवा प्रतिक्षण गतिशील स्वभाव को जानने एव जान कर उसका उपयोग करने की सामर्थ्य नही रखता, जबकि जीव मे इस प्रकार की सामर्थ्य इस प्रकार की शक्ति विद्यमान रहती है । जीव काल के स्वभाव को भी जानने की क्षमता रखता है और अपने स्वभाव को भी । जीव मे इस प्रकार सोचने की शक्ति है – "कही ऐसा न हो कि काल व्यर्थ ही चला जाय, मैं कही पीछे न रह जाऊ, मेरी साधना केवल मसूबा मात्र ही न रह जाय, इहलीला समाप्त कर मेरा जीव कही खाली हाथो ही नही चला जाय, मै जब जन्मा था तब दोनो मुट्ठिया बन्द किये आया था, पर कही ऐसा न हो कि जीवन की समाप्ति पर यहाँ से बिना सुकृत-धन उपार्जित किये, हाथ पसारे खाली हाथ ही लौट जाऊ । अत मुझे काल के एक-एक क्षण का सदुपयोग कर स्व-पर कल्याण मे निरत रहना चाहिये ।" इस प्रकार की, काल के उपयोग की भावना किसमे रहती है ? जड मे या जीव मे ? जीव मे इस प्रकार की भावना रहती है । जड मे नही रहती क्योकि उसमे चेतना का मूलत अभाव है ।

काल के उपयोग को समझने की योग्यता तो प्रत्येक जीव मे है किन्तु प्रत्येक जीव काल का सदुपयोग करना नही जानता । वस्तुत सभी जीव काल का सदुपयोग कर भी नही सकते क्योकि ससार के त्रस-स्थावर जीवो मे से अनन्तानन्त जीव घोरातिघोर अति जटिल कर्मपाश मे जकडे हुए तथा निविडतम अज्ञानान्धकार मे ऐसे डूबे हुए हैं कि काल के उपयोग से सम्बन्ध रखने वाली चेतना की एक किरण तक भी उनके अन्तर मे उद्भूत नही हो पाती, प्रस्फुटित नही हो पाती ।

प्रगाढ कर्मावरणो से आवृत्त चेतन की दशा

अपनी मध्याह्नवेला मे प्रखर किरणो से प्रकाशमान प्रचण्ड सूर्य यदि मेघ की सघन काली घटाओ से आच्छादित हो जाय तो क्या वह आपको – हमे दिखाई देगा, क्या उसकी सहस्र रश्मियो मे

से एक भी रश्मि किसी को दृष्टिगोचर होगी ? नही ! मध्याह्न का सूर्य तो मध्य आकाश मे विद्यमान है तो फिर वह आपको हमको दिखाई क्यो नही देता ? इसीलिये न कि उसे अति सघन काली घन घटाओ ने ढक लिया है, आच्छादित कर दिया है। ठीक इसी प्रकार सच्चिदानन्द ज्ञान स्वरूप आत्मदेव को अति चिकने और अति काले कर्मो के आवरणो ने, अज्ञान मोह एव माया के प्रगाढ पर्दो ने ढक लिया है। इन अति गाढे आवरणो के कारण ही चैतन्य देव की काल के उपयोग की चेतना प्रस्फुटित नही होती उजागर नही होती। अनन्त शक्तिशाली आत्मदेव मे इस प्रकार की चेतना विद्यमान तो है पर वह सुषुप्त अवस्था मे सोई पडी है, जागृत नही हुई है।

कर्मावरण हल्के होने पर चेतन की दशा

कर्मो के क्षयोपशम के फलस्वरूप जिन-जिन आत्माओ के इस प्रकार के आवरण हल्के होते-होते जब मन्द हो जाते है तब उन सुषुप्त जीवो की चेतना आवरणो के विच्छिन्न होने के अनुरूप जागृत होती है। प्रकट होती है। काल का उपयोग करने की चेतना जब चेतन मे जागृत हो जाती है तो चेतन द्वारा काल को सुधारा भी जा सकता है और बिगाडा भी जा सकता है। आप सभवत विचार मे पड गये होगे कि काल तो द्रव्य रूप है। अत वह तो जैसा है वैसा ही रहेगा। तो फिर काल को सुधारना कैसा और बिगाडना कैसा ? पर वस्तुत 'काल को सुधारना, काल को बिगाडना'—इस प्रकार का प्रयोग हम व्यावहारिक भाषा मे करते हैं, क्योंकि हमारे जीवन के साथ काल का घनिष्ठ सम्बन्ध है। काल के सदुपयोग से हम जीवन को सुधार सकते है और दुरुपयोग से बिगाड सकते है। हमारी गर्भावस्था, जन्मावस्था, शैशवावस्था, किशोरावस्था, यौवनावस्था, वृद्धावस्था, और मरण तक जीवन का एक क्षण, यहाँ तक कि हमारे जीवन के समस्त कार्यकलाप, कालकी परिधि मे काल की सीमा मे आवद्ध हैं, परिसीमित हैं। इन सब तथ्यो को

ने अपने जीवन को बिगाड दिया। इसके विपरीत दूसरा व्यक्ति यदि प्रमाद, आलस्य, निद्रा को भगाकर, विषय-वासना, कषाय, मोह, ममत्व आदि से मुह मोडकर अपने ज्ञान-दर्शन चारित्र आदि आत्मगुणो की अभिवृद्धि के साथ तप, स्वाध्याय और सयम मे तत्परता से काल का सदुपयोग करता है तो उसके लिये यह कहा जायगा कि इसने अपने जीवन को सुधार लिया।

क्षणभगुर अनिश्चित जीवन का सदुपयोग

जीवन का समय सीमित एव स्वल्पातिस्वल्प है और जो स्वल्पतम सीमित समय है, उसका भी भावी प्रत्येक क्षण अनिश्चित है। किसी को कोई पता नही कि कराल काल कब आकर उसे अपना कवल बना लेगा। ससार की चौरासी लाख जीव-योनियो मे केवल एक मानव-योनि ही ऐसी योनि है, जिसमे काल का अधिकाधिक सदुपयोग कर साधक साधना द्वारा यथेप्सित आत्मकल्याण कर सकता है। जो उद्बुद्ध साधक मानव-जीवन एव काल के इस महत्त्व को जानता है, वह अपने जीवन के एक-एक श्वासोच्छ्वास एव काल के एक-एक क्षण को अनमोल समझ कर आत्म कल्याण की साधना मे सलग्न रहता है। वह अपने चरम लक्ष्य के सन्निकट शीघ्र ही पहुँच सकता है। अपने लक्ष्य तक पहुँचने की उत्कण्ठा वाले व्यक्ति के लिये प्रतिक्षण इस बात की चिन्ता रखना आवश्यक है कि जीवन का एक-एक क्षण अनमोल है। बीतने वाला क्षण पुन कभी लौट कर आने वाला नही है और जीवन के इस सीमित एव स्वल्पतर समय मे भी यदि उसने साधनापथ पर अग्रसर होने मे ढिलाई से काम किया तो वह अन्य साधको से पीछे रह जायगा।

घुडदौड मे जीवट का धनी वही घोडा सबसे आगे निकलता है जो स्पर्धा वाला है, जो इस बात की स्पर्धा रखता है कि वह किसी से पीछे नही रहेगा, कोई दूसरा घोडा उससे आगे न निकल पाएगा। जो घोडा स्पर्धाशाली नही है, वह उतना तेज नही दौडेगा पर अपने साथी घोडे को आगे बढा देख वह भी सोचेगा कि अपने साथी से वह बहुत पीछे रह गया है। उसके मन मे उठा इस प्रकार का विचार उसकी मन्द गति मे तेजी लाने का कारण बन सकता है। जो घोड़ा

अकेला ही दौड रहा है, जिसके आगे-पीछे कोई अन्य घोडा नही है, उसके मन मे इस प्रकार का विचार उत्पन्न नही होता।

सफलता की कुंजी

जो मुमुक्षु साधक अपने जीवन को क्षणभगुर मान कर, जीवन के स्वल्प काल मे अपना अधिकाधिक आत्मकल्याण करने के लिये जीवट वाले स्पर्धाशाली घोडे की तरह प्रतिक्षण जागरूक रहते हुए साधनापथ पर अविराम गति से अग्रसर होता रहता है वह काल को अर्थात् जीवन को सुधार लेता है। इस प्रकार साधना पथ पर प्रगति करता हुआ वह साधक अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

इसी वात को ध्यान मे रखकर कहा गया था कि चेतन द्वारा काल को सुधारा भी जा सकता है और विगाडा भी। जीवन को सुधारने अथवा विगाडने मे काल वडी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। इस प्रकार जीवात्मा के साथ काल का वडा घनिष्ठ सम्बन्ध है। सूत्रकार ने काल और जीव दोनो को एक ही गाथा मे साथ रखा है। इससे भी जीव के लिये काल की उपयोगिता की वात विशेप रूप से सिद्ध होती है।

जीव के स्वरूप को समझाने वाली एक गाथा मैने अभी आपके समक्ष रखी। उसमे सर्वप्रथम काल के लक्षण का उल्लेख था। इसलिये प्रसगवशात् मैने जीव द्वारा काल को विगाडने एव सुधारने की वात कही।

जीव का लक्षण

जीव के लक्षण पर प्रकाश डालने वाली दूसरी गाथा इस प्रकार है –

> नाण च दसण चेव, चरित्त च तवो तहा।
> वीरिय उवओगो य, एय जीवस्स लक्खण ॥

अर्थात् ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य अथवा पराक्रम और उपयोग ये ६ चीजे जिसमे हो, वह जीव कहलाता है। प्रत्येक जीव मे ये छहो चीजे तारतम्य से विद्यमान रहती है। इन छहो चीजो से जीव की पहचान होती है। गाथा मे जीव का लक्षण वताते हुए ज्ञान और दर्शन का सर्व प्रथम उल्लेख किया गया है।

ज्ञान एव दर्शन द्वारा प्रत्येक जीव सुख तथा दु ख का वेदन करता है। यह जो सर्व प्रथम जीव का लक्षण वताया गया है, यह लक्षण जितना आसानी से प्रत्येक ससारी जीव पर घटित होता है उतने अन्य लक्षण आसानी से घटित नही होते। यदि बोलने, सुनने, सोचने आदि जीव के लक्षणो पर विचार किया जाय तो ये लक्षण सव जीवो मे दृष्टिगोचर नही होगे। ये लक्षण तो केवल पचेन्द्रिय जीवो मे ही परिलक्षित होगे, शेष एकेन्द्रिय आदि जीवो मे नही। लेकिन एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक एक भी ऐसा जीव नही, जो सुख-दु ख का वेदन न करता हो। ससार के चराचर समस्त प्राणी सुख-दु ख का वेदन करते है क्योकि सुख-दु ख के वेदन का उपयोग विश्व के सम्पूर्ण जीव समूह मे, समस्त षड्जीव निकाय मे विद्यमान है।

सुख-दु ख का वेदन करना एक बात है और वेदन करने के साथ-साथ उसे पहचानना, उससे अपने आप को सावधान करना – यह दूसरी बात है। सुख-दु ख का वेदन तो सभी प्राणी करते है पर सुख-दु ख को पहचानने की एव दु ख से सावधान होने की, बचने की, क्षमता ज्ञानावरण कर्म के अपरिमित प्रगाढ पर्दो द्वारा ढके हुए कुण्ठित ज्ञान वाले जीवो मे नही होती। सुख की स्थिति को बनाये रखने तथा उत्पन्न करने की और दु ख की स्थिति से बचने अथवा सावधान होने की क्षमता एकेन्द्रिय आदि जीवो मे नही है। इसका यह अर्थ नही कि उनमे ज्ञान नही है। राख के विपुल-विशाल ढेर के नीचे दबे हुए ऊपले के मध्य भाग मे छिपी चिनगारी के समान निगोद के जीवो मे भी ज्ञान सदा विद्यमान रहता है। जिस प्रकार राख के ढेर के हट जाने पर कडे के अन्तरग भाग मे छिपी आग की चिनगारी वायु का सयोग पाकर सजग हो जाती है। इसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से आत्मा का दवा हुआ ज्ञान प्रकट होकर प्रकाश मे आता है।

ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम के अनुपात से जिन-जिन प्राणियो का जितने-जितने अश मे ज्ञान विकसित होता है, वे आत्माए सुख-दु ख के वेदन के साथ सजग हो जाती हैं, अपने आपको सावधान करने लगती है एव दु ख से वचने का प्रयास करती हैं। इस प्रकार के प्रयास मे निरन्तर सलग्न आत्माए अन्ततोगत्वा सव दु खो का

अन्त कर शुद्ध-बुद्ध-सिद्ध हो जाती है। यह सब ज्ञान की गरिमा है, सम्यग्ज्ञान की विशेषता है। ज्ञान की गहराइयो पर एव ज्ञान के अतिरिक्त जो जीव के शेष ५ लक्षण है, उन पर फिर जब प्रसग उपस्थित होगा, विचार किया जायगा।

मार्ग-दर्शक महापुरुष

अभी यहाँ थोडा सा इस बात पर विचार किया जायगा कि जीव मे जो ज्ञान का गुण है, सुख-दु ख का वेदन करने, अनुभव करने, समझने और सावधान होने का जो गुण है, उस-गुण का सही रूप मे किस प्रकार उपयोग किया जाय। इस गुण का, अर्थात् सामर्थ्य का सही रूप से उपयोग करने के लिये हमे महापुरुषो के जीवन से, उनके उपदेशो से मार्गदर्शन लेना होगा, उनके आचरण से मार्गदर्शन एव प्रेरणा लेनी होगी। इस दिशा मे महापुरुषो के विचार अथवा उपदेश हमारे लिये मार्गदर्शक और उनके आचार मार्गदर्शक के साथ-साथ प्रेरणादायक भी होते है।

रक्षणीय की रक्षा, परम कर्त्तव्य

महापुरुषो के जीवन का, आचरण का, एव उपदेशो का यह लक्ष्य रहा है—"रक्षणीय की रक्षा की जाय।" प्रत्येक महापुरुष के जीवनवृत्त, उपदेश, विचारो एव आचारण पर गहन चिन्तन से यही तथ्य प्रकट होता है कि उन्होने अपने प्रत्येक आचरण, उपदेश और विचार द्वारा ससार के प्राणिमात्र को रक्षणीय के रक्षण की प्रेरणा प्रदान की है।

प्रश्न उठ सकता है कि रक्षणीय क्या है ? जड पुद्गल रक्षणीय है अथवा चेतन-आत्मा ? जड पुद्गल का स्वभाव क्या है, इस सम्बन्ध मे विचार करने पर प्रश्न का उत्तर स्वत ही मिल जाता है। जड-पुद्गल का सहज स्वभाव है सडना, गलना और विध्वस्त होना। जो-जो दृश्यमान पदार्थ है, वे सब नाशवान् है। केवल आत्मा ही अविनाशी है, शाश्वत है। तो रक्षणीय कौन हुआ ? विनाशशील जड पदार्थ या अविनाशी आत्मा ? आत्मा रक्षणीय है, अत रक्षणीय आत्मा की रक्षा करनी चाहिए।

आश्चर्य ! ज्ञान पाकर भी पतगे का अनुकरण

ज्ञानावरणीय कर्म के घने पर्दो के कारण जिन प्राणियो का ज्ञान विकसित नही हुआ है, कुण्ठित है, वे रक्षणीय की रक्षा न कर सके तो कारण समझ मे आ सकता है कि अज्ञानवश वे ऐसा नही कर सकते। पर ज्ञान का धनी होते हुए भी मानव, रक्षणीय की रक्षा न करे, तो इससे बढकर आश्चर्य और खेद का विषय और क्या हो सकता है। पतगे दीपक की लौ के चारो ओर मडराते है, लौ पर गिरते है, और जल-भुन कर मर जाते है। इसका कारण है, अज्ञानवश पतगा यह नही जानता कि यदि वह दीपशिखा पर गिरेगा तो उसका सर्वनाश हो जायगा। मछली को ज्ञान नही है, पता नही है कि बसी के काटे मे जो आटे की गोली लगी हुई है, वह उसके प्राणो का हरण करने वाली है। परिन्दो को, पक्षियो को पता नही है कि जो धान्यकण बिखरे पडे हैं, उनके नीचे भोले पछियो की जान को जजाल मे डालने वाला जाल बिछा हुआ है। इस प्रकार ये सभी छोटे-बडे प्राणी, जो विषयो के वशीभूत हो फसते और विनाश को प्राप्त होते है, वे अज्ञान के कारण फसते और विनष्ट होते हैं। यदि उन्हे ज्ञान हो जाय तो वे नही फसे। आपने देखा होगा बदर को पकडने वाले मदारियो को। एक जगह कुछ मदारी आये और उन्होने वहाँ लाल मु ह के वन्दरो को पकडने की अपनी योजना क्रियान्वित की। एक वन्दर पकडा गया। पकडे गये वन्दर के क्रन्दन को सुन कर अन्य सब वन्दर सावधान हो तत्काल वहाँ से भाग गये। दूसरे दिन उस स्थान के आसपास खोजने पर भी कोई बन्दर दृष्टि-गोचर नही हुआ। कई दिनो तक वन्दर उस स्थान पर नही आये, जहा कि एक बन्दर पकडा गया था। क्यो नही आये ? इसलिए कि वहा आने मे उन्होने खतरा अनुभव किया। पहले उस जगह पर उनका एक साथी पकडा गया था। बन्दर मानव जैसा बुद्धिमान् प्राणी नही है। आप मे से प्रत्येक के पास बन्दर की अपेक्षा हजार गुना या लाख गुना अधिक बुद्धिबल एव विचारबल है। आपसे बहुत कम बुद्धिमान् होते हुए भी बन्दर उस स्थान पर कई दिनो तक नही आये, जहाँ कि एक वन्दर फस गया था लेकिन मानव उन बन्दरो की अपेक्षा अत्यधिक बुद्धिमान् होते हुए भी कल जिन विषय-कषायो मे फसा, दारुण दु ख का भागी बना, छटपटाया, पछताता रहा, आज

फिर उन्ही विषय-कषायो मे पुन पुन फसता जा रहा है। क्या यह, आकाश मे पत्थर फेक कर उसके नीचे अपना सिर देने तुल्य नही है ? उसे अच्छी तरह स्मरण है कि अभी-अभी कुछ ही दिनो पहले जब उसने क्रोध किया था तो घर भर का वातावरण अशात, बीभत्स और दु खपूर्ण वन गया था। पूरे परिवार के किसी सदस्य ने, यहा तक कि वच्चो तक ने उस दिन खाना नही खाया था। भयकर क्रोध के परिणाम स्वरूप सब का दिमाग भन्ना गया था। सब के मुह लटक गये थे, परस्पर एक दूसरे से बोलना तक बन्द हो गया था। सम्पूर्ण परिवार पर एक प्रकार से मातम का, शोक का साम्राज्य छा गया था। किन्तु फिर वह भूलकर उसी क्रोध के वशीभूत हो रहा है। स्व-पर-सतापकारी क्रोध की आग मे जलता जा रहा है, फसता जा रहा है। जव वह कुछ ही समय पहले क्रोध का दुष्परिणाम देख चुका है, भुगत चुका है, तो फिर क्या उस आदमी को दुबारा क्रोध करना चाहिये ?

सर्वनाश से सावधान

जव एक साधारण जानवर, वदर तक यह समझता है— मेरा भाई इस जगह फस गया था, मैं क्यो वहा जाकर फसू । जव एक पशु इतना विवेक और विचार रख सकता है, सावधान रह सकता है, खतरे से अपना सरक्षण कर सकता है, तो मानव जैसा सृष्टि का सर्वाधिक बुद्धिमान् प्राणी क्रोधादि का दुष्परिणाम एक बार नही, अनेक बार नही, अनेकानेक बार भुगत चुकने के अनन्तर भी रात-दिन वारम्वार, पुन पुन क्रोध, मान, माया और लोभ मे उलझता रहे, एक-एक मे गहरा फसता जाय, आत्मशक्ति का विनाश करता जाय और फिर भी नही समझे तो क्या कहा जायेगा ? क्रोध, मान, माया, लोभ मे वार-वार फसने के कारण अपने आत्मगुणो को दुर्वल, क्षीण, एव व्यर्थ ही विनष्ट होते देख कर भी नही समझे, तो क्या यह उसके लिये शोभास्पद कहा जा सकता है ? वस्तुत मानव को सदा-सर्वदा, प्रतिपल रक्षणीय आत्मगुणो की रक्षा के लिये सजग, सावधान और सतर्क रहना चाहिए। आत्मगुणो का, जिन कारणो से हनन होता हो, उनसे सदा वचते रहना ही बुद्धिमत्ता है।

ससार के अन्य प्राणियो की अपेक्षा मानव को जो विशिष्ट ज्ञान प्राप्त हुआ है, उस ज्ञान का उपयोग उसे उन कारणो से वचे रहने के

लिये करना चहिये, जिन कारणो से होती हुई अपनी हानि को वह स्पष्टत देख रहा है। अगर अपनी रक्षा के लिये, अपने रक्षणीय आत्म-गुणो की रक्षा के लिये अपने प्राप्त ज्ञान का उपयोग नही किया, तो उस विशिष्ट ज्ञान से उसको और लाभ ही क्या है ? एक मानव की अपेक्षा जिसमे बहुत कम ज्ञान है, वह साधारण पशु बन्दर तो किन्ही कारणो से होती हुई दूसरे की हानि को देखकर भी, कही उसे भी उन कारणो से हानि न हो जाय, इस बात की शिक्षा लेता है और जिस स्थान पर अपने पकडे जाने की आशका है, उस स्थान से अपने आपको दूर रखता है पर विशिष्ट बुद्धि का धनी मानव रात-दिन यह देखता है कि विषय कषायो के कारण उसकी बडी हानि हो रही है, अपूरणीय क्षति हो रही है, तदुपरात भी क्रोध, मान, माया, लोभ आदि विषय-कषायो मे उत्तरोत्तर अधिकाधिक फसता जा रहा है, अपने पकडे जाने वाले, अपने आप को फासने वाले स्थानो से बचे रहने का प्रयास करने के बजाय उल्टे उनमे फसता जा रहा है, यह कितने बडे आश्चर्य की बात है ? इससे बढकर सोचनीय दु खद एव दयनीय स्थिति और क्या हो सकती है ? विषय कषायो के कारण हो रही अपनी हानि को देख कर भी, देखी को अनदेखी करते हुए यदि क्रोध, मान, माया, लोभ मे आप अधिकाधिक फसते गये तो परलोक की तो बात ही क्या, इहलोक मे भी आपको शान्ति प्राप्त नही होगी। यदि इस सम्बन्ध मे आप थोडा सा भी चिन्तन करेगे तो 'हाथ कगन को क्या आरसी' इस कहावत के अनुसार आपको एक नही, अनेक प्रत्यक्ष प्रमाण, साक्षात्, यत्र-तत्र-सर्वत्र देखने को मिलेगे। एक घर नही, एक ग्राम नही, एक नगर नही, घर-घर मे क्रोध, मान, माया लोभ और विषय-कषायो के दुष्परिणामो के दृश्य प्रति दिन देखने को मिलते है। आपमे से प्राय प्रत्येक को इसका कटु अनुभव अवश्य होगा। जिस दिन आप क्रोध के अधीन रहे, उस दिन आपका चिन्तन ठीक तरह से नही चला, सामायिक समभाव से नही हुई, स्वाध्याय मे मन लगा नही, किसी भी कार्य मे ठीक तरह से चित्त लगा नही और बिना बीमारी के बीमार होगये। तो इस प्रकार क्रोध, मान, माया, लोभ मे आसक्ति का कटु फल न केवल एक दो बार ही अपितु अनेक बार भोग चुकने के उपरान्त भी पुन पुन उन्ही विषय-कषायो से प्यार करते रहे, तो निश्चित रूप से यही कहा जायगा कि हमारा ज्ञान भ्रान्त है,

मिथ्या है। यदि मानव महान् पुण्योदय एव ज्ञानावरणीय तथा दर्शना-वरणीय के क्षयोपशम से प्राप्त अपने ज्ञान का सच्चे अर्थ मे उपयोग करे, तो दु ख के अन्धकूप मे ढकेलने वाले विषय-कषायो, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि की ओर कभी भूल कर भी मुह न करे । अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन एव अनन्त चारित्र की उपलब्धि के पश्चात् परम करुणानिधान वीतराग प्रभु ने कृपा कर यह उपदेश फरमाया "ओ मानव ! तू ज्ञान, दर्शन का धनी है अत ज्ञान का सम्यग् रूप से उपयोग कर।"

ज्ञान का सही दिशा में उपयोग :

महापुरुषो के जीवन से, उनके उपदेशो से, उनके विचारो से प्रत्येक मुमुक्षु को, प्रत्येक साधक को यही प्रेरणा मिलती है कि वह अपने ज्ञान का सही दिशा मे उपयोग करे। वस्तुत जिसके घट मे ज्ञान का प्रकाश प्रकट हो गया है, वह जिस प्रकार अपनी रक्षा के लिये प्रयत्न-शील रहेगा, उसी प्रकार प्राणिमात्र की रक्षा के लिये भी पूर्णत तत्पर रहेगा। वीतराग प्रभु द्वारा प्ररूपित शास्त्रो मे ज्ञान को स्व तथा पर — दोनो के लिये परम कल्याणकारी बताया गया है। अन्तर मे ज्ञान का प्रकाश प्रकट होने पर प्राणी को अपनी दीन-हीन दु खी अवस्था देखकर स्वय पर दया आयी और उसमे स्वय का उद्धार करने की, स्वय का कल्याण करने की भावना जागृत हुई । उसने अनुभव किया कि उसके द्वारा हो रहे आरम्भ-समारम्भ से प्रतिपल पग-पग पर असख्य प्राणियो की हिंसा हो रही है, अनेक प्राणियो का अनिष्ट हो रहा है और इस प्रकार के पर के अनिष्ट से उसका स्वय का बडा भारी अनिष्ट हो रहा है। इस प्रकार के अनुभव से उसके हृदय मे अपने स्वय के प्रति दया के साथ-साथ दूसरे प्राणियो के प्रति दया की भावना उत्पन्न हुई और परिणामस्वरूप उसका झुकाव साधना की ओर हुआ। उसने सोचा — "यदि मैं सासारिक कार्य-कलापो मे ही उलझा रहा, तो मै स्वय अपनी स्वय की भी हिंसा करू गा और दूसरे प्राणियो की हिंसा से भी अपने आपको न बचा सकने के कारण स्व और पर दोनो का ही घोर अकल्याण करता रहूगा।" एक व्यक्ति किसी पर क्रोध करता है तो दूसरे की हिंसा करने से पहले स्वय की हिंसा करता है। स्वय की हिंसा कैसे करता है ?

आप समझे भी या नही ? मैं ये बाते आपके अन्तर मे गहरी उतारने का प्रयास कर रहा हूँ। प्रत्येक आत्मा का मूल आत्मगुण है-सत्, चित्, आनन्द अथवा अक्षोभ्य शान्ति। आपने किसी पर क्रोध किया तो क्रोध करते ही आपने सर्व प्रथम अपने आत्मगुणो की हिंसा कर डाली। क्रोध करने पर क्या किसी के मन, मस्तिष्क अथवा हृदय मे शान्ति रहेगी, आत्मा का सत् स्वरूप रहेगा ? नही। क्रोध करते ही यह सब गुण नष्ट हो जायेगे। वस्तुत क्रोध करने से किसी पर की हिसा तो सदिग्ध है। हो सकता है दूसरे की हिसा न भी हो पर स्वय की हिंसा तो तत्क्षण असदिग्ध रूप से हो ही जाती है।

विषय-कषाय आत्मघाती

तो इस प्रकार क्रोध, मान माया, लोभ आदि मे फस कर प्राणी सर्वप्रथम स्वय की, अपनी आत्मा की हिंसा करता है। क्रोध, मान, माया, लोभ आदि से हमारी स्वय की हिंसा हो रही है, यह हमने सम्यग्रूप से जाना नही है, इसीलिये बार-बार इस रास्ते पर लग रहे है। यदि हम यह भली भाति जान ले, विषय-कषायो के आत्मघाती भयावह परिणामो को समीचीनतया समझ ले, तो फिर इस रास्ते पर कभी लगेगे ही नही।

भव-भवान्तर-भयावहा भावहिंसा

याद रखिये द्रव्य-हिसा की अपेक्षा भावहिसा कई गुना अधिक भयावह, घातक और महाविनाशकारी होती है। द्रव्य-हिंसा का कैसा आतक होता है, यह आपने कर्फ्यू के दिनो मे देखा है। एक बार देख लिया कि हथगोला, अश्रुगैस का गोला इस गली मे गिरा है, तो आपकी हिम्मत हुई क्या उधर, आने जाने की ? कर्फ्यू लगा तब पुलिस चक्कर लगा रही थी, अश्रुगैस के गोले छोडे जा रहे थे। महाजनो के बच्चो को कमाई कितनी ही प्यारी क्यो न हो, पर उस समय घर से निकल कर दुकान तक जाने का अथवा आगे बढने का साहस नही होता था। सुनते थे फला को मारा है, पीटा है, गैस-गोला चला है, थ्री नॉट थ्री राइफले लिये सिपाही बैठे हैं, ऐसा न हो कि कही फायर कर दे। इस प्रकार द्रव्यहिंसा का आतक आपने देखा है। पर भाव-हिंसा का आतक तो इससे अनेक गुना अधिक होता है।

पुलिस का आदमी ३०३ बोर राइफल से किसी के शरीर पर ही फायर करता है किन्तु क्रोध, मान, माया, लोभ के सिपाही तो आत्मगुणो की अमूल्य निधि पर फायर कर उसे विनष्ट कर देते है। क्रोध, मान, माया, लोभ के सतरी तो आपके सर पर बैठे हैं ऐसा कह दूँ तो आपकी समझ मे आयगा कि नही ? विषय-कषायो के सिपाही कहा बैठे है ? आपके सर पर। आप समझ तो रहे है न ? क्रोध, मान, माया लोभ के जो सतरी थ्री नॉट थ्री राइफले लिये, हथगोले लिये, मशीनगन, मोर्टारगन आदि महासहारकारी शस्त्रास्त्र लिये आपके सर पर बैठे है, उन्होने न मालूम किसी समय आप पर फायरिंग चालू कर दिया, तो कैसा प्रलय ढा देगे। आपका क्या होगा, कहा ठौर ठिकाना रहेगा ?

पुलिस के सन्तरी द्वारा किये गये फायर से किसी व्यक्ति के शरीर के किसी भाग मे चोट लग सकती है। उसका हाथ टूट सकता है। पैर टूट सकता है और कदाचित् किसी भाई का इस जन्म का शरीर भी छूट सकता है। किन्तु विषय-कषायो, क्रोध, मान, माया, लोभ के सतरियो द्वारा किये गये फायरिंग से भले ही किसी का इस जन्म मे हाथ, पैर अथवा गला न भी कटे पर उसके अनेक जन्म-जन्मान्तरो तक के लिये, असख्य काल और यहा तक कि अनन्तानन्त काल तक के लिये भी हाथ-पैर-आँख-नाक-कान-मुख कट सकते है अर्थात् उसका निगोद मे पतन हो सकता है, तिर्यञ्च, नारकादि गतियो मे अधोगमन हो सकता है। ज्ञानियो ने कहा है—"ओ मानव ! अनन्त अनतकाल से तेरी हत्या हो रही है। वह हत्या क्या है ? जरा समझे। विषय-कषायो के क्रोध, मान, माया, लोभ के सन्तरियो द्वारा की जा रही गोलियो एव हथगोलो की बौछारो से तेरे आत्म गुणो की हत्या हो रही है। विषय-कषायो के सन्तरियो द्वारा किये गये फायर से किसी का हाथ, पैर अथवा गला न भी कटा पर ज्ञान-भाव कट गया तो हो गई ना उसकी तो पूरी हत्या ? ज्ञान-भाव कट जाने से आपकी श्रद्धा पर गहरा आघात पहुँच गया। ज्ञान और दर्शन की हिसा हो जाने पर फिर आत्म-गुणो मे से बचा ही क्या रह जाता है ? अनन्तानन्त काल से नरक, निगोद तिर्यञ्चादि गतियो मे भटकते-भटकते बडी कठिनाई से मानव जन्म मिला, पुण्योदय से, कर्मो के विपुल क्षयोपशम से ज्ञान-दर्शन की प्राप्ति हुई और विषय-कषायो के, क्रोध, मान, माया,

लोभ के सन्तरियो द्वारा किये गये फायरिंग से आत्मगुणो की हत्या हुई और फिर जा पडे निगोदादि के गहनातिगहन अन्ध-कूप मे। इससे बडी आत्मा की हिंसा, आत्मा की हत्या और क्या हो सकती है ? अब तो आप समझ गये होगे कि द्रव्यहिंसा की अपेक्षा भावहिंसा कितनी अधिक भयानक, दारुण दु खदायक और आतकपूर्ण होती है।

अब आप ही सोचिये कि विषय-कषायो के सतरियो की गोलियो की बौछार से यदि आपका ज्ञान-भाव कट गया, आपकी श्रद्धा को घातक चोट पहुँच गई, तो उसका दुष्परिणाम कितना भयावह होगा ? आप भवसागर से पार पहुँचा देने वाली धर्म की नाव के पास पहुँच चुके है, फिर भी यदि विषय-कषायो से नही बचे तो क्रोध, मान, माया, लोभ की प्रलयकारी उत्ताल तरग एक ही क्षण मे पुन आप को अथाह भवाब्धि के बीचो बीच ला कर पाताल कलश मे पहुँचा देगी, जहा से अनन्तानन्त काल तक ऊपर उठने की आशा धूमिल हो जायगी।

धर्म की शरण/अर्थ की शरण

प्रतिदिन 'धम्म सरण पवज्जामि' सुनते हैं। पर अपने अन्तर्मन को टटोल कर देखिये कि आप वस्तुत धर्म की शरण मे जाते हैं या क्रोध, मान, माया, लोभ की शरण मे ? आप साधु-साध्वियो के पास मागलिक्य सुनने जाते है। वहा त्याग-प्रत्याख्यान तो नही करेंगे पर कहेगे "महाराज ! मागलिक सुना दो।" साधुजी ने यदि त्याग, प्रत्याख्यान के लिये कुछ भी न कहा और मागलिक्य सुना दिया तो आप बडे प्रसन्न होगे। आप मागलिक मे क्या सुनते है ? "चत्तारि सरण पवज्जामि, अरिहते सरण पवज्जामि, सिद्धे सरण पवज्जामि, साहू सरण पवज्जामि, केवलि पन्नत धम्म सरण पवज्जामि।" शरण किसकी ली ? अरिहत, सिद्ध, साधु एव केवली प्ररूपित धर्म की शरण ली और आपके मन मे यह अभिलाषा, यह आकाक्षा, बनी रही कि इस जन्म मे नही तो अगले जन्म मे एक गाव या परगने की जागीर मिल जाय, तो उस दशा मे आपका अरिहत-सिद्ध-साधु और सद्धर्म की शरण ग्रहण करना कहा तक सार्थक होगा ? दिखावे मे 'केवलिपण्णत्त धम्म सरण पवज्जामि' आदि का उच्चारण करना और अन्तर मे अर्थ-प्राप्ति की बलवती अभिलाषा को सजोये रखना, धन

मिलाने के लिये हिसा-झूठ आदि का आचरण करना–यह तो वास्तव मे धर्म की शरण ग्रहण करना नही कहा जा सकता। यह तो अर्थ की शरण ग्रहण करना ही है। धर्म की शरण ग्रहण करना है तो आपको अन्तर्मन से दृढ सकल्प के साथ यह समझना होगा–"कषायोदय के प्रसग उपस्थित होने पर यदि मैं किंचित्मात्र भी डोलायमान हो गया तो क्रोध, मान, माया, लोभ मेरे आत्मगुणो का हनन कर, मेरी आत्मा की हत्या कर मुझे अधोगति के घोर रसातल मे ढकेल देगे।"

कषाय अयस्मय अग्निगोलक

यह तो आपको पहले बताया जा चुका है कि विषय-कषायो से, क्रोध आदि से पराई हिसा हो अथवा न हो लेकिन क्रोध, मान, माया, लोभ करने वाले की आत्मा की सर्व प्रथम सुनिश्चित रूप से हिसा होती है। एक व्यक्ति अपने शत्रु को, अपने विरोधी को मारने के लिये, जलाने के लिये ज्वालाए उगलता हुआ आग मे प्रतप्त लोहे का लाल-लाल गोला उठाता है, तो पहले स्वय उसके ही हाथ जलेगे। अपने हाथ जलाने के पश्चात् ही वह अपने शत्रु पर उस आग के गोले का प्रहार कर सकेगा। शत्रु सावधान हुआ तो पैंतरा पलट कर उस आग के गोले से बच भी सकता है। तो क्रोध, आदि कषाय आग के गोले के समान है। जिस प्रकार आग का गोला सर्व प्रथम उस उठाने वाले को ही जलाएगा, उसी प्रकार क्रोध, आदि कषाय सर्व प्रथम क्रोध, मान, माया, लोभ करने वाले व्यक्ति की ही हिंसा करेगे। क्रोध करने वाला व्यक्ति अपनी हिंसा करने के पश्चात् ही किसी पर की, किसी अन्य की हिसा कर सकेगा।

मै समझता हूँ 'रक्षणीय की रक्षा' के सम्बन्ध मे मैने विस्तारपूर्वक जो बाते आपके समक्ष रखी है, उससे आपके ध्यान मे यह अच्छी तरह आ गया होगा कि विषय-कषाय, क्रोध, मान, माया, लोभ कितने अनर्थकारी, विनाशकारी और भव-भ्रमण कराने वाले है। आत्मगुणो एव आत्मा की हिंसा करने वाले है, अत महान् पुण्योदय अथवा कर्मो के क्षयोपशम से, मानव जन्म की प्राप्ति के साथ-साथ जो आप मे यत्किञ्चित् ज्ञान का विकास हुआ है, उसका 'रक्षणीय की रक्षा' करने मे उपयोग करना चाहिए। आपके लिये उस ज्ञान का पाना तभी सार्थक होगा जब कि आप रक्षणीय, अपनी आत्मा की, रक्षणीय–सकल चरा-

चर प्राणिवर्ग की और रक्षणीय–अपने गुणो की रक्षा के लिये अपने ज्ञान का उपयोग करते हुए विषय-कषायो, क्रोध, मान, माया और लोभ से सदा बचते रहे। ससार की चौरासी लाख जीव-योनियो मे से मनुष्य योनि की, मानव-जीवन की यही तो एक सबसे बडी विशेषता है कि अन्य सब जीवो की अपेक्षा मानव ने जो विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया है, उस के उपयोग द्वारा वह अपनी, अपने आत्म गुणो की और पर की अर्थात् अन्य प्राणियो की हिसा करने वाले क्रोध, मान, माया, लोभ आदि सर्वस्वापहारी शत्रुओ से अपनी रक्षा कर सकता है। हमारे, मानवजन्म प्राप्त करने की सार्थकता इसी मे है कि हम चिन्तन द्वारा अपने ज्ञान–गुण का उपयोग कर अपनी और पर की हिसा से अपने-आप को बचा ले। केवल वर्तमान मे होने वाली हिंसा से ही नही अपितु भविष्य मे होने वाली अपनी हिसा से भी अपने आपको बचाये रखने का प्रयत्न करते रहे। वस्तुत यही तो सही अर्थ मे सच्ची स्व-पर की रक्षा होगी। रक्षा-बन्धन के इस लोकप्रिय पावन पर्व की पृष्ठभूमि मे 'रक्षणीय की इसी सच्ची रक्षा, का महान् उद्देश्य निहित है।'

रक्षा-बन्धन . रक्षणीय की रक्षा का आध्यात्मिक पर्व

आज रक्षा-बन्धन का पर्व है। आज के दिन अपवाद रूप मे सभवत विरली ही कोई ऐसी बहिन मिलेगी, जो रक्षा का सूत्र, रक्षा का धागा न बाधती हो। आज के दिन बहिने सुन्दर वस्त्रालकारो से सुसज्जित हो भाई के रक्षा सूत्र बाधती हैं। क्या भावना है इस रक्षा बन्धन के पीछे ? कुछ लोग तो सोचते है कि आज राखी का त्यौहार है, परम्परा से राखी बान्धने का प्रचलन चला आ रहा है अत रक्षा-सूत्र बान्धना-बन्धवाना चाहिये। इस प्रकार कुछ लोग, रिवाज के रूप मे राखी बान्धते-बन्धवाते हैं। कुछ लोग, और तो और अपनी दवातो, बहियो, तिजोरियो, खजाने के कोठो, दुकानो के दरवाजो और आफिसो-कार्यालयो के दरवाजो पर भी राखी बाधते है। क्यो, मैं यह कोई काल्पनिक बात तो नही कह रहा हूँ न ? आप स्वय यह सब कुछ देखते है, आप मे से अधिकाश को स्वय को भी यह अनुभव होगा।

सच्चे अर्थ मे रक्षणीय अविनाशी आत्मदेव

तो इस प्रकार द्रव्य-रक्षा के लिये, भौतिकी रक्षा के लिये, बाहरी

रक्षा बाधी मा मरुदेवी, जो कोई बाधेला।
दिशा कुमारी रक्षा पोटली, जिनवर बाधेला।
बाधो-बाधो रे जतना के सूत्र से रक्षा होवेला ।।

आज के लोग अधिकाँशत बाहरी रूढिवाद की लकीर पर चलते हैं। वे पर्व के मर्म को और पर्व के पीछे रही हुई भावना को पकडने का प्रयास नही करते। यदि लोग पर्व के पीछे रही हुई भावना को समझ कर उसका अनुसरण करे, तो व्यवहार का प्रसग भी जीवन के लिये हित का कारण अथवा रक्षा का कारण बन सकता है। यह रक्षा-बन्धन का पर्व भी एक तरह से अपने पीछे ऐसी ही उज्ज्वल भावना को लिये हुए है। इसकी उत्पत्ति का भी एक इतिहास है। इस पर्व की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे वैदिक परम्परा और जैन परम्परा – दोनो ही के साहित्य मे परस्पर एक दूसरी से भिन्न एक-एक घटना का उल्लेख है। जैन परम्परा का साहित्य इस सम्बन्ध मे एक विश्वस्त प्रसग रखता है। किसने किसकी रक्षा की, कब किस प्रकार इस रक्षा-बन्धन पर्व का सिलसिला चला, इस ऐतिहासिक घटना को विस्तार मे न लाया जाकर सक्षेप मे ही थोडा चिन्तन प्रस्तुत किया जायगा।

अभी जो पद आपको सुनाया गया, उसमे कवि ने मानव मात्र को प्रेरणा प्रदान करते हुए कहा है कि जीव-दया ही सबसे बडी रक्षा है अत यतना का सूत्र बाधो। यतना से अन्य जीवो की रक्षा के साथ-साथ तुम्हारी स्वय की भी रक्षा होगी। यतना का अर्थ है प्रत्येक कार्य को विवेकपूर्वक सावधानी से करना। जैन शास्त्रो मे बडे ही युक्ति-युक्त एव प्रभाव पूर्ण शब्दो मे कहा गया है कि प्रत्येक कार्य को पूर्ण सावधानी और यतना पूर्वक इस प्रकार करना चाहिये कि उस कार्य के निष्पादन मे सभवत किसी जीव की हिंसा न होने पावे। शास्त्रो मे यतना को रक्षा के नाम से भी अभिहित किया गया है। भगवान् महावीर के अमोघ उपदेशो के आधार पर गणधरो द्वारा ग्रथित प्रश्नव्याकरण-सूत्र मे अहिंसा के साठ (६०) नाम बताये है। उनमे एक नाम यतना, एक नाम पूजा, एक नाम यज्ञ और एक नाम रक्षा भी है। इस प्रकार अहिसा के जो ६० नाम सूत्र मे दिये गये है, उनमे से प्रत्येक के पीछे एक विशिष्ट भावना निहित है। प्रत्येक नाम का अपने-अपने स्थान पर एक खास महत्त्व है। अहिसा के उन अनेक

नामो मे से हम इस समय यहा उसके 'यतना' नाम पर ही थोडा विचार करते हैं।

मानव-जीवन मे यतना का वहुत वडा महत्त्व है। यतना को सही रूप से अपने जीवन मे और अहर्निश के कार्यकलापो मे ढालने वाला व्यक्ति यथेप्सित सिद्धि प्राप्त कर सकता है। यदि आप अपने ऐहिक एव पारलौकिक जीवन मे सुख-शाति चाहते है, यहा तक कि सब प्रकार के दु खो का अन्त कर अक्षय, अव्यावाध, शाश्वत सुख मिलाना चाहते है तो जीवन मे, और दिन-रात के अपने कार्यकलाप मे यतना को सर्वोच्च स्थान दो। यतना को जीवन का अपरिहार्य एव आवश्यक अग वनाकर अपने आचरण मे ढालो। खाते-पीते, सोचते-विचारते, चलते-फिरते, उठते-वैठते, वोलते-चलते और विविध भोगोपभोगो का उपभोग करते, यहा तक कि जीवन के लिये उपयोगी प्रत्येक कार्य को करते समय यतनापूर्वक आचरण करो, जिससे कम से कम कर्म-वन्ध हो। इस प्रकार प्राणिमात्र के यतना का सूत्र वाधोगे तो प्राणिमात्र को अभयदान देने के परिणामस्वरूप सदा-सर्वदा के लिये आप निर्भय वन जाओगे।

माता मरुदेवी का यतना-सूत्र

अभी आपको जो पद सुनाया गया, उसमे कवि ने कहा है— "ऐसी यतना की राखी, ऐसा अहिंसा का सूत्र माता मरुदेवी ने वाधा।" माता मरुदेवी के लिये शास्त्रो मे वर्णन है कि उन्होने एक करोड पूर्व का आयुष्य पाया। एक करोड पूर्व मे कितने वर्ष होते है, इसका लेखा-जोखा लगाते समय आज के कतिपय भौतिकवादी विचारक सशक हो जाते है। इतने सुदीर्घ जीवनकाल मे माता मरुदेवी ने, अन्यान्य व्याधियो की वात तो दूर कभी किञ्चित्मात्र शिरोवेदना अथवा नाम मात्र भी उदर-पीडा तक का अनुभव नही किया। जीवन भर उनकी कञ्चन तुल्य निर्मल काया पूर्ण स्वस्थ, सशक्त और सुन्दर रही। उन्हे जीवन मे कभी औपधि-सेवन का प्रसग नही आया। उन्होने जीवन भर स्व की तथा पर की यतना के सूत्र मे, अहिंसा के सूत्र से रक्षा की। न उन्होने अपने सुदीर्घकालीन जीवन मे कभी किसी को किञ्चित्मात्र भी पीडा पहुँचाई और न स्वय ने ही कभी

किसी प्रकार की पीडा पाई। किसी कवि ने भावविभोर हो मरुदेवी माता के सुख के सम्बन्ध मे लिखा है—

'करोड पूर्व लग पाई साता, मा मरुदेवी माता।'

एक करोड पूर्व की लम्बी आयु मे मरुदेवी माता ने कितनी पीढिया देख ली ? सुदीर्घ काल को लम्बी वश-परम्परा मे मा मरुदेवी को अपने पुण्य के प्रताप से अपनी किसी सतति के वियोग का कभी कोई अवसर उपस्थित नही हुआ। उन्होने अपने जीवन मे जो यतना सूत्र बाधा, अहिसा सूत्र अथवा रक्षा—सूत्र बाधा, उसका परिणाम यह हुआ कि उन्हे अपने जीवन मे अपने शरीर की और अपने विशाल परिवार के किसी सदस्य की पीडा को सहन करने का कभी कोई प्रसग उपस्थित नही हुआ। यतना के सूत्र द्वारा प्राणियो की रक्षा करने के फलस्वरूप माता मरुदेवी ने अपने जीवन के अन्तिम क्षणो मे अति स्वल्प समय मे ही आत्मचिंतन करते २ घातिकर्म क्षय कर केवलज्ञान मिलाया और क्षणो मे ही सपूर्ण कर्मो को नष्ट कर शाश्वत सुख स्वरूप मोक्षधाम प्राप्त कर लिया।

रक्षाबन्धन पर्व के पीछे यही पवित्र पृष्ठभूमि, यही पुनीत उद्देश्य और यही पावन भावना है कि मानव यतना का सूत्र बाध अपनी आत्मा की तथा प्राणिमात्र की रक्षा कर अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति मे सफल हो। अभी सुनाये गये पद मे कवि ने यही भावना व्यक्त की है कि प्रत्येक मुमुक्षु श्रावण की पूर्णिमा के दिन रक्षाबन्धन के पर्व पर प्राणिमात्र के यतना का सूत्र, यतना का धागा बाधकर किसी जीव की हिंसा न करने का दृढ सकल्प करे। जिन-शासन की मर्यादा मे रहते हुए प्रत्येक जीव की रक्षा करना, अपनी आत्मा की तथा अपने आत्म-गुणो की रक्षा करना, स्वधर्मी बन्धुओ की रक्षा करना और चतुर्विध सघ की रक्षा करना, यही पवित्र भावना, यही लोक-कल्याणकारी, स्व-पर कल्याणकारी भावना इस रक्षाबन्धन पर्व के पीछे निहित है।

धर्म पर सकट के काले बादल

यह पर्व कब से प्रचलित हुआ, इस सम्बन्ध मे जैन कथा साहित्य मे लब्धिधारी महामुनि विष्णु कुमार की कथा उपलब्ध होती है।

मानव-सस्कृति का सहजन्मा धर्म होने के कारण जैन-धर्म एक युगादि, अनादि एव अति-प्राचीन धर्म है। इसे अनेक सक्रान्तिकालो के दौरो से समय-समय पर गुजरना पडा है। बौद्धो और जैनो के सघर्षकाल मे जैन श्रमणो को अपनी धार्मिक जीवनचर्या समीचीनतया चलाना, सम्यग्रूपेण सयमचर्या का निर्वहन करना एव निर्बाध रूप से यत्र-तत्र-सर्वत्र विचरण करना कठिन हो गया था। इतिहास के पन्नो के पर्यालोचन से ऐसे प्रसगो का भी पता चल सकता है कि विरोधियो ने बौद्ध भिक्षुओ के साथ-साथ जैन श्रमणो को भी तलवार के घाट उतारने का उपक्रम किया। अन्तिम मौर्य सम्राट वृहद्रथ की हत्या कर जब उसका सेनापति पुष्यमित्र शुग पाटलिपुत्र के राज्य सिहासन पर आरूढ हुआ, तो उसने जैनो और बौद्धो पर भयकर अत्याचार किये। इतिहास के उल्लेखानुसार पुष्यमित्र शुग ने धर्मान्ध लोगो मे इस प्रकार के आदेश प्रसारित करवाये कि जो कोई व्यक्ति बौद्ध भिक्षु का मु ड काट कर उसके समक्ष प्रस्तुत करेगा, उसे १०० स्वर्णमुद्राए पारितोषिक के रूप मे प्रदान की जायेगी। जैन श्रमणो पर, जैन धर्म के अनुयायियो पर भी पुष्यमित्र ने अनेक प्रकार के घोर अत्याचार किये। उस समय जैन धर्म के अनन्य उपासक कलिगाधिपति महाराज महामेघवाहन-भिक्खुराय खारवेल ने पाटलिपुत्र पर प्रबल आक्रमण कर पुष्यमित्र को समुचित दण्ड दे चतुर्विध जैन-सघ की रक्षा की। तो इस प्रकार प्राचीन काल मे जैन-सघ को समय-समय पर अनेक बार विविध सकटो के दौरो से गुजरना पडा। अति प्राचीन काल (बीसवे तीर्थंकर मुनि सुव्रत स्वामी के तीर्थकाल) मे भी जैन श्रमण-सघ पर इस प्रकार का घोर सकट आया। उस समय लब्धिधारी महामुनि विष्णु कुमार ने अपने लब्धि-बल से श्रमण-सघ की रक्षा की। तभी से रक्षाबन्धन का पर्व प्रचलित हुआ, ऐसा माना जाता है।

वैदिक परम्परानुसार रक्षाबन्धन पर्व

वैदिक परम्परा के पौराणिक ग्रन्थो मे दैत्यराज बली के समय से रक्षाबन्धन पर्व का प्रारम्भ होना बताया गया है। वैदिक परम्परा के पुराणो मे उल्लेख है कि दैत्यराज बली अपने आपको सबसे बडा दानी मानता था। जब सुरो पर असुरराज बली के अत्याचार सीमा को लाघ गये और उसका महादानी होने का गर्व

अति की परिधि पार कर चुका, तो विष्णु ने वामन का अवतार ग्रहण कर उसके गर्व को विचूर्णित किया। एतद्विपयक एक श्लोक भी लोक मे, सर्व साधारण मे प्रचलित है –

अति दानाद्बलिर्वद्ध, अति मानात्सुयोधन ।
अति रूपवती सीता, अति सर्वत्र वर्जयेत् ।।

वामनजी बली की राजसभा मे उपस्थित हुए। ५२ अगुल के लघुकाय वामन को देख कर बली ने आश्चर्य-मिश्रित स्वर मे पूछा –

"कस्त्व ब्रह्मन् !" अर्थात् ओ ब्राह्मण ! तुम कौन हो ?

वामन ने उत्तर दिया – "अपूर्व ।" अर्थात्–मैं वह हूँ, जिसके पूर्व सृष्टि मे कोई उत्पन्न नही हुआ।

बली ने पूछा – "क्व च तव वसति ?" अर्थात् तुम्हारा निवास स्थान कहा है ?"

वामन ने कहा – "याखिला ब्रह्मसृष्टि ।" अर्थात् समस्त ब्रह्माण्ड मेरा निवास-स्थान है।

बली ने वामन से पूछा – "किं तेऽभीष्ट ददामि ।" अर्थात् मै तुम्हारी कौन सी अभीष्ट वस्तु दू ?

वामन ने उत्तर दिया – "त्रिपदपरिमिता भूमि ।" अर्थात् मुझे मेरे तीन पेड (तीन पद) धरने जितनी धरती चाहिये।

बली ने अति प्रबल अट्टहासपूर्वक कहा – "अल्पा किमेषा ?" अर्थात् ओह ! यह क्या ? इतनी छोटी सी वस्तु ? ओ अति लघुकाय वामन ! कितने छोटे छोटे तुम्हारे पैर है ? तुम्हारे तीन पेड मे कितनी सी धरती आयेगी ? बली के द्वार पर पहुँच कर भी तुमने यह क्या छोटी सी वस्तु मागी ?

वामन ने सुदृढ स्वर मे कहा – "मै तो तीन पग धरती ही लूगा। देना है तो दो अन्यथा कह दो कि नही देता ।"

बली का महादानी होने का अपना अह आहत हो उठा। दान का सकल्प करने हेतु जल की झारी प्रस्तुत करने का अपने सेवक को सकेत करते हुए बली ने वामन को सम्बोधित किया – "मेरे द्वार पर पहुँचने के पश्चात् भी ऐसा प्रतीत होता है कि तेरे भाग्य मे दारिद्र्य ही लिखा है। ले तीन पेड धरती ।"

जनश्रुति के अनुसार असुर–गुरु शुक्राचार्य की दूरदर्शी सुतीक्ष्ण दृष्टि से यह तथ्य छिपा न रह सका कि असुरराज बली छला जाकर सकट का स्वत वरण कर रहा है। उसने सकेतो द्वारा वली को यह समझाने का पूर्ण प्रयास किया कि वह वामन को तीन पग धरती का दान न करे। जब शुक्राचार्य ने देखा कि उसके परामर्शों की अवहेलना कर बली दान का सकल्प करने के लिये समुद्यत है, तो उसे बली को दान देने से रोकने का एक उपाय सूझा। शुक्राचार्य भ्रमर बन कर झारी की नली मे जा बैठा। सेवक ने बली के हाथ मे झारी से जल डालने का प्रयास किया। पर पहले ही शुक्राचार्य भ्रमर बनकर झारी की नली मे जा बैठे हुए थे अत झारी से पानी की एक भी बूद बली के करतल मे नही गिरी।

वामन तत्काल ताड गये कि शुक्राचार्य दान मे बाधक बन रहा है अत उन्होने दर्भ (डाब) का एक डठल उठाया और उसे सुराही की टोटी मे एक झटके के साथ घुसेड दिया। डाब के डठल का तीक्ष्ण अग्रभाग भ्रमर बन कर झारी की नली मे बैठे शुक्राचार्य की आख मे गहराई तक घुस गया और इसके परिणाम स्वरूप शुक्राचार्य की एक आख फूट गई। दान मे बाधा पहुचाने के परिणाम स्वरूप शुक्राचार्य अपनी एक आख से हाथ धो बैठे और "अक्ष्णा काण" बन गये। भ्रमर रूपधर शुक्राचार्य आँख फूटते ही दर्द भरी गुजार करते हुए झारी की नली से बाहर निकले और अवरोध दूर होते ही झारी से पानी बली की अजलि मे गिरा। बली ने वामन को तीन पेड धरती दान मे देने का सकल्प किया।

दान का सकल्प करते ही वामन ने अपना शरीर बढाना प्रारम्भ कर अचिन्त्य विराट स्वरूप धारण किया और देखते ही देखते उन्होने पृथ्वी एव आकाश को आच्छादित कर लिया। विराट स्वरूपधारी वामन ने एक डग मे समस्त पृथ्वी एव दूसरे डग मे सम्पूर्ण उन्मुक्त आकाश को आत्मसात् कर लिया। तदनन्तर तीसरा डग धरने के लिए कोई स्थान अवशिष्ट न रह जाने पर वामन ने बली को वरुण पाश से वान्ध दिया। पौराणिक आख्यान के आधार पर प्रचलित लोककथा के अनुसार बली की पत्नी विन्ध्यावली ने उस समय वामन के हाथ मे रक्षासूत्र वान्धा। रक्षासूत्र वान्धने के कारण

विन्ध्यावली वामन की धर्म बहिन बन गई। अपनी धर्म बहिन पर कृपा कर वामन ने बली को 'सुतल लोक' प्रदान किया और इस प्रकार उसी दिन से लोक मे रक्षाबन्धन का त्यौहार प्रचलित हुआ। वैदिक परम्परा मे कुछ पौराणिक आख्यान एव कुछ लोककथा पर आधारित इस प्रकार की एक कथा रक्षाबन्धन पर्व के प्रादुर्भाव के सम्बन्ध मे प्रचलित है।

जैन परम्परा की मान्यता

जैन सिद्धान्त मे इस प्रकार भगवान् के अवतार लेकर आने की स्थिति मान्य नही है, अत जैन साहित्य मे इस घटना का यह रूप उपलब्ध नही होता। रक्षाबन्धन पर्व विषयक जैन कथा मे विष्णु के अंशावतार वामन के स्थान पर वैक्रिय लब्धिधारी मुनि विष्णुकुमार का उल्लेख है। विष्णुकुमार मुनि खेचरी अर्थात् आकाशगामिनी विद्या के धनी और वैक्रियलब्धि के धारक थे। जैन साहित्य मे जो एतद्विषयक उल्लेख उपलब्ध होता है, वह इस प्रकार है –

अति प्राचीन काल मे उज्जयिनी के एक उद्यान मे सुव्रत नामक आचार्य का पदार्पण हुआ। उज्जयिनी का राजा 'धर्म' अपने परिजन, पौरजन एव मन्त्रिगण सहित आचार्य के दर्शन एव उपदेश-श्रवणार्थ उस उद्यान मे उपस्थित हुआ। राजा 'धर्म' का बली अथवा नमूची नामक मन्त्री आचार्य श्री के साथ चर्चा के नाम पर वितण्डावाद पर उतर आया। एक सामान्य साधु ने उस मन्त्री को वाद मे परास्त कर निरुत्तर कर दिया। समस्त धर्म-परिषद् के समक्ष मन्त्री बडा लज्जित एव अपमानित हुआ। अपने इस अपमान से क्रुद्ध हो मन्त्री रात्रि के समय मुनियो का वध करने की दुर्भावना लिये नगी तलवार लेकर उद्यान मे मुनियो के निवासस्थल पर पहुचा। किन्तु किसी अचिन्त्य शक्ति द्वारा वह वहाँ पत्थर की प्रतिमा के समान स्तम्भित कर दिया गया।

प्रात काल प्रजाजनो एव राजा ने उस मन्त्री को नग्न खड्ग हाथ मे लिये स्तम्भित देखा तो सब ने विस्मय प्रकट करते हुए घृणा एव तिरस्कार पूर्ण शब्दो मे उस मन्त्री की बडी भर्त्सना की। 'धर्म' राजा ने क्षमायाचना कर उस मन्त्री को किसी तरह स्तम्भन से मुक्त करवाया। इस प्रकार के पापाचरण के कारण मन्त्री की इतनी

अधिक अपकीर्ति हुई कि उसे छिप कर उज्जयिनी के राज्य से बाहर भागना पडा। वह मन्त्री हस्तिनापुर पहु चा और वहा राजा पद्मोत्तर का मन्त्री बन गया। मन्त्री ने महाराज पद्मोत्तर के एक बहुत बडे शत्रु सिंहरथ को रणक्षेत्र मे परास्त किया। इससे अत्यधिक प्रसन्न हो महाराज पद्मोत्तर ने उसे यथेप्सित वर मागने को कहा। उसी समय वर न माग कर मन्त्री ने समुचित समय के लिये वर को सुरक्षित रखने की प्रार्थना की।

अपने छोटे पुत्र महापद्म अथवा पद्म को राज्यभार सौप कर महाराज पद्मोत्तर ने अपने बडे पुत्र विष्णु कुमार के साथ सुव्रताचार्य के पास नैर्ग्रन्थी श्रमण-दीक्षा ग्रहण कर ली। विशुद्ध सयमपालन के साथ-साथ घोर तपश्चरण द्वारा चारो घाती कर्मों का अन्त कर महामुनि पद्मोत्तर ने केवलज्ञान प्राप्त किया और अन्ततोगत्वा समस्त अवशिष्ट कर्मो को विनष्ट कर शुद्ध-बुद्ध विमुक्त हुए। मुनि विष्णु-कुमार ने ६००० वर्ष तक कठोर तपश्चरण कर आकाश गामिनी, वैक्रिय आदि अनेक अनुपम लब्धिया प्राप्त की।

एक समय आचार्य सुव्रत विविध क्षेत्रो मे विचरण करते हुए हस्तिनापुर नगर के उद्यान मे पधारे और अपने विशाल शिष्य समूह सहित वहा चातुर्मास काल तक के लिये विराजित हुए। मत्री बली (अपर नाम नमूची) ने अपने पूर्व वैर के प्रतिशोध का यह उपयुक्त अवसर समझ कर चक्रवर्ती पद्म से उसके पिता द्वारा प्रदत्त वर की याद दिलाते हुए कुछ समय के लिये उसके सम्पूर्ण राज्य की याचना की। पिता के वचनो का सम्मान करते हुए चक्रवर्ती पद्म ने बली को सम्पूर्ण राज्य का शासन प्रदान कर अपने अन्त पुर मे निवास प्रारम्भ कर दिया।

धर्म की शरण

नये राजा बली का अभिवादन करने के लिये सुव्रताचार्य को छोड उस समय मे प्रचलित शेप धर्मो के सभी धर्माचार्य बली की राज्य-सभा मे उपस्थित हुए। जैनाचार्य सुव्रत के न आने से बली बडा क्रुद्ध हुआ और उसने आदेश दिया कि सात दिन के अन्दर-अन्दर सभी जैन साधु उसके राज्य की सीमा से बाहर चले जाय।

सात दिन बाद यदि कोई जैन साधु उसके राज्य की सीमा मे पाया गया तो उसके प्राणो का तत्काल अन्त कर दिया जायगा ।

पद्म चक्रवर्ती ने अपने छ खण्ड के अति विशाल साम्राज्य का अधिपति वली को बना दिया था । प्रथम कठिनाई तो यह थी कि चरण बिहारी जैन मुनि ७ दिनो के अन्दर-अन्दर ६ खण्ड राज्य के बाहर कैसे जा सकते है और दूसरी कठिनाई यह कि छ खण्ड राज्य के बाहर जाये तो भी कहा जाये और कैसे जाये ? आचार्य सुव्रत ने अनुभव किया कि वास्तव मे जैन सघ पर यह अभूतपूर्व विकट सकट उपस्थित हुआ है । इस प्रकार के अपरिहार्य घोर सकट से सघ की कैसे रक्षा की जाय, इस सम्बन्ध मे गहन मत्रणाए की गई, विविध उपायो पर विचार विमर्श किया गया । अन्ततोगत्वा कोई कारगर समुचित उपाय न सूझने पर आचार्य सुव्रत ने "केवलीपण्णत्त धम्म सरण पव्वज्जामि" इस आर्ष वचन का अनुसरण करते हुए धर्म की शरण ग्रहण करने का दृढ निश्चय किया । जैन सघ के गुरु, महान् आचार्य सुव्रत ने किसकी शरण ग्रहण की ? किसी देव की शरण ग्रहण नही की, धर्म की शरण ग्रहण की ।

आप तो समझते है कि देवता रक्षा करेंगे और देव यह समझते है कि धर्म रक्षा करेगा । देव, देवेन्द्र भी काम पडने पर धर्म की शरण ग्रहण करते है । शास्त्र मे दश आश्चर्यो के वर्णन मे चमरेन्द्र के सौधर्म नामक प्रथम देव लोक मे जाने और वहा सौधर्मेन्द्र के समक्ष उत्पात करने का उल्लेख मिलता है । चमरेन्द्र ने उत्पन्न होते ही जब यह देखा कि सौधर्म सभा मे सौधर्मेन्द्र उसके ऊपर पैर किये इन्द्रासन पर बैठा है तो वह बडा क्रुद्ध हुआ । अपनी अधीनस्थ देव-देवियो के समक्ष सौधर्मेन्द्र को इसका दण्ड देने की प्रतिज्ञा कर चमरेन्द्र ने चमरचञ्चा से तत्क्षण प्रस्थान किया । मार्ग मे उसने सोचा कि सौधर्मेन्द्र उससे अत्यधिक शक्तिशाली है । कही ऐसा न हो कि वहाँ उसके समक्ष टिक न सकू और उसे सौधर्मेन्द्र से मुह की खानी पडे, इस प्रकार की आशका के उत्पन्न होते ही उसने किसी विशिष्ट शक्तिमान की शरण ग्रहण करने का निश्चय किया । उसने देखा कि छद्मस्थ काल मे चरम तीर्थंकर भगवान महावीर घोर तपश्चरण करते हुए ध्यान मे मग्न खडे है । चमरेन्द्र ने तत्काल अनन्त बली

प्रभु महावीर के चरण कमलो को वन्दनपूर्वक शरण ग्रहण की और तदनन्तर वह सौधर्म देवलोक मे पहुँचा। चमरेन्द्र ने सौधर्मेन्द्र को अप्रिय, अनिष्ट एव कटु शब्दो से सम्बोधित करते हुए भला-बुरा कहा और वहा उत्पात मचाया। उस प्रकार के अश्रुतपूर्व आकस्मिक अनर्गल प्रलाप से रुष्ट हो सौधर्मेन्द्र ने गर्जना कर चमरेन्द्र की भर्त्सना की और सिहासन पर बैठे-बैठे ही अपना वज्र उसकी ओर फेका। वज्र के असह्य तेज से सत्रस्त हो चमरेन्द्र तत्काल वहाँ से भागा और तीव्रतम गति से वह भगवान् महावीर के चरणो के बीच जा बैठा।

"चमरेन्द्र ने इस प्रकार का दुस्साहस किस के बल बूते किया" इस प्रकार का विचार आते ही सौधर्मेन्द्र पूरी स्थिति से अवगत हो गया। "हाय! कही त्रिलोकीनाथ की अविनय-आशातना न हो जाय" – इस प्रकार के शोकोद्गार प्रकट करते हुए अपनी उत्कृष्टतम गति से सौधर्मेन्द्र अपने वज्र को लेने को लपका। उसने ध्यानस्थ भगवान् महावीर से गज भर की दूरी पर अपने वज्र को जा पकडा। सौधर्मेन्द्र ने प्रभु के चरणो मे अपना मस्तक झुकाते हुए अति दीन एव करुण स्वर मे निवेदन किया – "करुणा सिन्धो! क्षमा करें, अभी तो मै अज्ञानवश अपना इहलोक और परलोक सब कुछ विनष्ट कर लेता।"

प्रभु की स्तुति करने के पश्चात् चमरेन्द्र को क्षमा प्रदान कर सौधर्मेन्द्र अपने स्वर्ग की ओर लौट गया। सौधर्मेन्द्र के चले जाने के पश्चात् चमरेन्द्र ने भी वन्दन नमनपूर्वक प्रभु की स्तुति की और बोला – "भगवन्! आज तो प्रभु चरणो की शरण ग्रहण करने के फलस्वरूप ही मेरी रक्षा हुई।" यह कहता हुआ चमरेन्द्र अपनी राजधानी की ओर चला गया।

विष्णु मुनि का आह्वान एव आगमन

प्रसगवश इस घटना को सुनाने के पीछे मेरा यही अभिप्राय है कि देवेन्द्र भी अपनी रक्षा के लिये धर्म की शरण ग्रहण करते है। आचार्य सुव्रत ने भी घोर सकट से सघ की रक्षा करने के लिये धर्म की शरण ग्रहण की। उनके अन्तर मे आशा की एक किरण उदित हुई कि घोर तपस्वी एव अनेक लब्धियो का धारक उनका शिष्य मुनि

विष्णुकुमार समुपस्थित सकट से सघ की रक्षा कर सकता है। पर उस समय मुनि विष्णुकुमार अति दूरस्थ प्रदेश मे तपश्चरण कर रहे थे। आचार्य सुव्रत ने गगनगामिनी विद्यासिद्ध अपने एक शिष्य को आदेश दिया कि वह अमुक स्थान से विष्णुकुमार मुनि को लेकर शीघ्र ही हस्तिनापुर लौटे। मुनि ने निवेदन किया – "आचार्य देव ! विष्णुकुमार मुनि के पास पहुँचने की शक्ति तो मुझ मे है किन्तु वहाँ से लौट आने की नही।"

सुव्रताचार्य ने कहा – "वहा जाने पर मुनि विष्णुकुमार तुम्हे स्वय यहा ले आयेगा।"

अपने आचार्य का आदेश शिरोधार्य कर मुनि तत्काल गगन-मार्ग से विष्णुकुमार मुनि के पास उपस्थित हुआ और उन्हे सघ पर आई सकटपूर्ण स्थिति से अवगत कराते हुए आचार्यश्री का आदेश सुनाया। मुनि विष्णु कुमार भी मुनि को साथ ले आकाश मार्ग से अपने गुरु आचार्य सुव्रत की चरण सेवा मे पहुचे। गुरुमुख से सकट की भीषणता सुनकर विष्णुमुनि ने निरपराध मुनियो की रक्षा करने एव सघ पर आये सकट को दूर करने का दृढ निश्चय किया। विष्णु मुनि बली के पास पहुँचे और उससे कहने लगे – "राजन् ! यह तो तुम्हे भली भाति विदित ही है कि जैन श्रमण चरण विहारी है। हमे पैदल चलते-चलते तुम्हारे सुविशाल साम्राज्य की सीमा से बाहर जाने मे अत्यधिक समय लगेगा। अत मैं तीन डग धरू इतनी भूमि जैन श्रमणो को ठहरने के लिये दो।"

बली ने मन ही मन सोचा कि तीन पेड भर धरती मे कितने से साधु ठहर सकेंगे। यह विचार कर उसने 'तथास्तु' कह दिया। बली ने अपने कलुषित मनोभावो को प्रकट करते हुए कहा—"मुने ! आपके द्वारा मापी गई तीन डग धरती के बाहर जो भी जैन श्रमण मिलेगा, उसे तत्काल मौत के घाट उतार दिया जायगा।[1] अपनी शक्ति पर पूर्ण विश्वास होने के कारण विष्णु मुनि ने कहा – "जैसी तुम्हारी इच्छा हो और जैसा तुम्हे अच्छा लगे, वही करना।"

---

[1] भणिय च – "जो बाहि-पय-तिगाओ दिट्ठो त मारेहामि," ...

—श्रीअपापावृहत्कल्प—

विष्णु मुनि द्वारा विराट स्वरूप प्रदर्शन एव सघ की रक्षा

तत्पश्चात् विष्णु मुनि ने वैक्रिय-लब्धि द्वारा अपने शरीर का आकार-प्रकार बढाना प्रारम्भ किया। देखते ही देखते उन्होने एक लाख योजन प्रमाण अपना शरीर वढाकर धरातल और गगन मण्डल को व्याप्त कर लिया। लक्ष योजन प्रमाण विराट स्वरूप बने विष्णु मुनि ने एक ही डग मे भरत क्षेत्र के सम्पूर्ण छहो खण्डो को माप लिया। दूसरा और तीसरा डग रखने के लिये कोई स्थल अवशिष्ट नही रहा। विष्णु मुनि के अद्भुत प्रभाव, अचिन्त्य शक्ति और असह्य प्रताप से पराभूत एव अवाक् बली भयविह्वल हो थर-थर कापने लगा। कुछ ही क्षणो पहले जो बली सम्पूर्ण जैन श्रमण-सघ के लिए विकराल काल अथवा कुग्रह राहु बना हुआ था, वही बली विष्णु मुनि के चरणो पर गिर कर गिडगिडाता हुआ दया की भीख माँगने लगा। उसने विष्णु मुनि के चरण पकड कर अति दीन एव करुण-स्वर मे प्रार्थना की – "भगवन् ! रक्षा कीजिये, दया कीजिये। मै मूढ आपके अचिन्त्य प्रभाव से परिचित नही था। मेरी अक्षम्य दुष्टता के लिये क्षमा प्रदान कीजिये। मैं आज से श्रमण सघ के चरणो का दासानुदास बना रहूगा। अब भविष्य मे चतुर्विध जैन सघ पर मेरी ओर से किसी प्रकार की विपत्ति नही आयेगी। चक्रवर्ती पद्म भी तत्क्षण घटनास्थल पर उपस्थित हुए और अपने ज्येष्ठ भ्राता मुनि विष्णुकुमार से क्षमायाचना के पश्चात् अपने मत्री बली (नमूची) को अति कठोर दण्ड देने के लिये समुद्यत हुए। सर्वभूतहितैषी, श्रमण सघ ने चक्रवर्ती को ज्ञानगर्भित सुमधुर शब्दो से शान्त कर बली की रक्षा की।

अतीत काल मे जिस दिन विपुल विद्यानिधान लब्धिधर विष्णु मुनि ने श्रमण सघ की घोर सकट से रक्षा की, उस दिन श्रावण मास की पूर्णिमा थी। उसी दिन से रक्षा-बन्धन का पावन पर्व प्रचलित हुआ।

यतना-सूत्र मे रत्नत्रय पिरोकर रक्षा-बन्धन पर्व मनाओ

अति प्राचीन काल की घटना होने से घटनाक्रम के विवरण मे एव घटना के एक दो पात्रो के नाम आदि मे भेद होना सभव है।

उनके सम्बन्ध मे आग्रह की आवश्यकता नही । मूल मुद्दा केवल इतना ही है कि रक्षा-बन्धन पर्व के पीछे रक्षणीय की रक्षा की भावना है। चतुर्विध जैन सघ के प्रत्येक सदस्य के मन मे सघ के सकट-मोचक मुनि विष्णुकुमार के प्रति प्रगाढ श्रद्धा, आदर और आस्था है।

यदि आप भी रक्षाबन्धन पर्व के अवसर पर रक्षणीय की रक्षा का दृढ सकल्प लिये रक्षाबन्धन को प्रेम का सूत्र, प्रेम का धागा मानते हुए उसमे सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र के रत्न पिरो कर भाव राखी बाँधेंगे तो चतुर्विध सघ अजर-अमर पद प्राप्त करने का अधिकारी बन जायगा। इस पर्व के पीछे रही रक्षणीय की 'रक्षा की भावना' को यदि आप अपने जीवन मे ढाल कर चतुर्विध सघ को, प्रत्येक भाई-वहन परस्पर प्रत्येक भाई बहन को ही नही, अपितु प्राणिमात्र को प्रेम के धागे मे बाँधेंगे तो आपका इहलोक के साथ-साथ परलोक भी सुख-शान्ति से परिपूर्ण एव परम कल्याणमय बन सकेगा।

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति